

आई.एस.एस.एन. : 2320-2467

UGC Approved Journal ID-64649

Vol.08 Issue 34 December 2017

अन्तर्राष्ट्रीय साहित्यिक एवं शोध पत्रिका

युवावन्तर

त्रैमासिक पत्रिका



आरती पब्लिशिंग हाऊस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

आरती पब्लिशिंग हाउस एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स युगान्तर अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

मुख्य कार्यालय: आर जेड 394, गली नं. 16
कैलाशपुरी एक्सटेंसन, नई दिल्ली-110045

ई मेल: akhilesh.tiwari1979@yahoo.com वेबसाइट: <http://yugantar.co.in>

वर्ष 08 अंक 34
दिसम्बर – 2017

युगान्तर अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका
(A Peer-Reviewed Research Journal)
युजीसी के अनुमोदित पत्रिका सं. 64649

ISSN : 2320-2467

प्रधान संपादक – प्रो. अनीता कपूर, (यू.एस.ए.)
सह संपादक- डॉ. सिधांशु राय सी. एस. जे. एम. विश्वविद्यालय कानपुर
संपादक मंडल-

प्रमोद तिवारी, सांसद (मोना मिश्रा रामपुर प्रतापगढ़)
एस.के. यादव, बिलासा गर्लस कॉलेज बिलासुपर
डॉ. आर.के पाण्डेय, शास.विवेकानन्द महाविद्यालय मैयर
डॉ. श्याम लाल निराला, छ.ग.
डॉ. डी.एस. राजपूत डॉ. एच. एस गौर, विश्वविद्यालय सागर म.प्र.
डॉ. बिसरा भारती वेस्ट बंगाल
प्रो. निरंजन पटेल, आनंद सरदार पटेल विश्वविद्यालय आनंद नगर गुजरात
डॉ. राहुल पटेल इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रवासी सलाहकार मंडल

डॉ. विजय कुमार महे ता - अध्यक्ष, अखिल विश्व हिन्दी समिति न्यूयार्क अमेरिका
प्रो. सत्येन्द्र श्रीवास्तव - कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज (यू.के.)
डॉ. शरे बहादुर सिंह - विश्व हिन्दी सेवी, न्यायार्क, अमेरिका
डॉ. पद्मेश गुप्त -अध्यक्ष, यू.के. हिन्दी समिति लंदन
डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण - टोक्यो विश्वविद्यालय, जापान
डॉ. सुशम वेदी - कोलंबिया यूनिवर्सिटी, न्यूयार्क
प्रो.हमे राज सुन्दर-महात्मा गांधी संस्थान, मोका मारीशस
स्नेह ठाकूर - संपादक - वसुधा, टोरन्टो, कनाडा
उषा राजे सक्सेना - उपाध्यक्ष, यू.के. हिन्दी समिति, लंदन
डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल - अध्यक्ष इण्डो नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
डॉ. ऊषा देवी शुक्ला - डर्बन विश्वविद्यालय, डर्बनी (दक्षिण अफ्रीका)
अपर्णा शिरसागर-डॉफिन विश्वविद्यालय, पेरिस, फ्रांस
डॉ. घनश्याम शर्मा - वॉनिस विश्वविद्यालय, इटली
राम प्रसाद भट्ट - हैम्बर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी
डॉ. पूर्णिमा बर्मन - यू.ए.ई.
प्रो. तजेन्दर शर्मा - अमेरिका (यू.के.)
डॉ. मुदुला शर्मा - त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व संबंधित लेखकों का है। आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्ति है। युगान्तर अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका अथवा संपादक मंडल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

© युगान्तर

शोध लेख, मूल लेख प्रकाशन एवं मंगवाने हेतु इस पते पर संपर्क करें— (कृपया लेख ई-मेल के माध्यम से ही स्वीकार्य किये जायेंगे।)

Editor-in-Chief

युगान्तर अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

मुख्य कार्यालय: आर जेड 394, गली नं. 16

कैलाशपुरी एक्सटेंसन, नई दिल्ली-110045

संपर्क: +91 94552 51733

ई मेल: akhilesh.tiwari1979@yahoo.com वेबसाइट: <http://yugantar.co.in>

युगान्तर अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका
(A Peer-Reviewed Research Journal)

युजीसी के अनुमोदित पत्रिका सं. 64649

वर्ष 08 अंक 34 (दिसम्बर 2017)

ISSN : 2320-2467

अनुक्रमनिका

01	नहीं हूँ किसी का भी प्रिय कवि मैं / डॉ. महेश दवगे	01-08
02	हिन्दू परिवारों की महिलाओं में सामाजिक गतिशीलता (सतना जिले के विशेष संदर्भ में) / अनुराधा पाण्डेय	09-12
03	कथक गुरु बाबूलाल पाटनी का संगीतिक योगदान / डॉ. अंजलिका शर्मा एवं प्रिया गुप्ता	13-16
04	आदिवासी समाज : अन्याय का शिकार / राजकुमार अहिरवार	17-22
05	संस्कृत साहित्य में कर्तव्य बोध / डॉ. राजू प्रसाद अहरवाल	23-27
06	कार्यक्षेत्रों में महिलाओं के प्रति लैंगिक असमानता / श्रीमती रेनू सिंह	28-31
07	विश्व की प्राकृतिक भाषा : संगीत / डॉ. प्रभा बजाज	32-33
08	मुक्तक काव्य परम्पराएँ एक सिंहावलोकन / डॉ. विमलेश शर्मा एवं डॉ. के. आर. महिया	34-43
09	महाविद्यालय ग्रंथालय में विस्तार सेवाएं / रेखराज साहू एवं श्रवण यादव	44-48
10	“प्राचीन बौद्ध साहित्यों में नारी का अंकन” (गणिकाओं, दासियों, सेविकाओं के संदर्भ में) / डॉ. (श्रीमती) उषा तिवारी	49-53
11	बघेली कहानी : वस्तुविन्यास और जीवन दर्शन / डॉ. राधवेन्द्र तिवारी एवं कमलेश तिवारी	54-61
12	किराना घराने के एक स्तम्भ: पं० सवाई गंधर्व / कविता पंडित	62-66
13	अजमेर में ब्रिटिश पुलिस प्रशासन / अभिमन्यु कुमावत एवं श्री पोरस कुमार	67-74
14	साम्यवादी विचारधारा के अंतर्द्वंद्व की परख : ‘बीच में’ विनय :- स्वयं प्रकाश / कविता शर्मा	75-78
15	भारत में न्यायिक व्यवस्था में सुधार : कॉलेजियम बनाम राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग / शम्भुलाल सालवी	79-84
16	जनजातियों के मानवाधिकार एवं समस्याएं / हेमन्त कुमार	85-89
17	चाकसू तहसील में परती भूमि की समस्या एवं प्रबन्धन / डॉ. राजेश शर्मा	90-99
18	डॉ. रागेय राघव : कथा साहित्य में मुखरित नारी चेतना के स्वर / डॉ. दीपाली शर्मा	100-103
19	जोधपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों द्वारा पढ़ी जाने वाली पत्रिकाओं का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव / नवीन कुमार एवं शाह गोवर्द्धन लाल काबरा,	104-106
20	उदयपुर संभाग के प्रमुख मंदिरों का पर्यटन एवं आर्थिक विकास में योगदान / योगेश कुमार भाटी	107-109
21	उदयपुर संभाग के प्रमुख मंदिर एवं उनका सांस्कृतिक महत्व / योगेश कुमार भाटी एवं डॉ. एम. एल. शर्मा	110-114
22	वंशकार समुदाय के सामाजिक मूल्य व प्रतिमान / ऋचा सेनगुप्ता	115-120
23	संभ्रांत परिवेश की लेखिका : डॉ. श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री / ज्योति शर्मा	121-124
24	भारतीय किसान और उनकी मूलभूत समस्याएं / डॉ. कल्पना वर्मा	125-127
25	अलङ्कारों का इतिवृत्त / डॉ० अर्पिता चन्द्रा	128-130
26	राजस्थान के जनजाति क्षेत्र में नगरों की उत्पत्ति एवं विकास में भौगोलिक स्थिति कि दशा एवं दिशा / डॉ. हितेश पाटीदार एवं दीनबन्धु बी.ठाकोर	131-141
27	दक्षिण राजस्थान के राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालय के छात्राओं में आत्मक्षमता एवं स्वायत्त अधिगम के प्रभाव का अध्ययन / डॉ. दीपक पण्ड्या	142-145
28	चित्रा मुद्गल की कहानियों में नारी जीवन संघर्ष / गुणमाला पाटीदार	146-149
29	चित्रा मुद्गल की कहानियों में आधुनिकीकरण का प्रभाव / गुणमाला पाटीदार	150-153
30	Goods and Service Tax: Challenges and Impacts on Indian Economy / Dr. Nisha Bansal	154-159
31	Novel Findings for differently Annealed Non-stoichiometric Cadmium Oxides / Krishan Chandra Verma	160-163
32	Water Management: Law and Policy in India / Hemant Kumar	164-174
33	Health Awareness role of Newspaper among elderly population of Durg City / Rajshree Chandrakar and Dr. A. R. Joglekar	175-178
34	Study of suitability of school uniform for adolescent girl students of Durg, Bhilai City / Mrs. Sarita Nitin Joshi and Dr. Shipra Banerjee	179-182
35	Impact of Brand on Consumer Buying Decision / Dr. Kalpana Verma	183-187

36	Women Entrepreneurs in India: Challenges and Issues / Dr. Rekha chouhan	188-198
37	Fluoride Contamination in groundwater of Alwar, district Rajasthan /Manju Meena	199-204
38	Economic Development and Poverty reduction in Rajasthan:(An Economic analysis)/Dr.Paras Jain	205-214
39	भारत में बढ़ता भ्रष्टाचार : एक समस्या / कु. चौदनी नायक	215-220
40	Smart City Udaipur: Concept, Challenges And Digitalization / Dr. Yuvraj Singh Rathore	221-228
41	Right to Privacy in India-An Outlook /Anju	229-240
42	महिला शिक्षा में ही निहित है महिला सशक्तिकरण/डॉ. (श्रीमती) मोहना सुशांत पंडित	241-244
43	डूंगरपुर जिले की जनसंख्या वृद्धि प्रतिरूप का सामाजिक-आर्थिक विकास पर प्रभाव डॉ. पंकज रावल	245-253
44	कलकत्ताचार्य पं. लक्ष्मीनारायण जी महाराज का जयपुर घराने में सांगीतिक योगदान/सुरभि कुमावत एवं डॉ. आरतह भट्ट तैलंग	254-258
45	अहिंसा का प्राच्यकालीन स्वरूप और आधुनिक समाज : एक पर्यालोचन (जैन साहित्य के विशेष सन्दर्भ में) डॉ0 आशुतोष पारीक	259-262
46	राजस्थानी कहावतों में कृषि सम्बन्धी नक्षत्र विज्ञान सुरेश कुमार सांदू	263-268
47	Inculcation of Values Through Education / Yogendra Kumar	269-275
48	नगरीय समस्या “भिक्षावृत्ति ” का समाजशास्त्रीय अध्ययन/ चेतन लाल रेगर	276-279
49	खिज़ खौं (1414 ई.-1421 ई.) के शासन काल का समीक्षात्मक अध्ययन/डॉ. जानकी शरण शुक्ल	280-285
50	मण्डला जिले में सड़क यातायात का भौगोलिक अध्ययन/डॉ. झामलाल रसिया	286-289
51	ग्रामीण समाज की हिन्दू महिलाओं में वैचारिक बदलाव-एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में) डॉ. शालिनी शर्मा	290-292

नहीं हूँ किसी का भी प्रिय कवि मैं

डॉ. महेश दवंगे

सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग,
सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ, पुणे
mdawange200@gmail.com

“त्रिलोचन की कविता में ऐसा क्या है जो इनके लिए भी असुविधाजनक है और उनके लिए भी? न यह प्रगतिवाद है, न प्रयोगवाद, न नई कविता और न साठोत्तरी कविता ही। त्रिलोचन की अपनी पहचान यहीं है शायद...।” —नामवर सिंह

हिंदी काव्य जगत में सबसे वैविध्यपूर्ण सृजन के लिए त्रिलोचन परिचित है। सॉनेट, गजल, गीत, चतुष्पदियाँ, कुंडलियाँ आदि उनके काव्य के रूप हैं। वे जनसामान्य के कवि हैं। सर्वहारा वर्ग की वेदना, पीड़ा एवं व्यथा को उनकी कविताओं में अभिव्यक्ति मिली है। उनका काव्य किसी विशिष्ट विचारधारा का घोषणापत्र नहीं है, बल्कि उनके अनुभवों का वाहक हैं। ये अनुभव किसी अन्य की अनुभूति नहीं हैं, भोगा हुआ यथार्थ है। जीवन के प्रति अदम्य जीजिविषा उनके व्यक्तित्व एवं काव्य का प्राणतत्व है। अपने जीवन काल में ही कई किवंदतियाँ उनके संदर्भ में प्रचलित थी। नागार्जुन ने तो उन्हें ‘किवदंती-पुरुष’ ही माना है। लेकिन त्रिलोचन की सच्चाई है कि उन्होंने इन किवंदतियों का स्वीकार नहीं किया। सच्चाई उनके जीवन की शक्ति है। यही शक्ति उन्हें अभाव में भी संघर्ष की प्रेरणा देती है। त्रिलोचन का समग्र जीवन अभाव में ही बीता है। लेकिन दुनियादारी एवं व्यावहारिकता से वे कभी नहीं जुड़े। ट्यूशन लेने के लिए बेटे को पीठ पर लादकर 14 मील तक का रास्ता वे पैदल ही नापते थे। बनारस का उनका इतिहास तो क्लर्क का ही इतिहास रहा है, हंस पत्रिका की प्रूफरीडरी के साथ ही, मास्टरी, ट्यूशन एवं अलग-अलग अखबार में उन्होंने कार्य किया। अभाव एवं संघर्ष के बावजूद उनके सपनों की झोली कभी खाली नहीं रही। यही सपने उनकी कविताओं में रीझकर जन सामान्य की आशा-अपेक्षाओं के प्रतीक बने हैं।

‘धरती’ (1945) काव्य संकलन से त्रिलोचन ने हिंदी काव्य जगत में प्रवेश किया। मिट्टी की खुशबू बिखेरता यह काव्य किसान जीवन को समग्रता से रूपायित करता है। किंतु इस काव्य संग्रह की आलोचना अधिक हुई। इस काव्य संग्रह का स्वागत करनेवालों में मुक्तिबोध पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने ‘धरती: एक समीक्षा’ शीर्षक से हंस पत्रिका (1946) में आलेख लिखा। यह कोई पहला अवसर नहीं था कि जहाँ उन्हें साहित्य जगत में अस्वीकार का भाव स्वीकारना पड़ा। लेकिन उनकी काव्य-यात्रा अनवरत रूप से चलती रही। त्रिलोचन ऐसे यात्री नहीं थे जो दूसरों की आलोचना से अपनी राह मोड़ दे, वे अपना रास्ता स्वयं बनानेवाले संघर्षयात्री थे। अतः अपने काव्य में किसान जीवन को वे समग्रता से उतारते हैं। ऐसा नहीं कि उनके पहले या बाद में किसान संस्कृति पर काव्य नहीं

रचे गए, लेकिन त्रिलोचन का काव्य अपनी खास पहचान रखता है। यहाँ शोषित मजदूर के साथ ही खेतिहर किसान भी दिखता है, जो असल में खेती करता है। वो केवल नाम का किसान नहीं बल्कि खेतों में काम करनेवाला किसान है, जो हरदम जीवन के लिए प्रकृति से लड़ता रहता है—

“है धूप कठिन सिर ऊपर
थम गयी हवा है जैसे
दोनों दूबों के ऊपर
रख पैर खींचते पानी
उस मलिन हरी धरती पर
मिल कर वे दोनों प्राणी
दे रहे खेत में पानी।”²

त्रिलोचन अपनी कविताओं में चित्र—सा खड़ा कर देते हैं। वे शब्द—शिल्पी है। गति और ध्वनि को भी शब्दों में बाँधने का सामर्थ्य उनके पास है। प्रकृति—सौंदर्य से युक्त ऐसी कितनी ही कविताएँ हैं, जहाँ कवि ने चित्रकार की भाँति कई रंग उँड़ेले हैं—

“आठ पहर की टिप टिप
सड़क भीग गयी है
पेड़ों के पत्तों से बूँदे
गिरती है टप् टप्
हवा सरसराती है
चिड़िया पंख समेटे यहाँ—वहाँ बैठी है।”³

वर्षा ऋतु का यह दृश्य मानसपटलपर अंकित हो जाता है। कवि अपने शब्दों के सामर्थ्य से ध्वनि को भी साकार रूप प्रदान करते हैं। इसी रूप से संपूर्ण गाँव की संस्कृति उनकी कविताओं में रच—बस गयी है। संस्कृति और प्रकृति अभिन्न है, यह भेद त्रिलोचन के काव्य में मिट जाता है।

हिंदी काव्य जगत में सॉनेट के लिए त्रिलोचन एकमात्र विकल्प हैं। पश्चिम के इस काव्य रूप के प्रणेता फ्राँ गुइत्तोन को माना जाता है। स्पेन्सर, सिडनी, शेक्सपियर, मिल्टन, वर्ड्सवर्थ एवं कीट्स आदि ने भी सॉनेट रचे हैं। त्रिलोचन ने इसी सॉनेट के भारतीय रूप का स्वीकार किया। यह भी आश्चर्य है कि जिस सॉनेट के कारण उनकी आलोचना हुई उसी सॉनेट ने उन्हें प्रसिद्धी भी दिलायी। स्वयं नागार्जुन भी त्रिलोचन को सॉनेट को लेकर डाँट चुके थे। लेकिन त्रिलोचन सॉनेट लिखते रहें। आज हिंदी पाठक वर्ग में उनके सॉनेट भी काफी प्रचलित हैं। ‘दिगन्त’ (1957) काव्यसंग्रह में 57 सॉनेट हैं, जिसमें सामाजिक, साहित्यिक, व्यक्तिगत, धार्मिक, प्रेम एवं प्रशस्तिमूलक, व्यंग्यात्मक,

चित्रात्मक, प्राकृतिक आदि परिदृश्यों को कवि ने बड़े ही सुंदरता से अभिव्यक्त किया है। अन्य काव्य-संग्रह में भी उनके सॉनेट बिखरे पड़े हैं। 'अरघान' नामक काव्यसंग्रह में संकलित महाकुंभ पर लिखे गए 25 सॉनेट कवि की काव्य प्रतिभा के उत्तम उदाहरण हैं। काव्य संक्षिप्त होते हुए भी किसी महाकाव्य से कम नहीं है। महाकुंभ में हमेशा ही भीड़ होती है। धार्मिकता एवं ईश्वर के नाम पर यहाँ बाज़ार लगता है। कभी इसमें भगदड़ मची तो लाशों के ढेर लग जाते हैं। कवि ने एक कथा-विन्यास के माध्यम से महाकुंभ की यथार्थ स्थिति का वर्णन किया है—

“लाशों पर चढ़कर मानव आता है
लाशों की प्रदर्शनी लग गई
ट्रक में भर-भरकर आज गंध शव का आया है
नाश अचल था।”⁴

त्रिलोचन ने महाकुंभ की घटना का बड़ा ही मार्मिकचित्र प्रस्तुत किया है। वर्तमान समय में भी इन स्थितियों में परिवर्तन नहीं आया है, बल्कि दिनों-दिन कुंभमेले जैसे उत्सव में लोगों की भीड़ बढ़ रही है। त्रिलोचन हमेशा ही सॉनेटों में बात करते हैं। इसीलिए उनके सॉनेट में लगभग सभी विषय समाहित हैं। बावजूद इसी सॉनेट के कारण त्रिलोचन को अलोचना का शिकार होना पड़ा। समग्रता से भारतीयता को स्वीकारनेवाले त्रिलोचन को सॉनेट इस रूप ने कैसे आकर्षित किया यह तो प्रश्न ही है? लेकिन उन्होंने इस सॉनेट को भारतीय रूप प्रदान किया। त्रिलोचन के पक्ष में अपनी बात कहते हुए मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, “आश्चर्य तो यह है कि जो लोग सॉनेट की अभारतीयता पर उँगली उठाते हैं, वे उपन्यास और कहानी के बारे में ऐसे सवाल नहीं करते, जबकि ये विधाएँ भी आधुनिक रूप में पश्चिम की देन हैं। अगर आज कोई सिनेमा को विदेशी कहकर उसकी आलोचना करें तो लोग क्या कहेंगे?”⁵ वर्तमान समय में त्रिलोचन के सॉनेट प्रेम को लोगों ने स्वीकार किया है। क्योंकि उनके सॉनेट घटनाओं के रिपोर्ताज नहीं हैं, बल्कि मानवी मूल्यों की स्थापना में सहयोगी हैं। वे प्रयोग के लिए प्रयोग का स्वीकार नहीं करते, इसीलिए तो जब कई प्रगतिशील कवि अपना खेमा छोड़कर अज्ञेय के प्रयोगवादी खेमे में शामिल हो रहे थे, त्रिलोचन अपनी धरती की जड़ों को मजबूती से पकड़े हुए थे। वे सॉनेट में भी अपनी जड़ों को उखड़ने नहीं देते। उनके व्यक्तित्व की स्थिरता काव्य को भी स्थिर बनाती है।

त्रिलोचन का समग्र काव्य प्रगतिशील दृष्टि का परिचायक है। यह प्रगतिशीलता उनके विचारधारा की संवाहक है। वे दलित, दमित, पीड़ित एवं शोषित वर्ग के पक्षधर हैं। अतः उनकी कविताओं में इन बेजुबानों की आवाज़ मुखर हुई है। ये आवाज़ उस वर्ग की है जिसने शोषण को अपनी नियति मानकर कभी संघर्ष किया ही नहीं। ये कविताएँ उन्हें संघर्ष की प्रेरणा देती हैं। हालाँकि वर्तमान समय में भी इस शोषण की परंपरा का अंत नहीं हुआ है। रोटी, कपड़ा और मकान जैसी

मूलभूत जरूरतें भी सामान्य वर्ग से कोसों दूर हैं। भारत कृषि प्रधान देश है, फिर भी इसी देश में भूख से बेहाल होकर हर दिन कितनी ही मौतें होती हैं। आज़ादी मिलने के बाद भी हम समाजवादी व्यवस्था स्थापित नहीं कर सके। सारे उच्च आदर्श मंच की गरिमा तक ही सीमित हुए हैं। केवल भाषणों तक ही हमारी आदर्श छवि जुड़ी है। हर कोई अलग-अलग मुखौटे लेकर चल रहा है, जिससे हमारा मूल चरित्र दब-सा गया है। लेकिन त्रिलोचन का व्यक्तित्व और काव्य इस नकाबी संस्कृति को तोड़ता है। वे सहज जीवन के कवि हैं। वे शब्दों का जाल नहीं बुनते, बल्कि सीधे-सीधे अपनी बात कहते हैं—

“कोई भूखा हो तो उस को लाकर रोटी
दो, मत लंबी चौड़ी बात बनाओं इस की
उसकी सारे जग की।”⁶

त्रिलोचन सीधे-सीधे आम आदमी से जुड़ते हैं। अभाव का जीवन उन्होंने भी जीया है। अपनी भूख को पानी पीकर ही मिटाया है। भूख के दर्द से वे भी जूझते रहे हैं। फणिश्वरनाथ रेणु ने ‘अपने-अपने त्रिलोचन’ आलेख में त्रिलोचन के अनछुए पलों को उद्घाटित किया है। लेकिन इससे उनके मन में जीवन के प्रति द्वेष या उद्द्वेग की भावना पैदा नहीं होती। वे जीवन के अमृत रस का ही पान करते रहे। सुख-दुख जीवन संघर्ष के अभिन्न अंग हैं, इसीलिए सुख में ना वे अतिउत्साहित होते हैं और ना ही दुख में अति निराश। यह स्थिरता एवं सहनशीलता उनके काव्य की भी विशेषता रही है। इसीलिए उनके काव्य में मारो-मारो, काटो-काटो की ललकार नहीं है। और नहीं है केवल भावुकता, झूठा आशावाद और काल्पनिक संघर्ष। उनकी जनशक्ति में आस्था है, इसी आस्था को उनकी कविताएँ बनाएँ रखती हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी कविताएँ प्रेरित या चेतित नहीं करती। उनकी कविताएँ तो स्वस्थ सामाजिक बदलाव चाहती हैं। त्रिलोचन स्वयं इस बदलाव का हिस्सा बनते हैं। वे केवल दूसरों को लड़ने की प्रेरणा नहीं देते, बल्कि कबीर की तरह भरे बाज़ार में खड़े होकर जनता को अपने साथ चलने का आह्वान करते हैं। कबीर विद्रोही कवि हैं, उतनी तीव्रता त्रिलोचन में नहीं है, लेकिन समाज परिवर्तन की अदम्य इच्छा एक-सी है—

“सड़ी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह के लिए
मैं ललकार रहा हूँ उस सोई जनता को
जिसको नेता लूट रहे हैं, कह कर ताको
मत, हम तो हैं ही।”⁷

त्रिलोचन संघर्ष एवं कर्म में विश्वास रखते हैं, साथ ही मूल्यों की महत्ता का स्वीकार भी। वे किसी के सहारे संघर्ष नहीं करते बल्कि अपनी पूरी शक्ति समाज के उत्थान में लगाते हैं—

“नहीं चाहिए नहीं चाहिए मुझे सहारा

मेरे हाथों में पैरों में इतना बल है
 स्वयं खोज लूँगा किस-किस डाली में फल है
 उसे बाट दूँगा जो नंगा भूखा हारा
 दुर्बल दिखायी देगा...।'⁸

त्रिलोचन की कई कविताओं में यह दृष्टि विद्यमान है। उनकी प्रगतिशीलता केवल राजनीति तक सीमित नहीं है। राजनीति तो उनकी प्रगतिशीलता का एक अंग है। बावजूद प्रगतिशील कवियों में त्रिलोचन को स्थान नहीं है। उनकी कविता 'प्रगतिशील कवियों की नई लिस्ट निकली है' में इसी बात को दोहराते हैं। केदारनाथ अग्रवाल एवं नागार्जुन के काव्यसंग्रह के प्रकाशित होने के पूर्व ही त्रिलोचन का 'धरती' काव्य संकलन प्रकाशित होता है, किंतु उन दिनों जितनी चर्चा 'युग की गंगा (1947) एवं 'युगधारा' (1953) की हुई उतनी त्रिलोचन की नहीं। प्रगतिशील कवियों में पहला स्थान केदारनाथ अग्रवाल एवं दूसरा स्थान नागार्जुन को मिला है, लेकिन त्रिलोचन का इस परंपरा में कोई स्थान नहीं है। 1986-87 के दरमियान ही रामस्वरूप चतुर्वेदी की 'हिंदी साहित्य और संवेदना का इतिहास' और रामविलास शर्मा की 'नयी कविता और अस्तित्ववाद' (नया संस्करण) ये दो आलोचनात्मक किताबें प्रकाश में आईं, इनमें भी त्रिलोचन नामक कवि का उल्लेख नहीं है। शायद इसीलिए भी की उनकी कविता सीधे-सीधे धरती की कविता है, वे नागार्जुन की तरह राजनीति पर प्रहार नहीं करती हैं। राजनीतिक चेतना को ही प्रगतिशीलता माननेवाली एकांगी दृष्टि के संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय कहते हैं, "कविता में प्रगतिशीलता को केवल राजनीति तक और राजनीति को आंदोलन तक सीमित समझनेवाली आलोचना दृष्टि जन-जीवन की वास्तविकता और आकांक्षा के अन्य रूपों की अभिव्यक्ति को खारिज करती चलती है।"⁹ दरअसल त्रिलोचन की कविता उपरी सतह की बात नहीं करती है, ना ही किसी घटना की तात्कालिक प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करती है, ये तो समाज में रहकर समाज की भीतरी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करती है।

त्रिलोचन की कविताओं में केवल चित्र नहीं है, चरित्र भी है। ऐसे ही चरित्र जो निराला एवं नागार्जुन की कविताओं में कम-अधिक मात्रा में मिलते हैं। वे कविताओं में नयी शैली को अपनाते हैं, इसमें कथा है, संवाद है और पात्रों का चरित्र-चित्रण भी। काव्य रूपों की विविधता के साथ ही चरित्रों की विविधता भी उनके काव्य की विशेषता है। मनुष्य के साथ जानवर भी इनके चरित्र के केंद्र में है। इसमें नगई महारा, अवतरिया, चम्पा, सोना और सुकनी, भिखरिया, भौजी छुट्टा-बंधुआ के साथ ही गाय, बिल्ली के बच्चे, नन्हीं सी गोरैया आदि का चरित्र अपनी व्यापकता में परिलक्षित है। 'नगई महारा' एवं 'चम्पा काले अच्छर नहीं चीन्हती' लंबी एवं प्रसिद्ध कविताएँ रही हैं। ये ऐसे चरित्र हैं, जो अन्य कवियों के काव्य से कोसों दूर हैं। काव्य में भावात्मक अभिव्यक्ति होती है, अतः उसमें चरित्रों को स्थान नहीं मिलता, किंतु बहुत विरले कवि ही ऐसी शैली को स्वीकार पाये, जिनमें त्रिलोचन श्रेष्ठ है। ये चरित्र अपनी संपूर्ण विशेषताओं से सम्पृक्त हैं। जिसमें गुण-अवगुण दोनों का अद्भुत समन्वय है,

जो प्रेमचंद्र के होरी में मिलता है। नामवर सिंह लिखते हैं, “प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में जैसी दुनिया रची है, कविता के क्षेत्र में बहुत कुछ वही काम त्रिलोचन ने किया है। वहाँ अमूर्त जीवन नहीं हाड़-मांस के जीते जागते इन्सान है। चित्र नहीं चरित्र है। लड़ते-झगड़ते, हँसते खीझते, नाचते-गाते, गिरते-पड़ते, फिर भी जीते जागते।”¹⁰ अर्थात् त्रिलोचन के पात्र अपनी पूरी इमानदारी से प्रस्तुत हुए हैं। इन चरित्रों की भव्यता एवं व्यापकता कहानी एवं उपन्यास के चरित्रों के समान ही हुई है। हालाँकि कई जगह उनकी शैली गद्यमय भी बनी है। लेकिन यह गद्यात्मकता भावों के संप्रेषण में बाधा नहीं उत्पन्न करती। चरित्रों के निर्माण में इसी गद्य शैली का कलात्मक प्रयोग त्रिलोचन ने अपने काव्य में किया है। वे शब्द को सबसे अनिवार्य तत्व मानते हैं। वर्तमान समय में कई सारे शब्द अपनी अर्थवत्ता खो रहे हैं। त्रिलोचन इन्हीं शब्दों के अर्थ की रक्षा करनेवाले कवि हैं। वे कविताओं में शब्दों का प्रयोग सार्थक रूप से करते हैं—

“चम्पा अच्छी है
चंचल है
नटखट भी है
कभी-कभी ऊधम करती है
कभी कभी वह कलम चुरा लेती है
जैसे तैसे उसे ढूँढ़कर जब लाता हूँ
पाता हूँ— अब कागज़ गायब
परेशान फिर हो जाता हूँ।”¹¹

चम्पा ग्वाले की बेटी है, जो कवि के साथ विशेष स्नेह रखती है। कवि यहाँ चम्पा के लिए चंचल, नटखट शब्द का प्रयोग करता है। सामान्य व्यक्ति सहज ही ‘शैतान कहीं की’ शब्द का प्रयोग कर आगे निकल जाएगा, लेकिन त्रिलोचन शब्द के पुजारी हैं। एक-एक शब्द को तोलकर रखनेवाले कलाकार हैं— जैसे ‘चम्पा काले अच्छर नहीं चीन्हती’ कविता की ही अंतिम पंक्तियाँ हैं—

“तो मैं अपने बालम को संग साथ रखूँगी
कलकत्ता में कभी न जाने दूँगी
कलकत्ता पर बजर गिरे।”¹²

यहाँ कवि उस नारी चेतना को इंगित करते हैं, जो परंपरा को तोड़कर पति को अपने साथ रखने की मंशा रखती है। साथ ही उस आधुनिकता का भी विरोध करती जहाँ जाने पर व्यक्ति अपने गाँव की संस्कृति को भूला बैठता है। ‘कलकत्ता पर बजर गिरे’ ये शब्द उस आधुनिक चकाचौंध का विरोध करते हैं जो केवल मुट्ठी भर लोगों के मन बहलाने के संसाधन बने हैं।

त्रिलोचन के समग्र काव्य में आत्म संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है। उनका काव्य ही नहीं बल्कि व्यक्तित्व भी सामाजिक प्रेरणा का स्रोत है। अभाव में भी जीवन से सुख निचोड़ने की कला में त्रिलोचन सिद्धहस्त थे। उनका व्यक्तित्व स्थित प्रज्ञ था लेकिन जीवन गतिशील। त्रिलोचन के संदर्भ में काशीनाथ सिंह लिखते हैं, “मैंने कभी त्रिलोचन को सोए हुए नहीं देखा, जब भी देखा चलते हुए देखा है। मुझे नहीं मालूम कि वह कभी सोता भी है या नहीं रात और दिन का फर्क जिसके लिए होता हो उसके लिए हो, त्रिलोचन के लिए नहीं। जब से यह नगर बसा है, तब से त्रिलोचन सिर्फ चल रहा है।”¹³ त्रिलोचन कभी रुके नहीं, आजीवन चलते रहे, संघर्ष करते रहे। दूसरों के दुख, दर्द एवं यातनाओं पर उपाय बताने वाले त्रिलोचन अपनी बारी आने पर कविताओं में गुम हो जाते। यही कारण है कि उनकी कविताओं में इतनी आत्मचर्चा है कि केवल कविताओं को पढ़कर उनका आत्मचरित्र लिखा जा सकता है। यह आत्मचर्चा प्रयोगवादियों का घोर व्यक्तिवाद नहीं है, बल्कि व्यष्टि में समाष्टि बोध है। जहाँ पाठक कवि की अनुभूति से साधरणीकरण अनुभव करता है,

“वही त्रिलोचन है, वह जिसके तन पर गन्दे
कपड़े हैं। कपड़े भी कैसे-फटे लटे हैं।
यह भी फैशन हैं, फैशन से कटे-कटे हैं।”¹⁴

“कभी त्रिलोचन के हाथों में पैसा धेला
टिका नहीं। कैसे वह चाय और पानी का
करता बंदोबस्त। रहा ठूँ-सा अकेला।”¹⁵

त्रिलोचन के जीवन संघर्ष के ये पहलू उनकी कविताओं की ऊर्जा है। वे अपनी कविताओं से शक्ति ग्रहण करते हैं। वे कईयों के आधार बने किंतु स्वयं को निराधार नहीं महसूसते। अतः इस तरह की आत्मचर्चा अन्य कवियों में बहुत कम है या तो मिलती ही नहीं। त्रिलोचन आत्मप्रशंसा के लिए काव्य नहीं रचते और नहीं किसी विशिष्ट विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए। उनके जीवन के ये पहलू अनायास ही उनकी कविताओं में उतर आए हैं। हिंदी काव्य जगत में कई काव्यांदोलन चलाए गए। इन आंदोलनों से जुड़ने के लिए कई कवियों ने अपनी मूल शैली में परिवर्तन किया, लेकिन त्रिलोचन अपनी राह पर अटल रहे। प्रगतिशील खेमे से नकारने के बाद भी कवि ने अपनी काव्यधर्मिता से समझौता नहीं किया। क्योंकि किसी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने अपने काव्य का उपयोग नहीं किया। मंगलेश डबराल को साक्षात्कार देते हुए वे कहते हैं, “किसी विचारधारा का समर्थन करने के लिए अगर आप कविता लिखें तो याद रखिए आप कवि कम हैं, उस विचारधारा के अनुवर्ती हैं भले ही वह आपकी बुद्धि को स्वीकार्य हो गई है। इसीलिए जब लोगों ने अपने को प्रतिबद्ध कहना शुरू किया तो मैंने कहा कि प्रतिबद्धता जो है मेरे विचार हैं जो मेरे अंदर हैं, उनके लिए किसी घोषणा की जरूरत नहीं है। मेरी कविता लोग पढ़ेंगे तो कविता के बतौर पढ़ेंगे, मेरे विचारों

के लिए नहीं।'¹⁶ दरअसल कवि ने किसी विचारधारा के समर्थन में काव्य सृजन नहीं किया है। उनके विचारों के अभिव्यक्ति का माध्यम ही काव्य है। यही काव्य हिंदी साहित्य जगत में अपनी विशेष पहचान बनाने में सफल रहा है।

त्रिलोचन ने किसी समय 'नहीं हूँ किसी का भी प्रिय कवि मैं' कहा था। ऐसा क्यों कहा था? इसके कुछ कारण अवश्य होंगे, किंतु आज साहित्य जगत में त्रिलोचन की स्वतंत्र पहचान है। वे वैविध्य के लिए जाने जाते हैं। उनके काव्य—रूपों में सॉनेट, गज़ल, गीत, चतुष्पदी, कुंडलियाँ आदि का सशक्त प्रयोग हुआ है। विरले कवियों में ही इस तरह की काव्यप्रतिभा होती है। उनके इसी काव्य प्रतिभा से प्रभावित कितनों के ही वे आज प्रिय कवि हैं।

➤ संदर्भ संकेत

- 1) त्रिलोचन के बारे में, सं. गोविंद प्रसाद, पृ.91
- 2) त्रिलोचन संचयिता, सं. ध्रुव शुक्ल, पृ.359
- 3) त्रिलोचन के बारे में, सं. गोविंद प्रसाद, पृ.153
- 4) त्रिलोचन की काव्यदृष्टि, डॉ. लता शिरोडकर, पृ.69
- 5) त्रिलोचन के बारे में, सं. गोविंद प्रसाद, पृ.157
- 6) त्रिलोचन की काव्यदृष्टि, डॉ. लता शिरोडकर, पृ.65
- 7) अनकहनी भी कुछ कहनी है, त्रिलोचन, पृ.87
- 8) त्रिलोचन की काव्यदृष्टि, डॉ. लता शिरोडकर, पृ.76
- 9) त्रिलोचन के बारे में, सं. गोविंद प्रसाद, पृ.148
- 10) वही, पृ.93
- 11) त्रिलोचन संचयिता, सं. ध्रुव शुक्ल, पृ.359
- 12) वही, पृ.314
- 13) याद हो कि याद न हो, काशीनाथ सिंह, पृ.44
- 14) त्रिलोचन संचयिता, सं. ध्रुव शुक्ल, पृ.82
- 15) ताप के ताए हुए दिन, त्रिलोचन, पृ.48
- 16) त्रिलोचन के बारे में, सं. गोविंद प्रसाद, पृ.244

हिन्दू परिवारों की महिलाओं में सामाजिक गतिशीलता

(सतना जिले के विशेष संदर्भ में)

अनुराधा पाण्डेय

अतिथि विद्वान, समाजशास्त्र

सामाजिक गतिशीलता वस्तुतः सामाजिक परिवर्तन की ही अभिव्यक्ति है। औद्योगीकरण और नगरीकरण के फलस्वरूप समाज में अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए हैं। औद्योगीकरण तथा अन्य सामाजिक आर्थिक कारकों की क्रियाशीलता के कारण वर्तमान समय में समाज में पारिवारिक जीवन में अनेक परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण एकाकी परिवारों में वृद्धि हुई है जिसके फलस्वरूप महिलाओं की कई समस्याएँ स्वतः ही दूर हो गईं। एकाकी परिवारों की वृद्धि के फलस्वरूप संयुक्त सम्पत्ति की अनिवार्यता समाप्त हो गई। महिलाएँ जो स्वयं काम-काज करती हैं वे अपने परिवार की उन्नति में उसका उपयोग करती हैं। उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति पर संयुक्त परिवार को कोई अधिकार नहीं होता है। संयुक्त परिवारों के विघटन से स्त्रियों की आर्थिक तंगी दूर होने में सहायता मिली जिससे महिलाओं में व्यावसायिक गतिशीलता को बढ़ावा मिला।

गतिशीलता को अंग्रेजी में **Mobility** शब्द से व्यक्त किया जाता है जिसका अर्थ है 'संचालित होना'। वस्तुतः गतिशीलता का आशय स्थिति में गति से होने वाले परिवर्तन से है। जब कोई वस्तु या व्यक्ति अपने स्थान में गति से पीछे, ऊपर, या नीचे गतिमान होता है उसे गतिशीलता शब्द से व्यक्त किया जाता है। गतिशीलता किसी इकाई की वह क्षमता है जिसके द्वारा वह गतिमान होती है। जब हम सामाजिक गतिशीलता शब्द का प्रयोग करते हैं तो इसका आशय सामाजिक संदर्भों में व्यक्ति की गतिशीलता से होता है। इस प्रकार सामाजिक गतिशीलता से अभिप्राय किसी व्यक्ति अथवा समूहों द्वारा किसी एक स्थिति से किसी दूसरी स्थिति की ओर गतिमान होना है। सामाजिक गतिशीलता आधुनिक औद्योगिक-नगरीय समाजों की एक प्रमुख विशेषता मानी गई है। यातायात व संचार के क्रांतिकारी साधनों ने सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाने में मदद की है जिसके कारण व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान, गाँवों से नगरों की ओर, नगरों से महानगरों, एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश, एक देश से दूसरे देश तथा एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में सरलता से आ जा सकते हैं जिसके फलस्वरूप उनकी सामाजिक स्थिति या पद में परिवर्तन होते हैं।

परिवार किसी भी समाज में एक विशिष्ट स्थिति एवं महत्व रखता है। परिवार के बिना समाज की कल्पना सर्वथा असम्भव है। आज साम्यवादी समाजों में भी परिवार विहीन जीवन एक विचार मात्र ही है। सामान्यतः परिवार का आरम्भ विवाह के साथ ही होता है। क्योंकि परिवार में पति-पत्नी को ही मूल इकाई के रूप में समविष्ट किया जाता है। संतानयुक्त परिवार विकसित श्रेणी में आता है। कुछ समाजों में निःसंतान दम्पति वाला परिवार अपूर्ण परिवार माना जाता है। पूर्व इतिहास के अवलोकन

करने पर यह बात ज्ञात होती है कि संतान परिवार की एक आवश्यक शर्त रही है। जिसके अभाव में केवल पति पत्नी को ही परिवार के रूप में मान्य नहीं किया गया है। परिवार में माता-पिता, भाई-बहन तथा अन्य रक्त सम्बन्धी भी अभिन्न रूप में जुड़े हुए हैं। **परिवार** मानव समाज का इतना सर्वव्यापी और विराट यथार्थ है कि इसे किसी संकुचित और संक्षिप्त परिभाषा में बांधकर विश्लेषित करना सहज नहीं है। वैसे परिवार उसकी संरचना, प्रकार्य और निर्माणकारी घटकों के माध्यम से समाज विज्ञानों में चर्चित होता रहा है। **बरजेस** एवं **लाक** ने परिवार की परिभाषा विस्तार से की है। उन्होंने परिवार के प्रमुख पक्षों पर प्रकाश डाला है। परिवार उन व्यक्तियों का समूह है जो विवाह, रक्त या गोद लेने के बन्धनों से जुड़े हुए हैं। एक गृहस्थी का निर्माण करते हैं। पति पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री और भाई-बहन अपने-अपने क्रमशः सामाजिक कार्य और पति पत्नी में एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं तथा व्यवहार और सम्बन्ध रखते हैं। एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं और बनाये रखते हैं।

वर्तमान समय में हिन्दू परिवारों की शिक्षित महिलाओं में सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई है। पढ़े-लिखे परिवारों में विवाह के सम्बन्ध में पुराने विचारों और सोच में परिवर्तन हुआ है। शहरी क्षेत्रों में बाल-विवाह अब बीते जमाने की बात हो गई है। लड़कियाँ पढ़-लिख कर स्वतंत्र निर्णय लेने में पहले की तुलना में आसानी महसूस करती हैं। आज शिक्षित हिन्दू परिवारों में लड़कियाँ को अपने जीवन साथी चुनने में स्वयं के निर्णय को प्राथमिकता दी जाने लगी है। लड़कियों को शिक्षित करना परिवारों का प्रथम दायित्व माना जाने लगा है। विवाह के सम्बन्ध में उनकी राय को प्राथमिकता से स्वीकार किया जाता है। परम्परागत शिक्षा पाठ्यक्रमों के साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को करने को प्राथमिकता मिली है। पिछले एक दशक में व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में लड़कियों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है। एक समय था जब लड़कियों को शिक्षा हेतु बाहर भेजना असम्भव था। आज लड़कियाँ अपने गृह निवासों से दूर बड़े शहरों में होस्टलों में रहकर अध्ययन कर रही हैं। आत्मनिर्भरता के चलते लड़कियों की प्रथम प्राथमिकता अच्छी जॉब ढूँढना रहती है उसके बाद ही विवाह के बारे में सोचना द्वितीय प्राथमिकता बनती जा रही है।

अध्ययन का उद्देश्य—

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य परिवर्तनशील नगरीय और औद्योगिक परिस्थितियों के संदर्भ में सतना जिले की हिन्दू परिवार की महिलाओं के संरचनानात्मक और प्रकार्यात्मक पक्षों से सम्बन्धित गतिशीलता का अध्ययन करना है। यह अध्ययन मात्र संरचनानात्मक और प्रकार्यात्मक विशेषताओं में होने वाले परिवर्तन तक ही सीमित नहीं है। इस अध्ययन के द्वारा यह जानने का प्रयास किया जायेगा कि क्या भारतीय परिवार की संयुक्तता आधुनिक नगरीय और औद्योगिक परिस्थितियों में विलुप्त होती जा रही है या परिवर्तन की इन नवीन शक्तियों के होते हुए भी भारतीय परिवार अपने संयुक्तता के अस्तित्व और निरन्तरता को बनाए हुए है। यदि भारतीय परिवार की संयुक्तता नगरीय परिवेश में भी बनी हुई है तो इस संयुक्तता के नवीन आयाम क्या हैं? क्या नगरीय आवास, शिक्षा, व्यावसायिक

गतिशीलता और नवीन सामाजिक मूल्यों ने भारतीय परिवार की परम्परागत संयुक्तता को नवीन स्वरूप प्रदान किए हैं या इन कारकों ने संयुक्तता को विघटित करने में योगदान दिया है? वर्तमान अध्ययन इस तथ्य की भी गवेषणा करेगा है कि आधुनिक भारतीय परिवेश में एकाकी परिवारों का वास्तविक स्वरूप क्या है?

वर्तमान अध्ययन हिन्दू परिवारों के पारिवारिक जीवन गतिशीलता और परिवर्तन के विभिन्न आयामों के संदर्भ में अध्ययन करने का प्रयत्न करेगा। वर्तमान अध्ययन हिन्दू परिवारों के कुछ प्रमुख क्षेत्रों में निम्नलिखित **उपकल्पनाओं** को जाँचने का कार्य करेगा—

1. सामाजिक गतिशीलता के चलते हिन्दू परिवार की महिलाएँ आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ हो रही हैं।
2. क्या नगरीय आवास, व्यावसायिक गतिशीलता और शिक्षा ने नगरीय हिन्दू परिवारों के जीवन की परम्परागत संयुक्तता को लुप्त कर दिया है या ये परिवार संयुक्त परिवार की परम्परागत जीवन शैली का और भी प्रतिनिधित्व करते हैं?
3. क्या परम्परागत धार्मिक संस्कार और पारस्परिक उत्तरदायित्व की भावना ने मूल परिवार से पृथक रहकर निवास करने वाले परिवार को एक सूत्र में बांधने की भूमिका अभी भी निभा रहे हैं।
4. क्या शिक्षा, नगरीय व्यवसाय और आवास ने हिन्दू परिवारों के विवाह के स्वरूप, वैवाहिक निर्णय की प्रक्रिया और वैवाहिक आकांक्षाओं को परिवर्तित करके उसे अधिक व्यक्तिनिष्ठ बना दिया है।
5. हिन्दू परिवारों में विधवा विवाहों में वृद्धि हो रही है।
6. दहेज प्रथा हिन्दू परिवारों में अभी भी अपने चरमोत्कर्ष पर है।
7. शिक्षित हिन्दू परिवार की लड़कियों के विवाह की उम्र में परिवर्तन हो रहा है।
8. संयुक्त और एकाकी परिवार विवाह के परम्परागत और नवीन आदर्शों में क्या अंतर उत्पन्न करते हैं।
9. क्या हिन्दू परिवारों की स्त्रियाँ परिवार में पुरुषों के समकक्ष स्थान प्राप्त कर रही हैं या उनकी स्थिति अभी शोषण और दासता की बनी हुई है।
10. हिन्दू परिवार की स्त्रियों का आर्थिक जीवन में प्रवेश किस मात्रा में और किन परिस्थितियों में हुआ है, क्या उनका आर्थिक जीवन में प्रवेश परिवार की सामाजिक स्थिति को उन्नत करने में सहायक रहा है।
11. नगरीय पृष्ठभूमि उच्च शिक्षा प्राप्त और एकाकी हिन्दू परिवार की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति कम शिक्षा प्राप्त ग्रामीण पृष्ठभूमि और संयुक्त परिवार की तुलना में अपेक्षाकृत उच्च है।
12. क्या हिन्दू परिवार के वयोवृद्ध पुरुष सदस्य की महत्ता, सत्ता और निर्णय के क्षेत्र में निरन्तर कम होती जा रही है।

शोध के लिए प्रस्तावित विधि—

अध्ययन प्रविधि का आशय उन सुव्यवस्थित तरीकों, विधियों से है जिनके द्वारा शोधार्थी अध्ययन विषय से सम्बन्धित विश्वसनीय एवं यथार्थ तथ्यों का संकलन करता है तथा उन्हें व्यवस्थित करता है। यह अध्ययन ऐतिहासिक पद्धति, वैयक्तिक अध्ययन पद्धति तथा समाज वैज्ञानिक पद्धति द्वारा किया जायेगा। सामान्य अर्थों में वैज्ञानिक पद्धति से आशय अध्ययन की ऐसी विधि या कार्यप्रणाली से होता है जो भावनात्मक चिन्तन पर आधारित न होकर अवलोकन, साक्षात्कार अनुसूची तथा निदर्शन प्रविधियों पर आधारित होता है। इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति ज्ञान प्राप्ति की वह व्यवस्थित विधि है, जो तथ्यों के निष्पक्ष एवं व्यवस्थित निरीक्षण, परीक्षण, सत्यापन, वर्गीकरण, विश्लेषण व सामान्यीकरण पर आधारित होती है। इस समाजवैज्ञानिक अध्ययन में इस विधि का प्रयोग किया जाएगा। इस अध्ययन पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि (1) यह पद्धति अवलोकन पर जोर देती है, (2) विचारों को व्यवहार में परीक्षण करने का प्रयत्न करती है, (3) उन प्रविधियों का प्रयोग करती है जिसे तथ्यों का वैज्ञानिक तरीके से एकत्रीकरण किया जा सकता है, (4) तथ्यों का वर्गीकरण, तथा (5) सामान्यीकरण एवं निष्कर्षों का प्रस्तुतीकरण। इस तरह इस शोध अध्ययन में ऐतिहासिक तथा वैयक्तिक पद्धति के साथ ही साथ समाज वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति को अपनाया जायेगा। चूँकि सतना जिले जिले को समग्र के रूप में अन्तर्विष्ट किया गया है, अतः प्रतिदर्श चयन के प्रथम स्तर में वार्डों एवं गाँवों का चयन किया जायेगा, द्वितीय स्तर पर प्रत्येक चयनित वार्ड एवं गाँवों से परिवारों का चयन कर उनकी महिलाओं से सम्पर्क स्थापित कर साक्षात्कार प्रणाली के आधार पर तथ्यों का संकलन किया जायेगा। प्रस्तावित अनुसंधान योजना के अनुसार 300 महिला उत्तरदाताओं को प्रतिदर्श के रूप में लिया जायेगा। प्रस्तावित

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची—

- अग्रवाल एवं पाण्डेय (1998) — सामाजिक शोध, आगरा बुक डिपो, आगरा
- बघेल डॉ. डी.एस. (2004) ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा
- बघेल, डी. एस. : समकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति
- मुकर्जी, डॉ. रवीन्द्र नाथ (1996) भारत में सामाजिक गतिशीलता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- महिला विधि भारती, शोध पत्रिका, नई दिल्ली 2004 से 2006
- महाजन डॉ. धर्मवीर (1992-93)—मूल समाजशास्त्रीय अवधारणाएँ
- डॉ. शिवराज शास्त्री (1996)—ऋग्वेदिक काल में परिवार का स्वरूप
- ओम प्रकाश जोशी (2001) — भारत में सामाजिक गतिशीलता
- पाटिल, डॉ. अशोक (2004) ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

कथक गुरु बाबूलाल पाटनी का संगीतिक योगदान



डॉ. अंजलिका शर्मा

शोध निर्देशिका

प्रिया गुप्ता

शोधार्थी

संगीत विभाग,

राज.वि.वि., जयपुर

नृत्य के शास्त्रीय पक्ष को जीवित रखने एवं उसके हस्तान्तरण में पं. बाबूलाल पाटनी जी का विशेष योगदान है। आपने जहाँ कथक नृत्य को जीवंत प्रदर्शन कर दर्शकों को आनन्दित किया। वही दूसरी ओर एक विचारशील रचनाकार बन नृत्य को आत्मसात किया और उसके विभिन्न पहलुओं का सूक्ष्म अध्ययन कर नृत्य कला के समग्र स्वरूप को इतिहास की धरोहर बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया।

पाटनी जी को नृत्य वंश परम्परा से नहीं प्राप्त हुआ था, बल्कि ये उनकी स्वयं की मेहनत, लगन व सृजनशील का ही परिणाम था कि उन्होंने एक नृत्याचार्य होने के साथ-साथ नृत्य के जयपुर नगर में स्थापत्य और प्रचार-प्रसार हेतु अनेक कार्य किये। आपने संगीत की शिक्षा को जनसामान्य तक सुनियोजित व सुव्यवस्थित ढंग से पहुँचाने के लिए कई संगीतिक संस्थाओं का गठन किया। जिसके मध्यम से जयपुर नगर में कथक नृत्य की नींव और सुदृढ़ता से रखी गई जो आज तक अपनी विशिष्ट उपलब्धियों के साथ विद्यमान है। अतः संस्थाओं के संदर्भ में पाटनी जी का योगदान इस प्रकार है।

अखिल भारतीय गाधर्व महाविद्यालय जयपुर

इस संस्था की स्थापना 29 मार्च 1958 को महावीर दिगम्बर स्कूल, सी-स्कीम में हुई। संस्था का उद्देश्य एवं लक्ष्य संगीत एवं नृत्य क्षेत्र में स्थिरता एवं ठहराव के परे जाग्रति उत्पन्न करना था। संगीतोन्मुख जिज्ञासुओं को ऐसी सुलभ सुविधाएँ उपलब्ध कराना, जिसके माध्यम से वह संगीत क्षेत्र में सुचारु व व्यवस्थित ढंग से उच्च स्तर का प्रारम्भिक शिक्षण प्राप्त कर सके।

इस संस्था के संस्थापक सदस्यों में पं. बाबूलाल पाटनी, श्री बृज सुन्दर शर्मा, आर.सी. कासलीवाल आदि प्रमुख थे। आपने ही मिलकर इस संस्था की कार्य प्रणाली और व्यवस्था का कार्यभार

संभाला था। इस संस्था में निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती थी। प्रत्येक शिक्षक को वेतन मेनजमैन्ट की ओर से प्रदान किया जाता था। इस संस्था की उपलब्धियां इस प्रकार हैं। यह संस्था शिक्षण और प्रदर्शन दोनों पक्षों पूर्व प्रभुत्व रखती थी। संस्था शिक्षण और प्रदर्शन दोनों पक्षों पर पूर्ण प्रभुत्व रखती थीं। प्रदर्शन के अन्तर्गत उच्चकोटी के कलाकारों के कला प्रदर्शन के कार्यक्रम आयोजित करवाना। जिससे विद्यार्थियों में क्रियात्मक संगीत को समझने और प्रस्तुत करने की क्षमता विकसित हो सके। इस संस्था द्वारा विभिन्न संगोष्ठियों व सेमिनारों का आयोजन भी किया गया। जिनमें 29 मार्च 1959 में प्रसिद्ध सितार वादक श्री रविशंकर व उ. विलायत खां का सितार वादन हुआ। 1964 में अखिल भारतीय शिक्षण एवं संगीत सम्मेलन का आयोजन हुआ जिनमें 52 प्रमुख कलाकार एवं 16 संगीत शास्त्रियों ने भाग लिया। इसमें मुख्य रूप से विनायक राव पटवर्धन, श्री नारायण व्यास, भीमसेन जोशी (भारतरत्न) आदि उल्लेखनीय थे।

पाटनी जी के संगीतिक जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि **प्रथम अखिल भारतीय कथक नृत्य सेमिनार** का आयोजन जयपुर नगर में करवाना था। “जिसका विषय कथक नृत्य की विभिन्न विधाएँ एवं इसका उत्थान” इस सेमिनार में कथक के 83 गुरुओं व कलाकारों और शिष्य सम्मिलित हुए। 8 से 11 फरवरी 1969 रवीन्द्र मंच जयपुर में आयोजित इस सेमिनार में कथक नृत्य के सदियों पुराने इतिहास को कथक के मूर्धन्य कलाकारों ने एकमत होकर लिखवाने को सहमत हुए, ये जयपुर संगोष्ठी की क्रान्तिकारी उपलब्धि थी।

ये संगोष्ठी चार दिन तक चली एवं रातें घुँघरूओं के बीच बीती। फन के उस्ताद भाव मुद्राएँ बताते व नाचते भी। इस सेमिनार की रिपोर्ट में एक अखबार में यह छपा था— “उस्तादों के लिए उम्र क्या चीज है। लच्छू महाराज पहली सितम्बर (1901) को पैदा हुए। आज भी वे अपने शरीर में विद्युत तरंगों जितनी तीव्र गति प्रदुर्भूत कर लेते हैं। उन जवानों के लिए वे आदर्श हैं जो चार तोड़े नाचने के बाद हाफने और पसीने छोड़ने लगते हैं।” उक्त विवेचन स्पष्ट है कि यह एक अत्यन्त भव्यशाली आयोजन था। जिसमें सभी कलाकारों की रहने की व्यवस्था करना, स्टेशनों से सभी को लाना—ले जाना, भोजन आदि सभी की व्यवस्था, आमन्तरण, कार्यक्रम के मंच आदि की पूर्ण व्यवस्था करना पाटनी जी की जिम्मेदारी थी। साथ ही पूरे कार्यक्रम के लिए धनराशि की व्यवस्था भी पाटनी जी स्वयं व्यापारी वर्ग से चंदा इकट्ठा करके की थीं ऐसे संगीत उपासक को हम शत—शत नमन करते हैं। जिनकी प्रशासनिक समझ और कार्यकुशलता ने इस संगोष्ठी को समृद्ध बनाया।

महाविद्यालय द्वारा तरुण कलाकारों को सामने लाने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर संगीत एवं नृत्य—प्रतियोगिता का कार्यक्रम अपने हाथ में लिया जो राजस्थान में अपने प्रकार का अनूठा प्रयास था।

जनवरी-फरवरी, 1975 में भारत के महान् नृत्याचार्य जयपुर के श्री नारायण प्रसादजी की हीरक जयन्ती समारोह मनाया गया।

इस प्रकार इस संस्था द्वारा बहुत से मूर्धन्य कलाकारों को संगीत जगत को प्रदान किया जिनमें डा. गीता संघवी, कृष्णा भसीन, प्रमिला राव, रुबी चटर्जी इत्यादि हैं।

पाटनी ने विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया और सभी कलाकार पाटनी जी के यहाँ ही रुकते थे। उस समय की महान कलाकार सितारा देवी से आपके घरेलू सम्बन्ध थे। आपके आग्रह पर सितारा देवी ने कई बार जयपुर नगर में अपने कार्यक्रमों की प्रस्तुती दी।

परिषद् मे हाउस टैक्स इन्सपेक्टर के पद पर आप 1975 में सेवा निवृत्त हो गये लेकिन नृत्य की शिक्षा यथावत प्रदान करते रहे। धीरे-धीरे संस्था के सभी सदस्य बिखरने लगे। पाटनी जी भी शारीरिक बीमारी से ग्रस्त हो गये। जिस कारण यह महाविद्यालय बंद हो गया।

पाटनी जी ने पुनः स्वस्थ होकर अपनी तीव्र इच्छा शक्ति के बल पर एक कथक नृत्य संस्था की योजना बनाई और उस कार्य में जुट गये। आप व्यवसायी वर्ग से थे और आपकी सामाजिक व राजनीतिक पकड़ बहुत मजबूत थी। आपकी एक शिष्या रश्मि भनोत के पिताजी मि. भनोत सचिवालय में काफी अच्छे पद पर आसीन थे। उनके मार्ग दर्शन में पाटनी जी एक वर्ष तक रोज साईकिल पर जाकर इस संस्था की स्थापना हेतु मान्यता प्राप्त की। तब राजस्थान सरकार द्वारा इस संस्थान की स्थापना हेतु पाटनी को 1 लाख रुपये की राशि प्रदान की गई।

जयपुर कथक केन्द्र की स्थापना 1978 मे हुई, जबकि केन्द्र का कार्य औपचारिक रूप से 19 मई 1979 से प्रारम्भ हुआ।

स्थापना का उद्देश्य संस्थान की स्थापना का उद्देश्य जयपुर घराने के कथक नृत्य की प्राचीन एवं शास्त्रीय शैली को पुनर्जीवित करना एवं संवर्द्धित करना, विविध पाठ्यक्रमों द्वारा अनुसंधान करना है। इन्ही कार्यक्रमों में मुख्यतः छात्र-छात्राओं को जयपुर घराने की कथक नृत्य शैली का प्रशिक्षण प्रदान कर उच्चस्तरीय मंच प्रदर्शन की क्षमता वाले कलाकारों के रूप में प्रतिष्ठित करना है। इस संस्था के शैक्षणिक एवं प्रशासनिक संचालन के लिए राज्य सरकार द्वारा 15 सदस्यों की साधारण सभा का गठन किया गया था। जिसमें पाटनी जी सचिव पद पर थे। आपने 15 वर्ष तक सचिव पद पर कार्य किया। संस्था के गठन से लेकर प्रत्येक विद्यार्थी तक आपका सीधा सम्पर्क रहता था। किसी भी विद्यार्थी, शिक्षक, संगतकार या कार्यलयकर्म के बिना सुचना अनुपस्थिति में पाटनी जी सीधे उसके घर पहुँच जाते। जिससे कोई झूठ नहीं बोल पाता था। कुछ अंश: पाटनी जी शिष्या रेखा ठाकुर (वर्तमान जयपुर कथक केन्द्र की सचिव व प्रिंसिपल) से प्राप्त साक्षात्कार द्वारा। जब रेखाजी की डण्बुड की परीक्षा थी तो उन्होंने पढ़ाई करने के लिए छुट्टी ले ली। पाटनी जी ने नियमित समय पर

कक्षा पर ना पहुँचने पर रेखाजी के घर फोन कर दिया। फोन रेखाजी ने ही उठाया। उन्होंने बहाना बना दिया गुरुजी आज मेरी तबीयत ठीक नहीं, बस शाम को पाटनी जी उनके घर पहुँच गये। वह स्तब्ध रह गई। वह कुछ ना बोल सकी, आपके पिताजी ने आपको डाँटा कि झुठ क्यों बोला रेखा जी ने माफी माँगी। ऐसे बहुत से संस्मरण हैं जो पाटनी जी के व्यक्तित्व को परिभाषित करते हैं। आप किसी भी बात की तह तक जाकर ही विश्वास करते थे। आपके अनुशासन व नियम के कारण ही यह संस्था आज जयपुर नगर में कथक नृत्य की सर्वोत्तम संस्था बनकर उभरी है। ऐसे महान व्यक्तित्व को उनके महान कार्यों हेतु संगीत जगत हमेशा याद करता रहेगा।

संदर्भ

1. कथक के प्राचीन नृतांग, गीता सांघवी
2. स्मारिका – अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय, 1969, 1973
3. जयपुर कथक केन्द्र की वार्षिक प्रतिवेदन, 2015 के अनुसार।
4. डॉ. गीता सांघवी से साक्षात्कार में प्राप्त जानकारी अनुसार।
5. रेखा ठाकुर से प्राप्त जानकारी के अनुसार।

आदिवासी समाज : अन्याय का शिकार

राजकुमार अहिरवार (सहा. प्राध्यापक)

शास. स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर

उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर म.प्र.

भारतीय सामाजिक संरचना बहु आयामी है। यहाँ का समाज विविध धर्मों बहु रंगी होने के साथ-साथ सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक विविधताओं को अपने में सँजोये हुए है, पर उसका सामंजस्य अपने आंतरिक रूप में उतना आकर्षक और सहज नहीं है जितना कि वह बाह्य रूप में सुचिक्कन और पारदर्शी तथा जटिल है। इस विखण्डन के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं— जैसे मार्क्सवादी विचारधारा (वर्ग-संघर्ष, संसाधनों का समान वितरण) समाजवादी विचारधारा (राष्ट्रीय आय का कुछ अंश वंचितों के हित में खर्च करना), राजनीतिक विचारधारा (दलगत राजनीति), मनुवादी विचारधारा (सामाजिक असमानता) और सांस्कृतिक विचारधारा (हिन्दू अस्पृश्य, आदिवासी और मुस्लिम) आदि।

भारतीय समाज की कुल जनसंख्या का लगभग आठ प्रतिशत हिस्सा आदिवासियों का है। परम्परागत रूप से हम उस समाज को आदिवासी संज्ञा से अभिहित करते हैं, जो भारत के मूल निवासी हैं और अज्ञात काल से भारत के जल, जंगल, जमीन के स्वामी रहे हैं। आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व भारत की आदि सभ्यता (सिंधु सभ्यता) के प्रमुख नगरों—हड़प्पा, मोहन-जोदड़ों, कालीबंगा, लोथल, सुरकोटदा, धौलावीरा, राखीगढ़ी, रोपड़, आलमगीरपुर आदि के निर्माता आदिवासही ही थे। “भारतीय संविधान में आदिवासी समाज के लिए “अनुसूचित जनजाति शब्द को स्वीकृति दी गयी है।”¹ परंतु सामान्य जीवन में आदिवासी शब्दावली प्रचलन में है। इसी भारतीय संविधान में जनजातियों के सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, प्रशासनिक और सेवाओं—सुविधाओं में उन्नयन के लिए अनुच्छेद “ 275, 325, 330, 332, 335, 338, 324, 244 और संविधान की पाँचवीं अनुसूची”² में विषय उपबंध किये गये हैं। भारतीय भू-भाग के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में मुण्डा, ओराँव, हो, बिरहोर कोल, भील, गोंड, खस, भोटिया, गारो, संथाल, मुड़िया, माड़िया, थारू, कूकी, चेंचू, कोरबा, कोरकू, बैगा, सौर, मीणा, गरसिया लोहार, कालबेलिया, नागा, सहारिया आदि जनजातियाँ निवास करती हैं।

भारत में सैंधव सभ्यता के पतनोपरान्त भारतीय मूल निवासी (आदिवासी) और बाह्य-सभ्यता वासियों (आर्यों) के मध्य आर्थिक, सामाजिक और राजनीति वर्चस्व की संघर्ष गाथा आर्य-अनार्य-संघर्ष (देवासुर संग्राम) के रूप में ख्यात है। तब से लेकर वर्तमान समय तक संघर्ष निरंतर जारी है। तब के असुर राजा बलि, रावण, शंकर, महिषासुर हिरण्यकश्यप आदि साम-दाम दण्ड भेद से परास्त किये गये थे और आज का आदिवासी समाज (अनुसूचित जनजातियाँ) पुलिस प्रशासन, जमींदार, साहूकार, चुनाव, भूमि अधिग्रहण औद्योगिक कम्पनियों, राजनेताओं, अपिक्षा, माओवाद, नक्सलवाद आदि तमाम प्रपंचों से तबाह किये जा रहे हैं। आर्य साहित्य में मूल निवासी भारतीय

समुदाय को तिरस्कार एवं शत्रु की भावना से देखा गया है, लेकिन वर्तमान साहित्य स्वतंत्र भारत का साहित्य है, और जागरूकता का साहित्य है जो गौतम बुद्ध के तर्क सिद्धांत और बिरसामुण्डा की जनजातीय अस्मिता बोध तथा डॉ. अम्बेडकर की मौलिक संवैधानिक व्यवस्थाओं और चिन्तन से प्रमाणित है।

वोट की राजनीति भारतीय चुनाव-प्रणाली को बार-बार बदलवा करने को मजबूर करती है। पंचायत से लेकर पार्लियामेंट तक जनजातीय क्षेत्र में उस आदिवासी उम्मीदारवार को जिताया जाता है जो सवर्ण मानसिकता की राजनीति, मनुवादियों की राजनीति, व्यवसायिक बन्धुओं की राजनीति के अनुकूल होता है। अर्थात् जिसमें अतिषय लोच होती है, गुलाम का अंश ज्यादा होता है और जिसमें बौद्धिक गुणा-भाग की आषंका नहीं रहती। वोट की राजनीति में यदि गलती से भी प्रबुद्ध या उच्च शिक्षित आदिवासी अपने हुनर से या भोले आदिवासियों के संयोग से राजनीतिक सदनों में पहुँच भी जाता है तब वह स्वार्थ के उन्हीं औजारों का इस्तेमाल करने लगता है, जिसका कि गैर आदिवासियों द्वारा उन्हीं के विरुद्ध किया जाता रहा है और किया जाता है। जैसे कि अपने ही समाज के ईमानदार, बुद्धिजीवी नेता को आगे न बढ़ने देना, येन केन प्रकारेण विरोधी की जमानत जप्त कराने के उद्देश्य से अपने समर्थकों के वोट उसके विरुद्ध अंतरित करना आदि हथकंडे अपनाये जाते हैं।

डॉ. अम्बेडकर की संवैधानिक व्यवस्था के कारण आदिवासी समाज में आषातीत बदलाव आया है। शैक्षणिक और आर्थिक समृद्धि के कारण आदिवासी समाज की कुछ जातियों का जीवन-स्तर तो बढ़ा है लेकिन सभी जातियों का नहीं। मीणा, भील (भिलाला), गोंड़ आदि के सदस्य ज्यादा आगे बढ़े हैं। इसका कारण है कि इन जनजातियों का सामाजिक और आर्थिक स्तर पुरातन काल से सम्पन्न रहा है, क्योंकि इनके संबंध या तो राजघरानों से रहे हैं या फिर स्वयं शासक-जाति रहे हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इन्हीं वर्ग के सम्पन्न लोगों के आचार-विचार, पूजा-पद्धतियाँ, शोषण के तरीके, सवर्णों (हिन्दूओं और ईसाई) जैसे हो गये हैं। ऐसे लोग अपने को आदिवासी समाज का अंग न मानकर हिन्दूवादी, चर्चवादी मानने लगे हैं, जबकि किसी भी दषा में घोषित रूप से और व्यावहारिक रूप में इन्हें सवर्ण-व्यवस्था में हिन्दूवादी उच्च धार्मिक पद्धतियों में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। प्रथम या द्वितीय श्रेणी का अधिकारी बन जाने मात्र से कोई सवर्ण नहीं हो जाता है। हाँ वह अपने समाज में अवश्य सवर्ण बनकर अपने ही समाज के लोगों से आर्यवत् व्यवहार करने लगता है, जो जनजातीय समाज के लिए हितकर नहीं है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में भी वह अपनी पहचान खोता जा रहा है। उसका ब्राह्मणीकरण होता जा रहा है। आज भगोरियाहाट उनका सामूहिक परिणयोत्सव या सामूहिक विवाह सम्मेलन न होकर मनोरंजन, वस्तु-विनिमय का साधन बन चुका है। आदिवासी समाज अपने देवताओं-बड़ादेव, बूढ़ादेव लँगटा बाबा, महादनिया, सरनामाई आदि को विस्मृत कर राम, कृष्ण, ईसा मसीह को मानने लगा है। उपन्यासकार रणेन्द्र ने अपने उपन्यास, "ग्लोबल गाँव के देवता" में आदिवासी समाज (असुर जनजाति) का विषद् वर्णन वर्णन किया है। तमाम तरह के हिन्दुत्व-संस्कृति के पोषक, आदिवासियों के

लिए शोषक बन बैठे हैं। “बाबा शिवदास भी ऐसा ही छलिया है जो शिवभक्त बनकर असुरों की सांस्कृतिक स्वायत्तता में हस्तक्षेप करता है और नये तरह का फण्डा देता है कि काले जानवर से परहेज करना है, माँस-मछली से परहेज करना है।”³

आदिवासी समाज का अधिकांश जन समूह अनपढ़ है, जिसका नाजायज फायदा राजनीतिक विचारधारा के लोग निरंतर उठाते रहते हैं। जनजातीय भू-भाग और उनके सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में वामपन्थ ने गहरी पैठ बना ली है। वाम पन्थ वह विचारधारा है जो आर्थिक संसाधनों को ध्यान में रखकर अपना जनाधार निर्मित करती है। यह मूलतः कार्ल मार्क्स की विचारधारा और उसके सिद्धांतों का सैद्धान्तिक अनुकरण करता है, लेकिन व्यवहार में वह अन्य राजनीतिक धाराओं की तरह ही शोषक है। वह माओवाद, नक्सलवाद, मार्क्सवाद के छद्म आवरण अनी माँगानुसार ओढ़ लेता है। इनवादों के भौतिक क्रियान्वयन में पिरता है तो वह भोला-भाला आदिवासी समाज जो थोड़ा सा भी क्रूर नहीं है। आदिवासी समाज को इस कदर सताया गया है कि वह कृषि कार्य हेतु इसलिए भूमि का पट्टा स्वीकार नहीं करता है कि उसे बार-बार लगान के नाम पर जमींदारों, साहूकारों द्वारा प्रताड़ित न किया जा सके। “एक बूढ़ी संथाल औरत महाजन के पैरों पर गिड़गिड़ा रही थी। बाबू अब तो बस करो अब तो खाते से नाम काट दो।”⁴

लक्ष्मण गायकवाड़ ने अपने उपन्यास—‘वकील पारधी’ में पारधी समाज का और डॉ. मृदुला शुक्ला ने अपने उपन्यास—‘हिरनी-बिरनी’ में बनजारा समाज का बड़ा मर्म स्पर्शी चित्रण किया है। आदिवासी परम्परा में हिन्दूदेवी-देवताओं का कहीं स्थान नहीं है, लेकिन उनका सांस्कृतिक और धार्मिक शोषण करके उन्हें उनके असली वंशजों से पृथक कर पराया धर्म, संस्कार, रीति-नीति छल-छद्म से थोप दी जाती है। लेखक और नाटककार अखिनी कुमार, ‘पंकज’ तो यह सगर्व घोषणा करते हैं कि “वे (आदिवासी) महाप्रतापी महिषासुर के वंशज हैं इसलिए विजयदशमी या दशहरा उनके लिए खुशियाँ मनाने का दिन नहीं है।”⁵

भारत का आदिवासी अपने आदिम काल से या सभ्यता के काल से इस भारतीय भू-भाग के बड़े-बड़े हिस्सों का शासक रहा है। रावण, महिषासुर आदि अनेक आदिवासी शासक इनके आदर्श रहे हैं। आज भी बुद्धिजीवी आदिवासी अपने आदर्श नायकों को समान देता है। अतीत और वर्तमान की भारतीय राजनीति या आर्यनीति का तकाजा है कि वह साधारण और निम्न आर्थिक सामाजिक व्यवस्था में कमजोर या सताये गये समाज को उनके आदर्श पुरुषों, नायकों को खलनायक घोषित कर उन्हें मुख्यधारा से अलग रखने का प्रयास करती है। “अधिकतर आदिवासी रावण को अपना पूर्वज मानते हैं। दक्षिण के अनेक द्रविड समुदायों में रावण का पूजन आज भी किया जाता है। झारखण्ड के पूर्व मुख्यमंत्री शिवू सोरेन आज भी रावण को अपना कुल गुरु मानते हैं।”⁶

सामाजिक आर्थिक समरसता के सिद्धांत के तहत आदिवासी विषम की नितान्त आवश्यकता है, क्योंकि लगभग दस करोड़ जनजातीय समाज को मुख्यधारा में लाना ही होगा अन्यथा भारत सच्चे रूपों में लोकतंत्र नहीं कहा जायेगा। आदिवासी कथा जगत (कहानी संकलन) के संपादक

केदार प्रसाद मीणा ने पुस्तक की भूमिका में लिखा है—“आदिवासी विमर्ष कोई संकीर्ण या कट्टर मत नहीं है। यह बाकी की बर्बादी का आकांक्षी या इतिहास के पन्नों से बदला लेने के सपनों का विमर्ष नहीं है। यह सम्पूर्ण सृजनात्मकता के साथ बचाने की वैचारिक जद्दोजहद है। यह मनुष्य के हर कदम में सार्थकता देखता है और प्रकृति के हरण कण में जीवनतत्त्व खोजता है”।⁷ कहानीकार केदार प्रसाद मीणा ने सामान्तों के शहर की राजकुमारी में एक ऐसे आदिवासी नव युवक विद्यार्थी (दूला) का चित्रण किया है जो अपने ही समाज के सम्पन्न नौकरी-पेसा वालों से, शहरी चकाचौंध से और सवर्ण मानसिकता के पोषकों से पराजित होकर दुर्व्यसनों की लत लेकर वापस अपने गाँव आ जाता है। ऐसे ही अन्यान्य आदिवासी युवक आज भी अपने और गैरों के द्वारा ठगे और अपमानित किये जाते हैं। वह इसलिए कि आदिवासियों में धनाढ्य आदिवासी ही श्रेष्ठ बना रहना चाहता है ताकि वह सवर्णों के जैसे घातक कृत्यों को अपने स्वार्थ के लिए अंजाम देता रहे। सभ्य और सवर्ण समाज भी कहाँ चाहता है कि उसके बराबर से कोई गैर सवर्ण स्थान ग्रहण करे। आदिवासियों, वनवासियों, घुमक्कड़, गरीब जातियों के साथ न तो कानून अपना धर्म निभाता है और नही प्रशासन। गाँवों के जमींदार छल-कपट से या लट्ठ-बन्दूक और पुलिस के सहारे असहायों, निर्धनों को चल-अचल सम्पत्तियों और इज्जत से सदैव बेदखल करते आये हैं। कहानीकार ‘सत्यनारायण’ ने अपनी महानी ‘भेम का भेरु माँगता कुल्हाड़ी ईमान’ में उक्त अन्याय का वर्णन इस तरह से किया है— “वे तो जमींदार काँकड़ पर गाँव से खदेड़कर यहाँ काँकड़ पर पट्टे दे दिये। वहाँ उनकी खाली हुई जगहों को औने-पौने दाम पर पटेलों ने हड़प लिया है। उनको पट्टे नहीं तो वे सरकार के पास जाते, उनकी सुनी जाती। उनके लिए कानून है। पर हमारा क्या है ? हम तो घुमक्कड़ हैं, हमारे लिए कोई स्थायी जगह नहीं, हमारे लिए कोई कानून नहीं”।⁸

जंगल का आदिवासी अपने ही समाज के नक्सली समूहों और सरकारी आदमी (पुलिस) दोनों से परेशान रहता है। नक्सली समूहों के मुखिया सभ्य समाज के चापलूस, साधन-सम्पन्न, सत्ता और सम्पत्ति लोलुप इंसान होते हैं जो सीधे-साधे सम्पत्तिहीन आदिवासियों में मार्क्सवाद के नाम पर ज़हर भरते हैं और दूसरी तरफ सरकारी पुलिस और सरकारी जन-प्रतिनिधि होते हैं और नक्सलवादी पुलिस तंत्र से साँठ-गाँठ कर हथियार और वर्दी लूट ले जाते हैं। कार्यवाही के नाम पर बेजुबान आदिवासियों को नक्सली बताकर जेल में ढूँस दिया जाता है और उनकी पत्नियों बेटियों की अस्मत् लूटी जाती है। यह खेल निरंतर चलता रहता है। नक्सलवाद का सफाया तो नहीं होता ; लेकिन आदिवासियों, जंगल, प्राकृतिक संसाधनों का सफाया अवश्य होता रहा है। कहानीकार रविकान्त मिश्रा ने कहानी ‘कँटीली बाड़’ में आदिवासियों पर हुए सरकारी जुल्म का बखान करते हैं कि “ये सरकारी ट्रेण्ड जानवर हमारे घर में उसी तरह घुस गये जैसे चूहे के बिल में साँप बिना भय के घुस जाता है। मुझसे पूछा— बता हथियार कहाँ छुपा रखा है। साला ऐसे नहीं बतायेगा। बहुत देर तक सरकारी जानवर हमारे घर में जमें रहे। प्यारी बहन इपिल के सामने अफ्लील चुटकुले बोलकर हँसते रहे। घर की तलाषी में जब कुछ नहीं मिला तो मुझे और बाबा को बालों से पकड़कर उसी तरह

झकझोरा जैसे हम कोई भेड बकरी हों। सरकारी जानवरों का मुखिया नफरत से बोला— साले हरामखोर अगर जंगली जानवरों को घर में पनाह दी तो तुम्हारी बेटी के साथ हम सभी सुहागरात मनायेंगे वह भी तुम्हारी आखों के सामने”⁹

आदिवासी समाज की अनेकानेक विचित्रताओं और विविधताओं को ‘रेड जोन’ उपन्यास में में खूब जाँच-परखा गया है। जनजातीय समाज को जहाँ एक ओर किनी चटर्जी (रेड जोन का मार्क्सवादी पात्र) जंगल-जंगल अपने नेटवर्क के सहारे पहुँचकर आदिवासी समूह को सरकार, शासन और पुलिस के विरुद्ध भड़काकर स्वार्थ सिद्ध करता है वहीं दूसरी ओर आदिवासियों की समतल उपजाऊ भूमि पर बनियों, व्यापारियों और साहूकारों तथा सवर्ण दबंगों द्वारा कब्जा कर लिया जाता है। अर्थात् जनजातीय समाज कुआँ और खाई के बीच जीवन यापन के लिए मजबूर है। “सरकार दावा करती है कि बैंकों की मदद से वह महाजनी प्रथा को खत्म कर देगी। लेकिन बैंक भी महाजनों की तरह व्यवहार करती है ग्रामीणों से। जामा प्रखण्ड का गाँव है जमदली पहाड़िया आदिवासियों का गाँव है। पहाड़िया मुख्य रूप से जंगल उत्पादित वस्तुओं पर जीते हैं। पहाड़ के ढलान पर थोड़ी-बहुत खेती करते हैं। यहाँ पम्पिंग सेट किस काम का। लेकिन दलाल मत्थे मढ़ जाते हैं। यह कहकर कि मुफ्त में मिलता है। बाद में बैंक वाले कर्ज वसूलने के लिए पहुँच जाते हैं। घर-द्वार गोरू-बैल जो कुछ भी है उनके पास उसकी कुर्की-जप्ती की नोटिस जारी कर देते हैं। कर्ज चुकाने के डर से वे गाँव से पलायन कर जाते हैं”¹⁰

राजनीतिक बन्दर बाँट और स्वार्थ का एक बेहद सच्चा नमूना रेड जोन उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है, जिससे यह यकीन पक्का होता है कि लोकतंत्र मात्र भीड़ तंत्र है, शोषक तंत्र है और अधिनायकतंत्र हैं, वह आदिवासीका मुक्ति तंत्र कदापि नहीं है। “समस्या को सलटाने के लिए आने वाले भाजपा नेताओं ने अपने केन्द्रीय नेतृत्व से सम्पर्क किया। यहाँ कोई मानने वाला नहीं। बाबूलाल को स्वीकार नहीं करेंगे वे तो किसे बनाया जाए ? करिया मुण्डा नहीं नहीं। उनसे नहीं बनेगी बात। छत्रराम पुराने नेता है मंत्री भी रह चुके हैं बिहार में। नहीं वे भी नहीं चलेंगे। मैनेज नहीं कर पायेंगे इन जैसे शातिर लोगों को। कोई नया आदमी खोजो। आदिवासी हो और नहीं तो क्या ! आदिवासी दिखे लेकिन जिसमें आदिवासियत न हो नहीं तो राज्य में पूँजी-निवेश नहीं होगा। उद्योग धंधे नहीं लग पायेंगे।”¹¹

समाज का यह पिछड़ा शोषित और उपेक्षित समाज सभ्य जातियों वर्गों के षडयन्त्रों से निरन्तर अपमानित और पीड़ित है। भारतीय जनजातीय समाज की विविध अस्मिता, संस्कृति, शांति-प्रियता, सरलता और सम्पत्ति को विविध षडयन्त्रों, औजारों, हथियारों से या बहला फुसलाकर समाज के सम्भ्रान्त ताकतवर और शिक्षित समाज द्वारा छीना गया है। इस छीना झपटी में आदिवासियों के जातीय बंधु-बांधव भी पीछे नहीं रहे हैं। कारण कि सजातीय स्वजन येन केन प्रकारेण पढ़ लिखकर, सवर्णों के तलवे चाटकर, अफसरों की चमचेदारी कर, नेताओं को चाटुकारी कर, उन्हीं के पुराने औजारों का प्रयोग कर अपने लोगों का शोषण करने से नहीं चूक रहे हैं। ऐसे सम्पन्न आदिवासी छद्म विष्वास

पाले हैं कि वे सम्प्रांत या सवर्ण समाज के समकक्ष हो चुके हैं जबकि सच्चाई कुछ और है। साहित्य-जगत में कथाकारों उपन्यासकारों, आलोचकों, सम्पादकों ने निःसंकोच लेखनी चलाकर समाज के इस उपेक्षित समाज को हाथिये से निकालकर मुख्य फलक पर लाने की कोषिष की है। ऐसे प्रयास सराहनीय हैं। शैक्षणिक प्रसार और तार्किक अवचेतना के जागरण पर जनजातीय समाज एक दिन अवश्य अपने पूर्व गौरव को प्राप्त करेगा और शोषण, अन्याय, अनाचार के षड्यंत्रों से मुक्त होगा और यदि समाज के अन्य विभिन्न सक्षम समाजों, वर्गों, सरकारों, नेताओं, अफसरों ने निःस्वार्थ भाव से राष्ट्रोत्थान में योग दिया तब इस वंचित समाज की उन्नति में अधिक समय नहीं लगेगा।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. डॉ. डी.डी. बसु: भारत का संविधान-एक परिचय, संस्करण-2002, प्रकाषक-बाधवा एण्ड कम्पनी, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या-397
2. समाज शास्त्र: प्रो. एम.एल. गुप्ता एवं डी.डी. शर्मा, प्रकाषक-साहित्य भवन पब्लिकेशंस आगरा, 2010, पृष्ठ संख्या - 392
3. आलोचना (त्रैमासिक पत्रिका): प्रधान संपादक-नामवर सिंह, अंक-49 (अप्रैल-जून 2013) मैत्री शांति भवन, प्लेट नं. 4 बी.एम.दास रोड, पटना (बिहार), पेज नं. 104
4. आलोचना (त्रैमासिक पत्रिका): प्रधान संपादक-नामवर सिंह, अंक-53 (जनवरी-मार्च 2015) 1 वी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-85
5. वर्तमान साहित्य (मासिक पत्रिका): अंक-अप्रैल 2014, संपादक-नमिता सिंह, 28 एम.आई.जी. अवन्तिका- I, रामघाट रोड, अलीगढ़, उ.प्र., पृष्ठ क्र. 70
6. वर्तमान साहित्य (मासिक पत्रिका): अंक-अप्रैल 2014, संपादक-नमिता सिंह, 28 एम.आई.जी. अवन्तिका- I, रामघाट रोड, अलीगढ़, उ.प्र., पृष्ठ क्र. 70
7. आदिवासी कथा जगत: संपादक-केदारप्रसाण मीणा, प्रथम संस्करण-2016, प्रकाशक-अनुज्ञा बुक्स शाहदरा, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-9
8. आदिवासी कथा जगत: संपादक-केदारप्रसाण मीणा, प्रथम संस्करण-2016, प्रकाषक-अनुज्ञा बुक्स शाहदरा, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-181
9. आदिवासी कथा जगत: संपादक-केदारप्रसाण मीणा, प्रथम संस्करण-2016, प्रकाषक-अनुज्ञा बुक्स शाहदरा, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-215
10. रेड जोन (उपन्यास), लेखक-विनोद कुमार, प्रकाषक-अनुज्ञा बुक्स, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण -2015, पृष्ठ संख्या 369
11. रेड जोन (उपन्यास), लेखक-विनोद कुमार, प्रकाशक-अनुज्ञा बुक्स, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण -2015, पृष्ठ संख्या 332

संस्कृत साहित्य में कर्तव्य बोध

डॉ. राजू प्रसाद अहरवाल

सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग

शा. महाराजा महावि. छतरपुर (म.प्र.)

Email - rpahirwal93@gmail.com

सारांश

क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? जब मनुष्य में करणीय और अकरणीय कार्यों का ज्ञान हो जाता है तब उसे अपने कर्तव्य का बोध होता है, फिर वह वही करता है जो करणीय कार्य होते हैं। करणीय कार्य ही हमारी उन्नति के साधक होते हैं। कर्तव्य बोध ही जीवन की धुरी है, वह हमारी मनुष्यता को प्रकट करके हमें सही अर्थ में मनुष्य बनने की राह पर ले जाता है। जिस परिवार, जिस समाज और जिस देश में ऐसे कर्तव्य बोध से भरे मनुष्य होते हैं, वह परिवार, वह समाज, वह देश उतनी मात्रा में बलवान, सम्पन्न और सुदृढ़ होता है। कर्तव्य बोध से परिपूर्ण श्लोक, सूक्तियाँ संस्कृत साहित्य में भरे पड़े हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में मैंने कर्तव्य बोध ज्ञात कर कर्तव्य पालन कर व्यक्ति अपने जीवन को सुखमय बना सकता है बताने का प्रयास किया है।

-----००-----

अपने कार्यों में व्यवस्था, नियमितता, सुन्दरता, मनोयोग तथा जिम्मेदारी का ध्यान रखें। क्योंकि कहा गया है कि - 'कर्म ही पूजा है।'

कर्म ही पूजा है और कर्तव्य पालन भक्ति है।

कर्तव्य बोध - बोध एक ऐसा शब्द है जो मनुष्य के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा है। पशु में बोध नहीं होता है। संस्कृत सुभाषित में मनुष्य और पशु के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि -

आहार निद्रा भय मैथुनलब्ध समान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥^१ (हितो. २३)

भोजन, नींद, भय और प्रजनन प्रवृत्तियाँ पशुओं तथा मनुष्यों में समान रूप से पाई जाती हैं, एक धर्म तत्व मनुष्यों में अधिक होता है, वह यदि मनुष्य में न हो तो वह पशु के समान है। तात्पर्य यह है कि धर्म वह है जो मनुष्य को कर्तव्य बोध कराता है। कर्तव्य बोध परिवार, समाज और देश को टूटकर बिखरने से बचाता है। कर्तव्य बोध हमें दूसरों के लिए जीना सिखाता है। कल्पना कीजिए कि - माता-पिता, पुत्र-पुत्री, शिक्षक-विद्यार्थी, अधिकारी-कर्मचारी, व्यापारी, किसान, मजदूर सब अपने-अपने कर्तव्यों से कतराने लगें तो इसमें ऐसी विश्रृंखलता की सृष्टि होगी इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। मैं यदि

अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, तो मुझे किसी से यह कहने का अधिकार नहीं है कि तुम अपने कर्तव्य का पालन क्यों नहीं कर रहे हो? यथा -

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।

धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः॥

अपने को मनुष्य बनाने का प्रयत्न करो, यदि उसमें सफल हो गये तो हर काम में सफलता मिलेगी। यथा -

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्देवं हि दैवमिति का पुरुषा वदन्ति।

दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या, यत्ने कृते यदि न सिध्यतिकोऽत्रदोषः॥^२ (पंचतन्त्र-मित्रभेद ३६२)

उद्योगी और सिंह के समान पराक्रमी मनुष्य को लक्ष्मी स्वयं वरण करती है। अगर जीवन में कुछ करना व बनना चाहते हो तो सर्वप्रथम लक्ष्य को निर्धारित करें, वरना जीवन में उचित उपलब्धि नहीं हो पायेगी।

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।

तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति॥

सामान्यतः कर्तव्य शब्द का अभिप्राय उन कार्यों से होता है जिन्हें करने के लिए व्यक्ति नैतिक रूप से प्रतिबद्ध होता है। इस शब्द से यह बोध होता है कि व्यक्ति किसी कार्य को अपनी इच्छा, अनिच्छा या केवल बाह्य दबाव के कारण नहीं करता है। अपितु अपनी आन्तरिक नैतिक प्रेरणा के कारण करता है। उदाहरणार्थ - संतान और माता-पिता का परस्पर संबंध, पति-पत्नी का संबंध, सत्य भाषण, अस्तेय (चोरी न करना) आदि के पीछे एक सूक्ष्म नैतिक बंधन मात्र है। कर्तव्य दो प्रकार के होते हैं - (१) नैतिक (२) कानूनी।

(१) नैतिक कर्तव्य वे हैं जिनका संबंध मानवता की नैतिक भावना, अन्तःकरण (मनसा, वाचा, कर्मणा) की प्रेरणा या उचित कार्य की प्रवृत्ति से होता है। जैसे - संतान संरक्षण, सद्व्यवहार ये नैतिक कर्तव्य के उदाहरण हैं।

(२) कानूनी कर्तव्य वे हैं जिनका पालन न करने पर नागरिक राज्य (शासन) द्वारा निर्धारित दण्ड का भागी हो जाता है।

कर्तव्य और अधिकार एक सिक्के के दो पहलू हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि - मेरे दाये हाथ में कर्म है और बाये हाथ में जय।

संस्कृत साहित्य में कर्तव्य बोध -

(१) पंचतन्त्र - पञ्चतन्त्र में कहा गया है कि अपनी शक्ति पर भरोसा रखने वाला व्यक्ति कभी असफल नहीं होता। यथा -

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः ,

प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः।

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रति हन्यमानाः ,

प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति ॥^३ पंचतंत्र (काकोलूकीयम् २५४)

कार्य उद्यम से ही सिद्ध होते हैं मनोरथ मात्र से नहीं अतएव व्यक्ति को उद्यम करने में आलस्य नहीं करना चाहिए। यथा

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।

न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥^४ पंचतन्त्र (मित्रसम्प्राप्ति: १४१)

(२) हितोपदेश - गुणों की वृद्धि और क्षय तो अपने कर्मों से होता है। यथा -

षड्दोषाः पुरुषेणैह हातव्या भूतिमिच्छता।

निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधः आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥^५ हितोपदेश (मित्रलाभ ३४)

समस्त प्राणियों को आत्मवत् समझने वाला व्यक्ति ही संसार में श्रेष्ठ कर्मयोगी माना जाता है। यथा -

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः ॥^६ (हितोपदेश मित्र. १४)

(३) रघुवंशम् - इक्ष्वाकुवंशी राजा लोग किस तरह धर्मपूर्वक चारों आश्रमों का पालन और उनकी सम्यक् रक्षा करते थे यह बात महाकवि कालिदास ने यहाँ बताई है -

शैशवेऽभ्यस्तविधानां यौवने विषयैषिणाम्।

वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥^७ (रघुवंश प्र.स. ८)

महाकवि ने राजा दिलीप के तीन गुणों का वैशिष्ट्य बताया है -

(१) वह अच्छे शिक्षक के समान प्रजा को आचरण सिखाते थे।

(२) अच्छे सारथी के समान राज्य रूपी रथ का संचालन करते थे।

(३) अच्छे सम्राट की भाँति राज्य पर प्रशासन करते थे। यथा -

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।

सहस्रगुणमुत्सृष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥^८ (रघुवंश प्र.स. १८)

(४) कौटिलीय अर्थशास्त्रम् - कौटिलीय अर्थशास्त्र में चाणक्य कहते हैं कि फल मनुष्य के कर्म के अधीन है, बुद्धि कर्म के अनुसार आगे बढ़ने वाली है फिर भी महात्मा और विद्वान् लोग अच्छी तरह से विचार कर ही कोई कार्य करते हैं।

राजा के कार्य व्यापार को बतलाते हुए कहा गया है कि - राजा को चाहिए कि पहले उस कार्य को देखे जिसका समय बीत चुका है। उसको देखने में वह अधिक विलंब न करे। क्योंकि इस प्रकार अवधि बीत जाने पर कार्य या तो कष्टसाध्य हो जाता है अथवा सर्वथा असाध्य हो जाता है -

सर्वमात्यधिकं कार्यं शृणुयान्नातिपातयेत् ।

कृच्छ्रसाध्यमतिक्रान्तमसाध्यं वा विजायते ॥^९ (कौटिलीय अर्थ. प्र. अधि. प्र. १४ अ.

१८)

प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित है। राजा को कर्तव्य बोध कराते हुए कहा गया है कि - राजा यदि उद्योगी न हुआ तो उसके प्राप्त अर्थों और प्राप्तव्य अर्थों दोनों का ही नाश हो जाता है। किन्तु जो राजा उद्योगी है वह शीघ्र उद्योग का मधुर फल पाता है और इच्छित सुख - सम्पदा का उपभोग करता है। यथा -

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।

नात्मप्रिय हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥^{१०} (कौटिलीय अर्थ. प्र. अधि. प्र. १४

अ.१८)

(५) धम्मपद - धम्मपद में गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों के माध्यम से व्यक्ति को उत्कृष्ट कर्मों को करने के लिए कहा है वह कहते हैं - हमारा कर्तव्य है कि हम अपने शरीर को स्वस्थ रखें, अन्यथा हम अपने मन को सक्षम और शुद्ध नहीं रख पाएंगे। यथा -

सारे कार्यों का आरंभ मन से होता है ॥^{११} (यमकवग्ग-२)

मनुष्य को केवल अपने स्वयं के अच्छे बुरे कार्यों को देखना चाहिए।

न परेषां विलोमानि न परेषां कृताकृतम् ।

आत्मन एव अवेक्षेत कृतान्यकृतानि च ॥^{१२} (पुष्पवग्ग-७)

किया हुआ वह कार्य अच्छा नहीं होता, जिसे करके मनुष्य को

पश्चाताप होता है ॥^{१३} (बालवग्ग-८)

किया हुआ वह कार्य अच्छा होता है, जिसे करके मनुष्य को

सन्ताप नहीं होता है ॥^{१४} (बालवग्ग-९)

धम्मपद में बौद्ध दर्शन का सिद्धान्त है कि - सदाचारी बनो, स्वावलम्बी बनो।

तुम स्वयं ही अपना उत्कर्ष कर सकते हो, तुम्हारा उत्कर्ष साधन

कोई दूसरा नहीं कर सकता ॥^{१५} (धम्मपद भूमिका पृ. १६)

बुद्ध ने अभिवादनशील की प्रशंसा की है - जो अभिवादनशील है उस मनुष्य की आयु, वर्ग, सुख और बल बढ़ता है।

अभिवादनशीलस्स निच्चं बद्धापचायिनो ।

चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं ॥^{१६} सहस्सवग्ग-१०)

सदाचारी और संयत रहकर एक दिन का जीवित रहना

सौ वर्षों के असंयत जीवन से श्रेष्ठ है ॥^{१७} (सहस्सवग्ग-११)

यदि मनुष्य पुण्यकारी कार्य को धीमी गति से करेगा तो उसका मन पाप में लग जायेगा, फिर वह पुण्यकारी कार्यों को नहीं कर पायेगा। तथागत बुद्ध ने पाप और पुण्य दोनों कार्यों के फल के बारे में बतलाया है कि - पाप कर्मों का फल दुःखकारी होता है और पुण्य कार्यों का फल सुखकारी होता है। अतएव व्यक्ति को सदैव पुण्य कार्यों में ही

लगे रहना चाहिए।^{१८} (पापवग्ग-१, २, ३)

पुण्य कर्म करने वाला व्यक्ति इहलोक और परलोक में सद्गति को प्राप्त हुआ वह बार-बार आनन्दित होता है।

इध नन्दति पेच्च नन्दति कतपुळ= उभयत्थ नन्दति।

पुळ= मे कतं ति नन्दति भिय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो।^{१९} (यमकवग्ग-१८)

(६) मनुस्मृति - मनुस्मृति में कर्तव्यबोध की भावना जागृत करने के संबंध में कहा गया है कि - कामना से ही कार्य की प्रवृत्ति या दृढ़ निश्चय अर्थात् संकल्प का जन्म होता है अतएव कामना का मूल संकल्प है।

सइल्पमूलः कामो वैयज्ञाः सइल्पसम्भवाः।

व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सइल्पजाः स्मृताः।^{२०} (मनुस्मृति २.३)

मनुष्य जो कुछ भी करता है उसके पीछे कोई न कोई इच्छा या कामना होती है। कामना या इच्छा के नहीं होने पर मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता।^{२१} (मनुस्मृति २.४)

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि - उत्साह, सामर्थ्य और मन से हिम्मत न हारना ये कार्य सिद्धि कराने वाले गुण कहे गये हैं। देवता श्रम करने वाले के अतिरिक्त किसी और से मित्रता नहीं करते। कर्तव्यनिष्ठ बनकर ही हम आत्मिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक उन्नति कर सकते हैं। कर्तव्य बोध हमें समाज व राष्ट्र के प्रति प्रेम व सदाचारी जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करता है।

सत्य, धर्म, धृति और त्याग जिसमें यह चार परमश्रेष्ठ गुण नहीं हैं वह शत्रु को नहीं जीत सकता। निष्काम होकर नित्य अपना काम करने वाले की गोद में ही उत्सुक होकर सफलता आती है। समृद्धियां पराक्रमी मनुष्य के साथ रहती हैं अनुत्साही (कर्तव्यहीन) मनुष्य के साथ नहीं।

संदर्भ ग्रंथ -

1. त्रयी - हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल सं. - डॉ रहस बिहारी द्विवेदी
2. धम्मपद- चौखम्बा विधा भवन वाराणसी - श्री कच्छेदी लाल गुप्त
3. रघुवंशम् कालिदास - चौखम्बा विधा भवन वाराणसी
4. कौटिलीय अर्थशास्त्रम् - चौखम्बा विधा भवन वाराणसी व्याख्याकार वाचस्पति गैरोला
5. पंचतन्त्रम् स्टीम् प्रेस मुम्बई - क्षेमराज - श्री कृष्णदासश्रेष्ठिना
6. मनुस्मृति - अनुप्रकाशन जयपुर - सुरेंद्रनाथ सक्सेना

कार्यक्षेत्रों में महिलाओं के प्रति लैंगिक असमानता

श्रीमती रेनू सिंह

असि० प्रो० गृहविज्ञान

रा०म० महाविद्यालय

आज मानव पृथ्वी से चाँद तक पहुँच गया है। नित्य नये-नये आविष्कारों को दैनिक जीवन में प्रयोग में लाया जा रहा है। कहा जाता है कि समय परिवर्तित हो चुका है। पुरातन समय की अपेक्षा आधुनिक युग का मानव अधिक परिपक्व, सजग एवं नवीन विचारों को अपनाने वाला है। परन्तु दुःख तब होता है। जब सम्पूर्ण आधुनिकता लैंगिक असमानता को परिवर्तित नहीं कर पायी।

पढ़े बेटियाँ बड़े बेटियाँ वाक्य सुनने में तो अच्छा लगता है, परन्तु क्या बाकई में समाज में लैंगिक विभेदी करण आज भी कई ऐसे क्षेत्र है जहाँ लैंगिक असमानता फैली हुयी है। बात सिर्फ अशिक्षित परिवारों की ही नहीं है, बल्कि सुशिक्षित सभ्य समाज कहलाने वाले क्षेत्र भी या परिवारों में भी लैंगिक असमानता दृष्टिगत होती है।

भारत में स्त्रियों के समान अधिकार की बात भारतीय संविधान में की गई है। बिना किसी विभेद की समस्त क्षेत्रों में समान अधिकार प्रदान करने की व्यवस्था की गई। कार्य स्थलों पर भी समान पद एवं समान वेतन की व्यवस्था की गई है। परन्तु खेद है कि आज भी शारीरिक विभेद के आधार पर पुरुषों को शक्तिशाली व निपुण महिलाओं की अपेक्षा माना जाता है। चाहे वह कोई कार्य स्थल हो या पारिवारिक सत्ता। भारत वर्ष में लैंगिक असमानता का एक कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था को होना है। पितृसत्तात्मक होने के कारण पुरुषों को ही सारे अधिकारों व निर्णय लेने की प्रधानता होती है।

परिवर्तित विचारधारा में महिलाओं को अर्थव्यवस्था में भाग लेने की आजादी मिली है। देश भर में महिलाओं को पद प्रतिष्ठा एवं रोजगार के अवसर प्राप्त हुए है। महिलाएँ पुरुषों के समान कार्य कर रही है। रोजगार करना सिर्फ समायोजन या आर्थिक स्तर पर सुदृढ़ ही नहीं कर रहा है। अपितु महिलाओं को स्वाभिमान एवं विकास के साधन के रूप में भी कार्य कर रहा है।

देश की आधी आबादी कही जाने वाले स्त्रियों का एक विशाल भाग आज भी अपने वैद्यानिक अधिकारों को नहीं जनता है जिसका परिणाम महिला हिंसा व बराबर के अधिकारों व सम्मान की जगह पक्षपात पूर्ण व्यवहार के रूप में प्राप्त होती है। बात चाहें महिलाओं के वर्तमान समय में अधिक सबल होने को कि जा रही हो परन्तु आज भी उन्हें पुरुषों के बाद ही अंकन किया जाता है। यह हमारें पुरुष प्रधान देश की आसक्तता है कि महिलाओं को परिवारों व कार्यक्षेत्र में स्थान तो सम्मानीय देते है परन्तु जब बराबर के अधिकारों की बात आती है उनका स्थान पुरुषों के पश्चात ही आता है पारिवारिक व्यवसायों कृषि कार्यों, घरेलु उद्योगों में आदि में पुरुषों के साथ समान रूप से कार्य करती है इसके साथ-साथ परम्परागत रूप से दैनिक घरेलु काम काज (भोजन पकाना, घर का व्यवस्था एवं

बच्चों का पालन पोषण आदि भी पूर्णतः उन्हें की जिम्मेदारी में आता है। तत्पश्चात भी उनके द्वारा किये गये परिश्रम का कोई महत्व नहीं समझा जाता है। बल्कि उन्हें उनके कर्तव्यों के रूप में इनका बोध कराया जाता है।

महिलाएँ प्रत्येक क्षेत्र में एक अहम् भूमिका निभाती हैं। चाहे माता हो, पत्नी हो, पुत्री हो या परिवार के लिए पूंजी कमाने का एक मात्र जरिया। उसका अस्तित्व विशेष है। जिसके बिना संतुलित व्यवस्थित जीवन का वजूद ही संभव नहीं है। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में महिलाओं की अहम भूमिका है वर्तमान समय में विकासशील भारत में महिलाओं को विशेष सम्मान व पद प्राप्त हुये हैं। आज वे विभिन्न प्रमुख पदों पर रहकर देश के हिट के लिये किये जाने वाले निणयों में अपना अमूल्य योगदान भी कर रही हैं और अपना एक वजूद भी स्थापित कर चुकी हैं। परन्तु ऐसे महिलाओं की संख्या तुलनात्मक रूप से आज भी कम है। शिक्षा के क्षेत्र में भारत में लड़के व लड़कियों के बीच की विषमता पूर्वकालीन की अपेक्षा कम हो गई है। राजनैतिक भागीदारी में भी महिलाओं का स्थान बढ़ा है आज उन्हें देश की आधी आबादी व 800 राजनीति में विशेष पदों पर आरक्षित स्थान प्रदान किया जा रहा है। अपितु लैंगिक असमानता अब भी बनी हुयी है। जिसमें समानता का लक्ष्य प्राप्त करने में काफी लग सकता है। विभिन्न सर्वेक्षणों की अपेक्षा द्वारा सभी सरकारी निजी व्यवसायिक क्षेत्रों में देखा गया है। कि पुरुषों की अपेक्षा महिला कर्मियों की संख्या कम है और यदि है भी तब भी वरीयता पुरुष कर्मियों को पहले दी जाती है। अधिकांशतः लघु उद्योग क्षेत्रों में महिलाएं ही कार्यरत होती हैं। या कह सकते हैं कि महिलाओं की संख्या पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा होती है। अचार, पापड़ उद्योग, बीड़ी बनाना, खाद्य सामग्री बेचना आदि कार्य करती हैं। आत्मनिर्भर होने के बावजूद भी विभिन्न औद्योगिक निर्णयों में निर्णय लेने का उन्हें अधिकार नहीं दिया जाता है। उन्हें कार्य करने हेतु निर्देशित किया जाता है।

सरकार द्वारा महिलाओं के हितों को सुरक्षित रखने के लिए कानूनी व्यवस्था की गई है। जिससे महिलाओं को और सशक्त बनाया जा सके। इनमें एक व्यवस्था घरेलु हिंसा अधिनियम 2005 है। जो कि महिलाओं को पति के हर में आभय व आवास संरक्षण का अधिकार प्रदान करता है। इस व्यवस्था का उद्देश्य महिलाओं को भावमात्मक रूप से संतुष्टि प्रदान करना था जिससे महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने में और सरलता व जागरूकता हो सकें। परिवार द्वारा यदि महिलाओं को समानता का अधिकार प्रदान किया जाता है। तो समाज द्वारा भी उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। सामाजिक मनोवृत्ति को बदलकर ही महिलाओं को समानता का अधिकार प्रदान किया जा सकता है जो कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो रही महिलाओं द्वारा ही संभव हो सकता है।

वर्तमान समय में महिलाओं की स्थिति पूर्व की अपेक्षा काफी परिवर्तन आया है। विभिन्न सर्वेक्षणों द्वारा प्राप्त आंकड़ों से अब तक महिलाओं के प्रति होने वाली लैंगिक असमानता के आंकड़ों में कमी आयी है। एक मूल्यांकन सर्वेक्षण द्वारा मूल्यांकन में भारत अभी भी 87 वें स्थान पर है। भारतीय महिलाओं द्वारा महिला अधिकारों पर पुनर्विचार किया जा रहा है। विभिन्न सरकारी गैर सरकारी व

औद्योगिक क्षेत्रों में महिलाओं की संख्या बढ़ाने हेतु भी कानून द्वारा महिलाओं के हित को ध्यान में रखकर विशेष व्यवस्था की गयी है। जिससे महिलाओं की प्रतिभा पारिवारिक जिम्मेदारियों के दबाव में दम न तोड़ दे।

यह एक स्त्री का अधिकार ही है। कि वह आत्मनिर्भर बने, आर्थिक रूप से सुदृढ़ हो ताकि कोई भी उसे तिरस्कृत न कर सके। वह पुरुषों के समान समानता का उपयोग करे व सामाजिक, लैंगिक भेदभावों को भूलकर अपनी प्रतिभा को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रदर्शित करने का अवसर प्राप्त कर सके।

किसी भी स्थान पर अन्याय, हर स्थान पर न्याय के लिए खतरा है मार्टिन लूथर किंग द्वारा कहे गये ये शब्द वर्तमान समय में कार्यरत व घरेलु महिला के लिए प्रति लैंगिक असमानता के प्रति सत्य प्रतीत होते हैं। आधी आबादी का दर्जा प्राप्त होने के पश्चात भी समाज में निम्न स्थान महिलाओं को प्रदान किया गया। शिक्षा की कमी के कारण औद्योगिक संस्थानों में कार्यरत महिलाओं को कम वेतन दिया जाता है। अथवा असमान वेतन के साथ-साथ अधिक कार्य भी कराना जाता है। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह भी है कि महिलाओं ने प्रचलित सामाजिक स्थितियों व पारिवारिक समस्याओं के कारण उन्होंने पुरुषों के अधीन अपनी स्थिति को स्वीकार भी कर लिया है। लैंगिक असमानता और भेदभाव की भावना घर की चाहर दिवारी तक सीमित न होकर घर के बाहर, समाज में कार्य स्थलों सर्वत्र व्याप्त है।

उच्च पदों पर आसक्त शिक्षित जागरूक महिलाएं ही अपवाद के रूप में शेष हैं जो अपने अधिकारों के जागरूक हैं व कार्यक्षेत्र में होने वाली लैंगिक भेदभाव के प्रति विद्रोह को भी प्रकट करती हैं। सशक्ति कारण ही एक उपाय है महिलाओं को समान अधिकार प्रदान करने का। जब महिलाएं आर्थिक क्षेत्रों में बढ़कर योगदान करेगी आत्मनिर्भर बनेगी तभी इस असमानता की खाई को मिटा पायेगी। यह तभी संभव हो जब महिलाओं द्वारा स्वयं की प्रतिभा को पहचाना जाये एवं उनका हनन होने के स्थान पर उन्हें अधिकाधिक उत्कृष्ट रूप से उकेरा जाये। जब तक महिलाओं द्वारा कार्य स्थलों पर स्वयं के साथ होने वाले भेदभावों के प्रति विरोध व्याप्त नहीं किया जायेगा। तब तक उनकी स्थिति निम्न ही रहेगी। परन्तु जैसे ही विद्रोह प्रदर्शित किया जायेगा। स्वतः ही उनके वजूब को उन्नत पहचान प्राप्त होगी। लैंगिक असमानता सिर्फ महिलाओं को ही दूर नहीं करना होगा बल्कि इसमें शिक्षित पुरुष वर्ग को भी महत्वपूर्ण योगदान देना पड़ेगा। दोनों के सामूहिक प्रभावों के फलस्वरूप ही लिंग असमानता की समस्या का समाधान किया जा सकता है। कानून द्वारा कार्यस्थ पर लैंगिक उत्पीड़न से महिलाओं के संरक्षण के लिए विभिन्न अधिनियमों की व्यवस्था की गई। सरकारी अर्द्धसरकारी व व्यवसायिक क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं हेतु विशेष अवकाशों का प्रबंध किया गया है। जिनमें मातृत्व अवकाश शिशु देखभाल हेतु अवकाश आदि की व्यवस्था की गई है। जिसमें कार्यरत महिलाओं को बिना किसी विहन के अपनी जिम्मेदारियों व कार्य को सम्पन्न कर सके। इन

परिस्थितियों में उन्हें अपने कार्यपद का त्याग न रहना पड़े। एवं जो भी महिलाएं कार्य क्षेत्र में आना चाहती हैं वे सरलतापूर्वक आ सकें।

इस व्यवस्था का ही प्रभाव है कि महिलाओं की भागीदारी में वर्तमान समय में वृद्धि हुयी है। व असमानता के स्तर भी कम हुआ है। महिलाएं सभी प्रकार की गतिविधियों राजनीति, मीडिया, कला एवं संस्कृति, सेवा क्षेत्रों, विज्ञान, अनुसंधान एवं प्रौद्योगिक क्षेत्रों में पुरुषों के समान भागीदारी कर रही है। यदि महिलाएं इसी प्रकार जागरूक बनी रहें तो वह दिन दूर नहीं जब उनके प्रति होने वाली लैंगिक असमानता का अस्तित्व ही नष्ट हो जायेगा व सभी कार्यक्षेत्रों व समाज में उन्हें पुरुषों के समान बराबर का दर्जा प्रदान किया जायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

- 1- मानव अधिकार शिक्षा एन.एस. बक्शी
 - 2- भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति- सुधारानी श्रीवास्तव
 - 3- भारत में महिला शिक्षा और साक्षरता- सुभाषिनी पाल
 - 4- प्रसार शिक्षा- बी0डी0 हरपलानी
 - 5- www.chauthiduniya.com
-

विश्व की प्राकृतिक भाषा : संगीत

डॉ. प्रभा बजाज

असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग, (H.O.D.)

कानोडिया पी.जी.महिला महाविद्यालय,

जयपुर।

प्रकृति के कण-कण में संगीत बसा है। हवा के प्रवाह में संगीत है। जल के प्रवाह में संगीत है। पर्वतों और जंगलों का अपना संगीत है। समुद्र और उसकी लहरों का भी संगीत है। संगीत कहाँ नहीं है ? संगीत हर उस जगह है जहाँ उसे कोई सुनने वाला या महसूस करने वाला हो। संगीत को महसूस करने के लिए उसकी समझ चाहिए। अनुभूति आवश्यक है। प्रकृति की समस्त रचनाओं का आधार संगीत ही तो है। किसी भी रचना का अस्तित्व संगीत आधारित है। बीज का अंकुरण, नाले में पानी का बहना, टीले की मिट्टी का अपने तरीके से खिसकना, बादल की गर्जना, बादल का बरसना, पृथ्वी का हरा-भरा हो जाना, ये भी तो संगीत है।

संभवतया पंच महाभूतों से जीव मात्र का सृजन प्रकृति के संगीत की प्रथम अनुभूति है। जीवों का संचरण, विचरण और आपसी संवाद और सम्मिलन संगीत की प्रगति है। हो सकता है हर जीव और प्राणी समझे या ना समझे परन्तु संगीत का अस्तित्व उनके आस-पास के वातावरण में आंदोलित, आच्छादित और अवस्थित है। यही संगीत वातावरण में अनवरत रूप से समस्त प्राणियों, जीवधारियों को आकर्षित, आमंत्रित और आल्हादित करता है।

पृथ्वी पर मानव का अवतरण प्रकृति में विश्वव्यापी संगीत की एक अनूठी अभिव्यक्ति है। कबिलाई संस्कृति से पहले भी जब आदिमानव दो, चार, पाँच, सात के झुण्ड में रहता था, तब भी संभवतया बोलना अथवा आपस में सांकेतिक बातचीत करने से पहले भी जब मानव मस्तिष्क ने मुँह से पहली बार आवाज निकाली, वह संगीत की प्रथम अभिव्यक्ति, अनुभूति अथवा अवस्था कही जा सकती है। कालांतर में मानव संख्या और समूहों के बढ़ने के साथ-साथ आपसी अंतर-संबंध भी एक निश्चित गति से बनने और बढ़ने लग गए। बड़े मानव समूहों को इतिहास सभ्यता और विद्वानों ने कबीलों का नाम दिया। हर कबीले का अपना अलग बातचीत और संपर्क का तौर-तरीका रहा। जब भी मानव समूहों ने खुशी और शोक को व्यक्त करने की जरूरत महसूस की तो उसका सर्वाधिक प्रचलित, सुलभ और संभव तरीका संगीतमय था। संगीत की इसी प्रारम्भिक अभिव्यक्ति को हम विश्व के लोक-संगीत की शुरुआत कह सकते हैं।

विश्व में आज संगीत के जो भी स्वरूप उपलब्ध हैं, उन सबकी प्रारम्भिक अभिव्यक्ति लोक-संगीत ही रहा है। मानव संख्या और समूहों की वृद्धि के साथ-साथ मानव सभ्यता व संस्कृतियों का विकास हुआ। मानव की पशुपालक और कृषक अवस्थाओं में लोक-संगीत की विभिन्नताओं और विकास का राज छिपा है। अलग-अलग समय पर अलग-अलग विद्वानों ने इसको अपने-अपने तरीके

से इंगित, अभिव्यक्त और विश्लेषित भी किया है। शब्द युगीन सन्दर्भों में अपना अर्थ बदलते रहते हैं। विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों ने संगीत शब्द को अपनी-अपनी विचारधारा अनुसार परिभाषित किया है। यद्यपि मूलरूप से यह सभी परिभाषाएँ एक ही अर्थ को स्पष्ट करती हैं तथापि उन्हें व्यक्त करने की शब्दावली अवश्य भिन्न है। संगीत का शाब्दिक अर्थ— “लय, ताल एवं स्वरादि नियमों के अनुसार किसी पद्य का आकर्षक व मनोरंजक रूप से विशेष रूप से उतार-चढ़ाव के विचार से होने वाला वह उच्चारण, जिसके साथ कभी-कभी नृत्य और प्रायः वाद्य भी होता है, संगीत कहलाता है।”

संगीत का परिभाषिक अर्थ गायन, वादन व नर्तन से है। स्वरों और लय की सूक्ष्मता का ज्ञान न होते हुए भी एक साधारण मनुष्य नाद की सम्मोहिनी शक्ति से आकृष्ट होकर उसका रसास्वादन करता है। भावों की सरलतम अभिव्यक्ति ही संगीत का प्रयोजन है। इसी संदर्भ में प्रभुदयाल मित्तल लिखते हैं, व्याकरण की दृष्टि से संगीत शब्द का निर्माण सम+गीत= संगीत से हुआ है अर्थात् सुचारु रूप से गाया जाने वाला गीत। सम का अर्थ है अच्छा और गीत का अभिप्राय गाने से है, अर्थात् सम्यक् प्रकार से गाया हुआ गीत— “सम्यक् प्रकारेण गीयते इति संगीतः।” समय के साथ मानव सभ्यता और संस्कृति ने व्यापारी, औद्योगिक और आधुनिक अवस्थाओं तक अपने आप को पहुँचाया। प्राचीन से अर्वाचीन तक संगीत का अध्ययन, अध्यापन पूरे विश्व में स्वीकृत और संपादित रहा है। एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र की भाषा को समझे या ना समझे, एक कबीले के लोग दूसरे कबीले की भाषा समझे या ना समझे, एक देश अथवा महाद्वीप के लोग दूसरे की भाषा समझे या ना समझे परंतु संगीत की समझ तो सबमें है। संगीत किसी का भी हो, कहीं का भी हो, कैसा भी हो और कभी भी हो, वह पूरे विश्व में समझा जा सकता है। वैश्विक गाँव के इस दौर में पूरी दुनिया को समझाने और प्रभावित करने का एक मात्र सुंदर व सुखद तरीका संगीत है। प्रकृति के हर रस की उत्पत्ति संगीत से संभव है। “जीवन की आपाधापी, युद्ध की आशंकाओं के बादल और तनाव भरे दिनभर की थकान को संगीत और रंग में डूबे स्वर कितना आनन्द और राहत देते हैं। प्रकृति की असमय मार से परेशान किसान का लोकमन भी तमाम अवसाद के बावजूद संगीत बजते ही उसके स्वरों में डूबने लगता है। जहाँ दिशाएँ नाच रही हों, समय ताल दे रहा हो, प्रकृति रंग बरसा रही हो, वहाँ संगीत विरत होकर जीवन जीने की कल्पना मानव कैसे कर सकता है ?” संगीत सर्वकालिक है, सार्वदेशिक है और विश्वव्यापी है।

संदर्भ :

1. रामचन्द्र वर्मा — प्रामाणिक हिन्दी कोष, पृ. 1243
2. प्रभुदयाल मित्तल — ब्रज की कलाओं का इतिहास, पृ. 28
3. <http://hindi.speakingtree.in>

मुक्तक काव्य परम्परारूपक सिंहावलोकन

1. डॉ विमलेश शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी
राजकीय कन्या महाविद्यालय,
अजमेर, राजस्थान

2. डॉ के. आर. महिया
सहायक आचार्य, संस्कृत
राजकीय कन्या महाविद्यालय,
अजमेर, राजस्थान

"नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ।

कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ॥

अर्थात् संसार में मनुष्य जन्म पाना ही दुर्लभ है। मनुष्य जन्म पाकर विद्या की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है, विद्या पाकर भी कवित्व पाना और कवित्व पाकर भी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा पाना अत्यन्त दुष्कर है। अतः ऐसे कष्टसाध्य महत्कार्य को किसी प्रबन्ध या मुक्तक रूप भेदों में विभाज्य कर उसकी काव्यप्रतिभा को दोयम नहीं ठहराया जा सकता। अतः यह अनुशीलन मुक्तक काव्य परंपरा के महत्त्व को प्रकटित करने में ही साधक होगा।

‘कवेः कर्म काव्यम्, कवि का कर्म ही काव्य है, इसकी अन्तःस्फूर्त प्रतिभा का भेदोपभेदों में विभेदीकरण निश्चय ही असंगत प्रतीत होता है यत्र-तत्र विकीर्ण, स्फुट, अस्फुट तथ्यों का तत्त्वान्वेषण करते हुए सुधिजन विमर्शार्थ शोधपरक तथ्यों का संकलन किया है, जो आप विद्वज्जन के समक्ष प्रस्तुत है।

कीवर्ड: मुक्तक काव्य परम्परा, संस्कृत काव्यशास्त्र, हिन्दी काव्यशास्त्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, काव्य भेद प्रभेद, दृश्य एवं श्रव्य काव्य, संस्कृत साहित्य शास्त्र, अपभ्रंश मुक्तक, प्राकृत मुक्तक

भारतीय साहित्यशास्त्र के अनुसार काव्य वह वाक्य रचना है, जो किसी रस या मनोवेग से आप्लावित हो। प्राचीन भारतीय साहित्याचार्यों ने काव्य के दो भेद माने- श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य। आधुनिक युग, बदलते परिप्रेक्ष्य और धारणाओं के चलते इस वर्गीकरण को मान्य नहीं माना जा सकता इसका कारण संभवतः यह है कि आज काव्य में दृश्य और श्रव्य जैसे भेद नहीं रह गए हैं। अतएव अनेक सुधिजन श्रव्य काव्य संज्ञा के स्थान पर पाठ्य काव्य कहना समुचित समझते हैं। यह ठीक भी होगा कि आधुनिक युग में एक तो श्रव्य काव्य होता ही नहीं और यदि लोक-गीतों, लोक-कथाओं आदि के रूप में उसका अस्तित्व मिलता भी है तो उसको अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता। आज श्रव्य-काव्य को भी लिपिबद्ध कर उसका श्रव्यत्व समाप्त

किया जा रहा है। पाश्चात्य साहित्य समीक्षकों ने काव्य के दो रूप माने हैं- -१भाव-प्रधान

काव्य, तथा -२विषय-प्रधान काव्य। उपयुक्त वर्गीकरण काव्य भेद का ना होकर उसकी शैली

मात्र का है। भाव साहित्य का प्राण है, आत्मत्व है तो विषय उसकी जीवनी शक्ति। कोई भी

रचना भाव के अभाव में पूर्णत्व को प्राप्त नहीं कर सकती फिर चाहे वह साहित्य व्यक्तित्व

प्रधान हो या वर्णन प्रधान। वर्णनात्मक काव्य में भाव तथा रचनाकार के व्यक्तित्व का

समानरूपेण महत्त्व होता है। यहाँ अंतर इतना भर है कि भाव-प्रधान काव्य में कवि

आत्म-निवेदन अथवा आत्म-कथन के रूप में अपने आदर्शों की अभिव्यंजना करता है, तो

विषय प्रधान में वर्णनात्मक ढंग से। श्रव्य-काव्य के दो भेद व्यक्तित्व-प्रधान या विषयीगत, तथा

विषय प्रधान या विषयगत के आधार पर ही डह. श्यामसुन्दर दास ने भी कविता के दो भेद

स्वीकार किए हैं- *“एक तो वह जिसमें कवि अपनी अंतरात्मा में प्रवेश करके अपने अनुभवों*

तथा भावनाओं से प्रेरित होता है तथा अपने प्रतिपाद्य विषय को ढूँढ निकालता है, और दूसरा

वह जिसमें वह अपनी अंतरात्मा से बाहर जाकर सांसारिक कृत्यों और रागों में पैठा है और

जो कुछ ढूँढ निकालता है उसका वर्णन करता है। पहले विभाग को भावात्मक व्यक्तित्व-प्रधान

अथवा आत्माभिव्यंजक कविता कह सकते हैं। दूसरे विभाग को हम विषय-प्रधान या भौतिक

कविता कह सकते हैं।”^१

बंध अर्थात् एक सुनिश्चित क्रम के आधार पर उपर्युक्त उल्लिखित श्रव्य-काव्य या

भाव-काव्य तथा विषय-प्रधान काव्य के दो भेद किए जा सकते हैं-

-१ प्रबन्ध काव्य, तथा

-२ निबन्ध या मुक्तक काव्य

सुप्रसिद्ध साहित्याचार्य भामह (अलंकार प्रवर्तक) ने अपने ग्रंथ ‘काव्यालंकार’ में बंध की दृष्टि से

काव्य के पाँच भेद माने हैं-

-१सर्गबद्ध, -२नाटक, -३आख्यायिका, -४कथा, और -५अनिबद्ध (मुक्तक) काव्य। इनमें से

हम नाटक को छोड़कर शेष चारों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं - -१प्रबन्ध काव्य,

तथा -२निबन्ध या मुक्तक काव्य। प्रबन्ध में पूर्वापर का संबंध रहता है, वहीं मुक्तक में पूर्वापर

के इस तारतम्य का सर्वथा अभाव रहता है। प्रबन्ध में “कथानक की शृंखला में आबद्ध रहने

के कारण छन्द एक दूसरे से आबद्ध रहते हैं, उनके क्रम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

मुक्तक छंद स्वतः पूर्ण होने के कारण इस पारस्परिक बंधन से मुक्त रहते हैं। उन्हें क्रम में

रखा अवश्य जा सकता है परन्तु फिर भी एक छंद दूसरे की अपेक्षा न रखते हुए स्वतंत्र होता है। सूर के भ्रमरगीत, तुलसी की गीतावली या बिहारी की सतसई में पद, क्रम के अनुसार रखे गए हैं परन्तु फिर भी इनका प्रत्येक पद स्वतःनिरपेक्ष, अनाश्रित और पूर्ण स्वतंत्र है। मुक्तक काव्य को भाव-प्रधान कविता के अंतर्गत रखा जाता है। इसमें कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों, भावनाओं और आदर्शों की प्रधानता रहती है, यही कारण है कि इसमें गीतात्मकता का विशेष स्थान रहता है। प्रबन्ध और मुक्तक के अंतर को स्पष्ट करते हुए एक आलोचक लिखते हैं- *“प्रबन्ध कवि की किसी महती इच्छा, इतिवृत्त विधायिनी बुद्धि और शिल्प-कुशल चेतना का परिणाम है किन्तु मुक्तक कवि की सद्यः स्फुरित भावुकता, समास-चेतना और भाव-विधायिनी प्रतिभा की अभिव्यक्ति।”*¹

मुक्तक परंपरा और इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालने से पूर्व इस शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करना होगा। इस शब्द के मूल में मुच् धातु है, जिसका अर्थ ही छुटकारा, मुक्ति व निर्बंधन है, अर्थात् ऐसी काव्य-विधा जिसे किसी ऐतिहासिक कथानक या बंधन की आवश्यकता नहीं होती हो, वही मुक्तक काव्य है। या यों कहें मुक्तक काव्य शुद्ध रूप से कवि के अन्तःकरण से प्रसूत विचारों से सम्पृक्त काव्य विधा है। इस शब्द की व्युत्पत्ति ‘मुक्त’ (मुच् धातु से क्त प्रत्यय) शब्द में ‘कन् प्रत्यय के योग से हुई है। ‘मुक्त’ के अनुसार ही इसका अर्थ होता है- *“अपने आप में सम्पूर्ण, निरपेक्ष मुक्त वस्तु।”* संस्कृत के विभिन्न साहित्याचार्यों ने मुक्तक की परिभाषा दी है-

आचार्य दण्डी ‘काव्यादर्श’ में लिखते हैं- *‘मुक्तकं वाक्यान्तर निरपेक्षो यः श्लोकरू।’* अर्थात् मुक्तक वह श्लोक है जो वाक्यान्तर की अपेक्षा न रखता हो।

अग्निपुराण के अनुसार- *‘मुक्तकं श्लोकः एकैकश्चमत्कारक्षमः सतामः।’*²

अर्थात् ‘चमत्कारक्षम’ एक ही श्लोक को मुक्तक को कहते हैं, जिनमें अर्थद्योतन की स्वतः शक्ति हो अर्थात् जो अर्थबोध करने में स्वतः समर्थ हो।

ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्द्धनाचार्य ने लिखा है-

“तत्र मुक्तकेषु रसबन्धाभिनिवेशिनः कवेस्तदाश्रयमौचित्यम्।

स्तत्र मुक्तकेषु प्रबन्धेष्वि रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते।

*यथा ह्यमरूकस्य कवेर्मुक्तकाः शृंगाररसस्यांदिनः प्रबंधायमानाः प्रसिद्धा एव।”*³

अर्थात् मुक्तकों में रस-निबन्धन में आग्रहशील कवि के लिए रसाश्रित औचित्य नियामक तत्त्व है। उनका कथन है कि प्रबंध के समान मुक्तकों में भी रसाभिनिवेश करने वाले कवि दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरण स्वरूप उन्होंने अमरूक कवि का नाम लिया है, जिनका एक-एक श्लोक शृंगार रस से ओतप्रोत है और प्रत्येक श्लोक एक-एक प्रबन्ध के बराबर है।

ध्वन्यालोक के प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य अभिनवगुप्त ने मुक्तक की व्याख्या इस प्रकार की है-‘मुक्तमन्येननालिंगितं तस्य संज्ञायां कन् ।’

पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम् ।^५

अभिनवगुप्त ने ध्वनिकार के मत का समर्थन करते हुए बताया कि पूर्व-पश्चात् अर्थात् पहले या बाद के पदों या कविताओं से संबंध नहीं होने पर भी जिसे पढ़ने पर सम्पूर्ण आनंद की अनुभूति हो, जो स्फुट, निर्बंध एवं पूर्वापर-निरपेक्ष हो, अपने विषय को अभिव्यक्त करने में स्वतः समर्थ हो, वही मुक्तक काव्य है। अभिनवगुप्त ने इस संबंध में एक प्रश्न उठाया है कि प्रबंध के अंतर्गत मुक्तक के अंग-रूप से समाविष्ट होने की संभावना दिखाई पड़ती है पर उसकी स्थिति अनिवार्य नहीं मानी जा सकती।

राजशेखर ने विषय के आधार पर काव्य के दो भेद किए हैं-प्रबंध और मुक्तक-*“स पुनर्द्विधा मुक्तकप्रबंधविषयत्वेन ।”*^६

उन्होंने दोनों के ही विषयगत पाँच भेद बतलाए-शुद्ध, चित्र, कथोत्थ, संविधानक, आख्यानकवान् ।

हेमचंद्र ने अपने ग्रंथ ‘काव्यानुशासन’ में काव्य के दो भेद माने हैं-*“प्रेक्ष्य एवं श्रव्य । पुनः श्रव्य काव्य के उन्होंने दो भेद किए- निबद्ध तथा अनिबद्ध । मुक्तक को उन्होंने अनिबद्ध काव्य के अंतर्गत रखा है और बताया कि पूर्वापर निरपेक्ष रचना को मुक्तक कहते हैं ।”*^७

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भी मुक्तक को श्रव्य काव्य के अंतर्गत रखा है। उनके अनुसार जो काव्य मुक्त या अन्य पद्य से निरपेक्ष या स्वतंत्र हो, उसे मुक्तक कहते हैं-

‘छंदोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।’^८

संस्कृताचार्यों ने मुक्तक या अनिबद्धकाव्य के भेदापभेदों का भी कथन किया है।

काव्यादर्शकार दण्डी मुक्तक के चार भेदों का उल्लेख करते हैं-मुक्तक, कुलक, कोश एवं संघात। ध्वन्यालोककार ने इसके छह भेद बताए हैं-मुक्तक, संदानितक, विशेषक, कलापक, कुलक और पर्यायबंध।

अग्निपुराण में इसके छह भेद वर्णित हैं-कलाप, पर्यायबंध, विशेषक, कुलक, मुक्तक और कोष। हेमचंद्र ने इसके जिन छह भेदों का कथन किया है, वे हैं-*“मुक्तक, संदानितक, विशेषक, कलापक, कुलक, कोश, प्रघट्टक, विकीर्णक एवं संघात ।”*^९

विश्वनाथ कविराज ने अनिबद्ध काव्य के अंतर्गत इन भेदों का कथन किया है-मुक्तक, युग्मक, संदानितक, कलापक, कुलक, कोश तथा ब्रज्या।

उपर्युक्त सभी भेदों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि ये भेद संख्या, आकार एवं विषय के आधार पर बने हैं। इन भेदों का विवरण निम्नानुसार है-

-१मुक्तक- जब एक ही छंद में वाक्य समाप्त हो जाय तो उसे मुक्तक कहते हैं- **‘एकेन छंदसा**

वाक्यार्थसमाप्तौ मुक्तकम्।’^{१०}

-२संदानितक- दो श्लोकों या छंदों में जब वाक्य समाप्त हो तो ऐसी रचना को संदानितक कहते हैं-

“द्वाभ्यां क्रिया समाप्तौ संदानितकम्।”^{११}

विश्वनाथ इसी स्थान पर युग्मक शब्द का प्रयोग करते हैं-

‘द्वाभ्यां तु युग्मकम्।’^{१२}

-३विशेषक- तीन श्लोकों में समाप्त होने वाले वाक्य या तीन श्लोकों की रचना विशेषक है।

विश्वनाथ इसे ही संदानितक कहते हैं-

“संदानितकं त्रिभिरिष्यते।”^{१३}

-४कलापक- चार श्लोकों की रचना को विश्वनाथ तथा अन्य आचार्यों ने कलापक कहा-

“कलापकं चतुर्भिश्च।”^{१४}

-५कुलक- पाँच या छह छंदों का जिसमें प्रयोग हो, उस रचना को कुलक कहा गया।

‘अग्निपुराण’ में छह विभिन्न छंदोवाली रचना को कुलक कहा गया है, वहाँ इसे संदानितक कहा गया। विश्वनाथ पाँच या उससे अधिक श्लोकों में समाप्त होने वाले वाक्य को कुलक कहते हैं-

“श्लोकैरनेकैरु कुलकं स्यात्संदानितकानि तत्।”^{१५}

“पंचभि कुलकं मतम्।”^{१६}

-६पर्यायबंध- वसंतादि एक विषय का जिसमें वर्णन हो, वह पर्यायबंध है। इसमें बीच में ही वाक्य के समाप्त हो जाने पर भी वसंतादि का वर्णन होता है-

“अवांतरक्रियासमाप्तावपि वसंतवर्णनीयोद्देशेन प्रवृत्तः पर्यायबंधः।”^{१७}

-७कोष- कोष ऐसे श्लोकों का संग्रह कहलाता है, जिसमें श्लोक परस्पर निरपेक्ष हों-

-८ **“कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षकः।”^{१८}**

“हेमचंद्र ने एक अथवा अनेक कवियों के मुक्तक छंदों के संग्रह को कोष कहा-

स्वपरकृतसूक्तिसमुच्चयरु कोशरु सप्तशतकादिरु।

-**प्रघट्टक**- एक कवि द्वारा रचित मुक्तकों के समुच्चय को प्रघट्टक कहते हैं

-**संघात**- एक कवि द्वारा एक विषय पर रचित मुक्तकों को संघात कहा जाता है।

-**विकर्णक**- अनेक कवियों द्वारा रचित छंदों के संग्रह का नाम विकर्णक है।

उक्त समस्त परिभाषाएँ मुक्तक की विशेषताओं को उद्घाटित करती हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा दी गयी इन परिभाषाओं के आधार पर मुक्तक काव्य की परिभाषाएँ निम्न प्रकार है-

क. मुक्तक ऐसी रचना को कहते हैं, जिसके पद या छंद परस्पर निरपेक्ष हो, उनमें पौर्वापर्य संबंध का अभाव हो।

ख. मुक्तक काव्य रस से आपूर्ण होता है।

ग. इसमें कवि का आत्मानुभव व्यक्त होता है, अर्थात् भाव शबलता के क्षणों में की गयी अभिव्यक्ति अनुभूति की तीव्रता के साथ अभिव्यक्त होती है, यही कारण है कि उसमें आत्मनिष्ठता का समावेश हो जाता है। अतः मुक्तक आत्माभिव्यंजक रचना है।

घ. बहुधा इसमें उक्ति-वैचित्र्य एवं अभिव्यक्ति सौंदर्य का विधान किया जाता है।

ङ. मुक्तक में भाव-वैभव व कलात्मक संपत्ति का सम्यक् योग होता है। कवि का ध्यान चमत्कार प्रदर्शन की ओर अधिक रहता है।

च. कवि रागात्मक आवेग से हृदयगत भावों की अभिव्यंजना करता है, अतः उसमें पाठकों के मनोवेगों को तरंगित करने की शक्ति होती है।

छ. कल्पना की समाहार शक्ति व भाषा की सामासिक शक्ति के अनेकानेक प्रयोग मुक्तकों में देखने को मिलते हैं।

इन सभी विशेषताओं की पूर्ति करना, मुक्तककार अपना कर्तव्य मानते हैं।

रागात्मक आवेगों की तीव्रता की जो बात यहाँ बार-बार कही गयी है, इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की कविताविषयक यह दृष्टि भी अवलोकनीय है- "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी तरह हृदय की यह मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग तथा ज्ञानयोग के समकक्ष मानते हैं।"^{9E}

यहाँ 'हृदय की मुक्तावस्था' पदबंध मुक्तक की उपरिवर्णित व्याख्या के समानांतर है।

लोकगीत और मुक्तक- संसार के सभी प्राचीनतम काव्य का आदिमरूप लोकगीतों के रूप में मिलता है, अतएव यह भी स्पष्ट है कि मुक्तक काव्य का विकास भी इन्हीं लोकगीतों से हुआ होगा। प्रेरणा और प्रभाव की दृष्टि से लोकगीतों और मुक्तक में कोई विशेष अंतर नहीं पाया

जाता। ” दोनों में ही लोकजीवन की वे अनुभूतियाँ व्यक्त होती हैं, जो लोकप्रिय योद्धाओं व व्यापक प्रभावशाली तथा प्रेरक घटनाओं आदि से अस्तित्व पाती हैं।”^{२०}

लोकगीत एक विरासत है जिसमें जनमानस अभिव्यक्त होता है। इस विधा को समाज के सभी वर्गों और स्तरों ने समृद्ध किया है। लोकगीत विकसनशील होते हैं और निरन्तर परिवर्तमान भी। परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरकर ये अभिनव माधुर्य प्रदान करते रहते हैं। लोकगीत की न्यूनाधिक विशेषताएँ मुक्तक में भी पाई जाती हैं, परन्तु लोकगीत जहाँ समाज के हर वर्ग, पुरुष, स्त्री, उच्च, मध्य और निम्न वर्ग से जुड़ाव रखता है वहीं मुक्तक केवल शिक्षित वर्ग से। ”साहित्य का विकास होने पर इन्हीं सांगीतिक लघु रूपों को द्वन्द्वात्मक परिणति देकर शिष्ट मनोभावों की अभिव्यक्ति का साधन बनाया होगा। निश्चित बंधों वाले छन्दों में बँधकर लोककाव्य स्वच्छंदता से बहुत कुछ दूर हो जाता है, पर पद, गीत और प्रगीत वाले काव्य रूपों में वह अधिक सुरक्षित रहता है।”^{२१} विद्यापति, सूर, मीरा, घनानंद, बिहारी, रसलीन आदि प्राचीन तथा आधुनिक युगीन गीतकारों के गीतों में प्रायः लोकगीतों के छंदों को ही अपनाया जाता रहा है। इस प्रकार हमारे गेय मुक्तक, लोकगीतों के अधिक ऋणी हैं। मुक्तकों के विकास में इन लोकगीतों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

पूर्ववर्ती मुक्तक परम्परा- संसार के सभी साहित्यिकों का प्रारम्भिक रूप मुक्तक ही रहा है। भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ ‘ऋग्वेद’ की भी रचना मुक्तक के रूप में ही हुई थी। पश्चात्य साहित्यिकों पर नजर डाले तो यूरोप में भी आरम्भिक काव्य के दो व्यापक भेद मिलते हैं- **१)मेलिक या लिरिक**, तथा **२)कोरिक**। मेलिक या लिरिक में जहाँ वैयक्तिक भावों की अभिव्यक्ति होती है वहीं कोरिक में नृत्य वाद्य के साथ सामूहिक भावों की अभिव्यक्ति होती है। कोरिक में प्राचीन कथाओं को लय के साथ गाया जाता था, इसी परम्परा का विकास महाकाव्य, पुराण आदि रूपों में हुआ। लिरिक में व्यक्ति एवं कला का अधिकाधिक विकास होता गया। स्पष्ट है कि साहित्य के प्रारम्भिक रूप में लिरिक अर्थात् मुक्तक काव्य का अपना विशिष्ट स्थान था, जिसकी परिणति ही परवर्ती समय में प्रगीतों और मुक्तकों में हुई।

प्राकृत मुक्तक- भारतीय साहित्य में वैदिक साहित्य के पश्चात् यद्यपि प्रबन्धकारों का विकास प्रारम्भ हो गया था परन्तु मुक्तक की परम्परा भी समानान्तर रूप से चलती हुई दृष्टिगत होती है। पालि और प्राकृत साहित्य में तो मुक्तकों की ही प्रधानता रही है। बौद्ध एवं जैन कविकों ने थेरि गाथाओं, उपदेश, चरित एवं नीतिप्रधान सुन्दर सरस मुक्तकों की रचना की। प्राकृत भाषा का साहित्य मुक्तकों से उसी प्रकार समृद्ध है जिस प्रकार कि हिन्दी का रीति-साहित्य। हाल की गाथा-सप्तशती को प्राकृत मुक्तक काव्य का मूलाधार माना जा सकता है। ‘गाथा सप्तशती’ में शृंगार, नीति, ज्योतिष, वैद्यक, कृषि आदि अनेक विषयों का समावेश मिलता है, यद्यपि प्रधानता

वहाँ शृंगार की ही है। हाल से पूर्व मुक्तकों की एक समृद्ध परम्परा मौजूद थी, हाल ने उन्हीं मुक्तकों में से सात सौ मुक्तक चुनकर गाथा सप्तशती की रचना की। परवर्ती अनेक काव्यशास्त्रकारों ने नाट्यशास्त्र, काव्यालंकार, दशरूपक, काव्य-प्रकाश, ध्वन्यालोक आदि ग्रंथों में उदाहरण स्वरूप प्राकृत के अनेक मुक्तकों को उद्धृत किया। मुक्तक की लोकप्रियता ही एकमेव कारण थी कि अनेक संस्कृत कवियों ने उसके अनुसरण पर अनेक मुक्तक ग्रंथों की रचना की। अमरूक का अमरूक शतक, भर्तृहरि का शृंगार शतक, नीति शतक एवं वैराग्य शतक तथा गोवर्द्धनाचार्य की आर्या सप्तशती इस दृष्टि से प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। अनेक देवी-देवताओं की स्तुतियाँ भी इसी अनुसरण पर लिखी गई यथा-दुर्गा सप्तशती, चंडी शतक आदि। इसी शैली के ग्रंथों में कवि विल्हण की चौर्य पंचाशिका तथा कालिदास का शृंगार तिलक भी अत्यन्त प्रसिद्ध है।

अपभ्रंश मुक्तक- प्राकृत मुक्तकों में शृंगार की प्रधानता दिखाई देती है परन्तु कालान्तर में मुक्तक परम्परा का विकास अपभ्रंश काव्य में भी दिखाई पड़ा। अपभ्रंश तक आते-आते मुक्तक अपना सरस रूप खोकर केवल उपदेशक की भूमिका में आ गए। हालांकि नीति, वैराग्य एवं उपदेशों की शुष्क पगडंडियों पर सरस शृंगार के कुछ छींटें भी वहाँ दिखाई देते हैं। सिद्ध और जैन कवियों ने धर्म और सदाचार मूलक अनेक मुक्तक ग्रंथों की रचना की, जिनमें सरहपाद का दोहाकोष, जैन कवि योगीन्दु का 'परमात्मप्रकाश' एवं 'योगसार', सुप्रभाचार्य का 'वैराग्यसागर', जिनदत्त सूरी का 'उपदेश रसायन रास' प्रसिद्ध ग्रंथ माने जाते हैं। उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए भारतीय मुक्तक साहित्यिक परम्परा को निम्न धाराओं में विभाजित कर सकते हैं-

- १ वैदिक मुक्तक काव्य परम्परा
- २ बौद्ध एवं जैन कवियों द्वारा रचित धर्म एवं वैराग्य संबंधी मुक्तक।
- ३ हाल, अमरूक, गोवर्द्धनाचार्य, भर्तृहरि आदि के शृंगारी मुक्तक।
- ४ भर्तृहरि, जिनदत्तसूरी आदि के नीति संबंधी मुक्तक।
- ५ वीर रसात्मक मुक्तक(डिंगल और ब्रज के वीर मुक्तक)

परवर्ती हिन्दी साहित्य(मध्यकाल) में इन्हीं धाराओं का विकास देखने को मिलता है। रीतिकाल में शृंगारपरक मुक्तक काव्यों के दो भेद- रीतिबद्ध एवं रीतिमुक्त दिखाई देते हैं। रीतिमुक्त मुक्तक को काव्यधारा के ही अनुसार स्वच्छंद प्रेम मूलक मुक्तक भी कहा गया। देव, बिहारी, मतिराम

आदि ने रीतिबद्ध मुक्तकों का तथा घनानंद आलम, बोधा आदि ने रीतिमुक्त मुक्तकों का सर्जन किया। उत्तर मध्यकाल में भक्ति प्रधान मुक्तकों की रचना अधिक देखने को मिलती है। कबीर, दादू, रैदास, सुन्दरदास आदि ने धर्म और वैराग्य संबंधी अनेक मुक्तकों की रचना की। ब्रजभाषा में वीर रसात्मक मुक्तकों का रचाव करने वालों में भूषण, पद्माकर, ग्वाल आदि प्रसिद्ध हैं। कवित्त सवैया शैली में इन्होंने ओजपूर्ण मुक्तकों का निर्माण किया है।

मुक्तकों की यह समृद्ध परम्परा वैदिक युग से होती हुई आधुनिक काल तक चली आई है। समय के साथ-साथ उसकी शैली, विषय-वस्तु और कलेवर में बहुत परिवर्तन भी हुआ है। भारतेन्दु युग में भक्ति और शृंगार भावना से ओत-प्रोत अनेक मुक्तक लिखे गए। समस्यापूर्ति काव्य भी इसी मुक्तक परम्परा का उदाहरण है। द्विवेदी युग में यद्यपि प्रबन्ध काव्य पर्याप्त संख्या में लिखे गए परन्तु साथ-साथ मुक्तक काव्यों की भी रचना होती रही। नाथुराम शर्मा, हरिऔध आदि ने उपदेशात्मक शैली में अनेक मुक्तक लिखे। प्रेम, कल्पना और सौन्दर्य की तत्कालीन नवोदित काव्यधारा, छायावाद ने भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए मुक्तक को ही चुना। जयशंकर प्रसाद की कामायनी और निराला की तुलसीदास को छोड़कर शेष सारा छायावादी काव्य मुक्तक काव्य ही है, जो अपनी भावुकता में अद्वितीय है। छायावादी युग में गेय एवं पाठ्य दोनों प्रकार के मुक्तक लिखे गए। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में भी मुक्तक रचनाओं का ही प्राधान्य रहा। छायावाद व परवर्ती काव्य में अंतर भावुकता व बौद्धिकता का है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में बौद्धिकता का आग्रह इतना है कि भावुकता कहीं कोने में खड़ी नजर आती है। मुक्तक शैली में रचाव अनवरत हो रहा है। समसामयिक हिन्दी कविता इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

संसार की किसी भी साहित्यिक परम्परा का अनुशीलन करने पर विदित होता है कि काव्य की दो प्रधान धाराओं, मुक्तक व प्रबन्ध की रचना सभी युगों में होती रही है। हालांकि यह सही है कि कभी धाराविशेष के साहित्य का प्रबन्ध की ओर झुकाव रहा तो कभी मुक्तक की ओर, परन्तु समष्टि रूप से हर युग में मुक्तकों का ही प्राधान्य सर्वत्र दिखाई देता है। इसका कारण संभवतः प्रबन्ध काव्य की दुरुहता तथा रचाव में लगने वाला समय भी है। मुक्तक भाव प्रधान रचना होती है अतः सभी कालखण्डों में यह रसिकजनों का कंठहार रही है। इसलिए आचार्य रामचंद्रशुक्ल ने मुक्तक पर विचार करते हुए कहा है- "मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं बहती, जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं, जिनमें हृदय-कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है, यदि प्रबंध एक विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक चुने हुए फूलों का गुलदस्ता।"

निष्कर्षतः आचार्य शुक्ल का उक्त कथन, उक्त विवेचन के संदर्भ में ही मुक्तक काव्य धारा के वैशिष्ट्य व महत्ता को प्रदर्शित करते हुए इसकी बलवत्ता, प्रभावशालिता व मनोहारिकता को प्रतिपादित करता है, चित्रित करता है।

संदर्भ सूची-

- 1डॉ. श्यामसुन्दर दास- साहित्यालोचन)
- 2श्री जितेन्द्रनाथ पाठक- हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास)
- 3अग्निपुराण, 33/337
- /-4वन्यालोक, 7/3 वृत्ति
- /-5वन्यालोकलोचन- उद्योत, 143-144
- 6काव्यमीमांसा-9
- 7काव्यानुशासन-2/8-6, पृ. 449
- 8साहित्यदर्पण, 314/6
- 9काव्यानुशासन, 10/8
- 10काव्यानुशासन-10/8
- /-11वन्यालोक, पृ. 174
- 12साहित्यदर्पण, 314/6
- 13साहित्यदर्पण-313/6
- 14साहित्यदर्पण, 315/6
- 15अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, 36/1
- 16साहित्यदर्पण-315/6
- /-17वन्यालोक, [7/3 पृ. 174
- 18साहित्यदर्पण, 329/6
- 19भारतीय साहित्यशास्त्र कोश-राजवंश सहाय हीरा, मुक्तक, पृ-937
- 19आचार्य शुक्ल-चिंतामणि, भाग- [1 पृ. 193] 192
- 20साहित्यिक निबंध-राजनाथ शर्मा, पृ. 593 पर उद्धृत हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास, अध्याय में उद्धृत श्री जितेन्द्र पाठक के विचार
- 21वही, पृ. 594

महाविद्यालय ग्रंथालय में विस्तार सेवाएं

***रेखराज साहू एवं **श्रवण यादव**

*सहायक ग्रंथपाल, बै.टा.छे. कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, बिलासपुर (छ.ग.)

**सहायक ग्रंथपाल, रा.मो.दे. कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, अंबिकापुर (छ.ग.)

rekhrasahu@gmail.com

सारांश: ग्रंथालय के क्षेत्र में विस्तार सेवाएं एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, साथ ही यह उपयोगकर्ताओं को नई ग्रंथालयीन सेवाओं एवं सामग्रियों से अवगत होते हैं। विस्तार सेवाओं के माध्यम से उपयोगकर्ता अपनी समस्याओं के अनुरूप तकनीक एवं सेवाओं की जानकारी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। उक्त शोध लेख में विस्तार सेवा के उद्देश्य, पहलु एवं रूपों को बतलाया गया है।

कुंजीशब्द: ग्रंथालय विस्तार सेवा, कृषि ग्रंथालय विस्तार सेवा, ग्रंथालय अभिविन्यास, पुस्तक प्रदर्शनी, ग्रंथालय सेवाएं, ग्रंथालय प्रकाशन ।

प्रस्तावना:

ग्रंथालय एक ऐसी संस्था है, जहाँ वैज्ञानिकों, प्राध्यापकों एवं छात्र छात्राओं के साथ संबंध रखती है जिनसे वह ग्रंथालय सेवाएं और शोध संबंधी जरूरतों को ग्रंथालय पूरा करता है, जिनका संसाधन इसके द्वारा उपयोग किया जाता है। ग्रंथालय विज्ञान के प्रथम सूत्र **"पुस्तकें उपयोग के लिए हैं"** मजबूती से स्थापित है यदि पुस्तकालयों को यह पता चलता है कि उनकी मौजूदगी केवल उन तरीकों से उचित है जहां पाठकों द्वारा उनकी पुस्तकों का उपयोग किया जाता है। दोबारा, पुस्तकालय विज्ञान **"प्रत्येक पाठक के लिए किताब"** का तीसरा नियम भी एक ही अवधारणा पर बल देता है लेकिन यहां किताबें अपने उपयोगकर्ताओं को नहीं ले जा सकतीं। इसलिए, उपयोगकर्ताओं के दरवाजे के चरण में पुस्तकों को लाने के लिए सभी प्रयास ग्रंथालय के हिस्से पर होने चाहिए।

डॉ. रंगनाथन पुस्तकालय विज्ञान के नियमों को लागू करने के लिए पुस्तकालयों द्वारा खुली अभिगम प्रणाली को अपनाने के पक्ष में हैं। सबसे उपयुक्त तरीका उपयोगकर्ताओं तक पहुंचने के लिए पुस्तकालय की परस्पर संबंध और विस्तार सेवाएं हैं। विभिन्न माध्यमों के माध्यम से कार्यक्रम और उचित योजनाएं विस्तार सेवाएं लोगों की अधिकतम संख्या तक पहुंचने के प्रयास हैं।

इसलिए, यह एक पुस्तकालय का दायित्व है कि—

1. उपयोगकर्ताओं के विचारों को समय-समय पर इसकी उपयोगिता और सेवाओं की गुणवत्ता के बारे में जानने के लिए और
2. नये उपयोगकर्ताओं को बनाने और नए पुस्तकालयों के साथ सहयोग करके अपने क्षेत्र का विस्तार करने के लिए।

विस्तार सेवाएं

परिभाषा

उद्देश्य

पहलू

परिभाषा

शुद्ध प्रचार के ऐसे तरीकों के अलावा, पुस्तकालय अब एक दिन के कुछ नए प्रकार के काम को कर रहे हैं, जो सीधे शिक्षित या मनोरंजक होने के अलावा, प्रचार के लिए एक महत्वपूर्ण माध्यमिक उत्पाद इन गतिविधियों को पुस्तकालयों की विस्तार सेवाओं के रूप में नाम दिया गया है।

" एक विस्तार सेवा का उद्देश्य पाठकों को गैर-पाठकों को बदलने में है यह अच्छी पढ़ाई की इच्छा पैदा करता है और उत्तेजित करता है। यह पुस्तकों और पाठकों को एक साथ लाकर किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप संग्रह का शोषण और बढ़ावा मिलता है। "

डॉ. एस.आर.रंगनाथन

उद्देश्य

ग्रंथालय विस्तार सेवाओं के मुख्य निम्न उद्देश्य हैं:

1. ग्रंथालय में उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग करवाना है,
2. इसका उद्देश्य पाठकों को ग्रंथालय में उपलब्ध संसाधनों से परिचित कराना है,
3. इसका उद्देश्य पाठकों और ग्रंथालय के मध्य परस्पर संबंध और पाठकों का ग्रंथालय के प्रति रुझान पैदा करना है,
4. यह ग्रंथालय द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं से अवगत कराना है,

पहलू

बुनियादी सुविधाओं, उपकरणों, कुशल कर्मचारियों आदि के संदर्भ में विस्तार सेवाओं का प्रभावी ढंग से निम्नलिखित पहलुओं की जरूरत है—

1. किसी भी विस्तार सेवा को निष्पादित करने के लिए सभी संबंधित पहलुओं पर विचार करके एक उचित योजना आवश्यक है। किसी भी हिस्से में अपर्याप्त पूरे कार्यक्रम को विफल कर सकता है,
2. सभी विस्तार सेवाओं को लोगों को ग्रंथालय का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना होगा और कृषि शिक्षा के विकास के लिए ग्रंथालय संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना होगा।

कार्यशालाओं, व्याख्यान, बहस, प्रदर्शनियों और अन्य कार्यक्रमों को व्यवस्थित करने के लिए ग्रंथालय में एक व्याख्यान कक्ष, एक प्रदर्शनी लाबी, सम्मेलन कक्ष आदि होना चाहिए,

- ग्रंथालय में मल्टीमीडिया प्रोजेक्टर, आडियो विजुअल उपकरण जैसे स्लाइड और फिल्म प्रोजेक्टर, माइक, रिकार्डिंग सुविधा आदि की आवश्यकता होती है।

- ग्रंथपाल और अन्य ग्रंथालय कर्मचारियों का समुदाय में अच्छे जनसंपर्क स्थापित करने में सक्षम होना चाहिए ताकि अधिकतम सामुदायिक सदस्य सक्रिय रूप से इस तरह के कार्यक्रमों में भाग ले सकें,
- कर्मचारी सदस्यों के बीच समन्वय और सहयोग भी विस्तार सेवाओं के सफल निष्पादन के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व है।

विस्तार सेवाओं के रूप:-

ग्रंथालय विस्तार सेवाएं आंतरिक या बाहरी प्रकार का हो सकती हैं। आंतरिक विस्तार सेवा में उन्मुखीकरण कार्यक्रम शामिल हैं और बाहरी विस्तार सेवा में मोबाइल ग्रंथालय सेवा, प्रचार कार्यक्रम आदि शामिल हैं। विस्तार सेवाओं में से कुछ मुख्य प्रकार निम्नानुसार हैं-

1. **ग्रंथालय अभिविन्यास:** ग्रंथालय अभिविन्यास से ग्रंथालय के बारे में अधिक जानकारी उपयोगकर्ताओं तक आसानी से मिलती है जिससे कि नये एवं पुराने उपयोगकर्ताओं को भी ग्रंथालय का उपयोग करने में आसानी होती है, इसी कड़ी में नवआगंतुक छात्र/छात्राओं को भी अभिविन्यास के माध्यम से ग्रंथालय संसाधन एवं सेवाओं को बताया जाना चाहिए जिससे कि ग्रंथालयीन संसाधनों एवं सेवाओं की जानकारी होने पर ग्रंथालय उपयोग में आसानी होती है तथा साथ ही साथ समय की बचत भी होती है, और ग्रंथालय संसाधनों का उपयोग भी बढ़ने लगती है।
2. **पुस्तक मेले या प्रदर्शनी:** ग्रंथालय में समय समय पर पुस्तक मेले या प्रदर्शनी का आयोजन किया जाना चाहिए जिससे कि उपयोगकर्ताओं को नए एवं पुराने अनछुए पुस्तकों को देखने, पढ़ने का मौका मिल सके। पुस्तक मेले एवं प्रदर्शनी का आयोजन पुस्तक विक्रेताओं या ग्रंथालय में नये आये पुस्तकों के माध्यम से किया जा सकता है, साथ ही उपयोगकर्ता भी अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप पुस्तकों की सूची, पुस्तक चयन करने में मदद कर सके, जिससे कि उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।
3. **ग्रंथालय सेवाओं का प्रचार प्रसार:** ग्रंथपाल अपने पाठकों के लिए ग्रंथालय में विभिन्न प्रकार की सेवाएं प्रदान करता है, आज निरंतर हो रहे प्रकाशन एवं इलेक्ट्रानिक संसाधनों के विकास से ग्रंथालय में प्रचुर मात्रा में सामाग्री ग्रंथालय में होती है, लेकिन प्रचार प्रसार के अभाव में पाठकों को ग्रंथालय द्वारा प्राप्त होने वाली सेवाओं से अनजान होते हैं, जिससे कि ग्रंथालय में पाठकों की रुचि घटने लगती है। इन समस्याओं को ही दूर करने के लिए ही ग्रंथपाल को ग्रंथालय में उपलब्ध सेवाओं का समय समय में प्रसार प्रचार करना चाहिए, जिससे कि ग्रंथालय संसाधनों का अधिकतम उपयोग कर सकें।
4. **ग्रंथालय प्रकाशन:** ग्रंथालय द्वारा समय समय पर ग्रंथालयीन प्रकाशन की ओर भी ध्यान देना चाहिए जिससे कि ग्रंथालय की जानकारीयों से पाठक अद्यतन रह सके, साथ ही नये सेवाओं पुस्तकों एवं अन्य आवश्यक विषय संबंधी जरूरतों को शामिल करते हुए प्रकाशन करें जैसे कि

लाइब्रेरी न्युजलेटर, लाइब्रेरी: एट ए ग्लान्स, विषयवार पुस्तक सूची, लाइब्रेरी सर्विसेस, लाइब्रेरी बुलेटिन, वार्षिक प्रतिवेदन आदि।

5. **डिजीटल प्रसार:** ग्रंथालय में होने वाले विभिन्न प्रकार की गतिविधियों, प्रदान की जाने वाली सुविधाओं, नये आने वाले पुस्तकों की सूची आदि का भी डिजीटल माध्यम जैसे मोबाइल, ई-मेल, वेबसाइट आदि के माध्यम से प्रसार किया जाना चाहिए, जिससे कि ग्रंथालय में हो रहे विकास एवं गतिविधियों को आसानी से उपयोगकर्ताओं तक पहुँचाया जा सके। यह माध्यम काफी सशक्त एवं कम खर्च पर भी किया जा सकता है।
6. **व्याख्यानों का आयोजन:** ग्रंथालय में समय समय पर विभिन्न ग्रंथालयीन विषयों पर व्याख्यानों का आयोजन किया जाना चाहिए जिससे कि ग्रंथालय के क्षेत्र में हो रहे विकास एवं परेशानियों से अवगत कराया जा सके। कई बार इस प्रकार के आयोजनों से नई तकनीकों के बारे में जानने और उपयोग करने के बारे में जानकारी मिलती है जो कही ना कहीं उपयोगकर्ताओं के काम की होती है। व्याख्यानों के माध्यम से अनेक विषयों के बारे में जानकारी एवं उनके अनुभवों को साझा करने का मंच प्रदान करता है, जिससे कि ग्रंथालय को और अधिक प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर सके।

इन विभिन्न प्रकार के विस्तार सेवाओं के अलावा ग्रंथालय में ग्रंथालय अनुदेशक, ग्रंथालय शिक्षा, विभिन्न प्रकार के सामाग्रीयों की जानकारी, ग्रंथालय के औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रणालियों से अवगत कराना, स्थानीय प्रकाशित पुस्तकों की प्रदर्शनी (विषय संबंधी पाठ्य पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ), पाठकों की सुविधा एवं बैठक व्यवस्था जिससे कि वह आराम से बैठ कर अध्ययन कर सके तथा अपने विचारों का आदान प्रदान कर सकें।

पाठकों से समय समय पर ग्रंथालय के विकास के संबंध में विचार एवं सुझाव माँग कर उनके अधिकतम उपयोग हेतु सूचारु रूप से सेवाएं प्रदान की जा सकें। इन सब के अलावा उपयोगकर्ताओं की आवश्यकताओं की माँग की जाने पर डिजिटल रूप में उनकी आवश्यक संसाधनों को प्रदान कर सकते हैं। साथ ही साथ इन सभी विस्तार सेवाएं प्रदान करने के साथ ही उपयोगकर्ताओं की ओर से अपने क्रियाकलापों एवं सेवाओं के संबंध में सुझाव प्राप्त कर अपने कार्यों का मूल्यांकन कर समीक्षा की जा सकती है।

निष्कर्ष:

इस तरह से हम देख सकते हैं कि कैसे विस्तार सेवा कृषि महाविद्यालय ग्रंथालय में मदद करती है। यदि यह प्रभावी तरीके से प्रयोग किया जाता है तो यह ग्रंथालय के उपयोगकर्ताओं को बढ़ाने में मदद करता है, उपलब्ध संसाधनों का उपयोग भी बढ़ाता है। यह ग्रंथालय और ग्रंथालय सेवाओं के बारे में विपणन के सर्वोत्तम उपकरणों में से एक है, यह उपयोगकर्ता की संतुष्टि को अधिकतम करने और दूरस्थ स्थित पाठकों को सेवाएं प्रदान करने में मदद करता है।

संदर्भ :

1. Bavakutty, M. (2001). Kerala. In. Library and Information Services in Indian States and Union Territories edited by P.B.Mangla, et.al. New Delhi: Shipra.
 2. Chattopadhyay, Anjana (2001). Bihar and Jarkhand. In. Library and Information Services in Indian States and Union Territories edited by P.B.Mangla, et.al. New Delhi: Shipra.
 3. Karn, Sanjay Klumar, et.al. Status of State (Public) Libraries in Jharkhand; An Analytical Study. ILA Bulletin. XLII(2), Apr.Jun.,2006. p.25.
 4. Ranganathan, S.R. (1957). The Five Laws of Library Science. Bangalore; Sarada 5. Ranganathan Endowment for Library Science.
 5. <http://library.ifla.org/1193/1/150-chisita-en.pdf>
-

“प्राचीन बौद्ध साहित्यों में नारी का अंकन”*(गणिकाओं, दासियों, सेविकाओं के संदर्भ में)***डॉ. (श्रीमती) उषा तिवारी**

सहा. प्राध्या. इतिहास

शास. पी.जी. कालेज, बीना सागर

छठी शताब्दी ई.पू. में बौद्ध धर्म के उदय से ही भारत, आमोद-प्रमोद एवं सुख सुविधाओं से संपन्न था इस विलासमय जीवन में गणिकाओं का स्थान प्रमुख था।¹ गणिकायें सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी। यद्यपि गणिकायें वारांगना की तरह होती थीं। लेकिन शासन कार्य चलाने के लिये जिन अधिकारियों की जरूरत होती थी। उसमें गणिकाओं का योगदान प्रमुख होता था। गणपद की सदस्या होने के कारण वह गणिका कहलायी। जो संपूर्ण गण या राष्ट्र की निधि मानी जाती थी। मगध नरेश शिशुनाग-काशी की नगर शोभना का पुत्र था।

बौद्ध साहित्यों में गणिकाओं को जनपद कल्याणी, नगर शोभनी राजमहिषी कहा जाता था।² इससे प्रतीत होता था कि गणिका पद बहुत प्रतिष्ठित माना जाता था। ललित विस्तर³ में राजकुमारी को गणिका के समान शास्त्रज्ञ बताया गया है।

तेलपत्त जातक⁴ में गणिका को पूरे जनपद की उत्तम कल्याणी के रूप में बतलाया गया है। उसे छह शरीर दोषों से मुक्त और पांच उत्तम बातों से युक्त कहा गया है। गणिकायें शास्त्र-कवित्व की रसिक होती थीं।⁵ वे चौंसठ कलाओं में पारंगत होती थीं। गणिका का बौद्धिक, शारीरिक एवं सांस्कृतिक, विकास, अभिजात्य, कुलकन्याओं एवं उच्च-वर्गीय महिलाओं की अपेक्षा कम न थी।⁶ मौर्यकाल में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में गणिकाध्यक्ष का वर्णन है।

प्राचीनकाल में मनोविनोद के लिये जो भी गोष्ठियाँ होती थीं वो गणिकाओं के घर पर होती थीं। गणिकायें अनेक विधाओं में अनेक कलाओं में पारंगत होती थीं। नृत्य संगीत एवं बहुविध काव्य समस्यायें, देश, भाषा विज्ञान, मानसी काव्य क्रिया-छंद नाटक, आख्यान, आख्यायिका अनेक रस-आलापों में नागरिकों का मनोविनोद करती थीं।⁷ आम्रपाली महानाम श्रेष्ठी की कन्या थी। नगर शोभनी नाम की गणिका, नगर की शोभा होती थी। बुद्धचर्या में लिखा है⁸ कि वैशाली की गणिका आम्रपाली अभिरूपा सौन्दर्य की स्वामिनी, परम रूपवती, नृत्य, गीत, संगीत, एवं वाद्यकला में निपुण थी। जिससे वैशाली नगरी समृद्ध थी। वैशाली का अनुकरण कर राजगृह निगम ने मगध की राजधानी राजगृह के लिये सालवती को गणिका के रूप में नियुक्त किया⁹ था। सालवती अभिजात्य कुल की कन्या थी। गणिका के लिये कुंवारी कन्या होना आवश्यक होना जरूरी है।¹⁰ आम्रपाली की पाँच शर्तों को स्वीकार कर सालवती को गणिका के पद पर मगध नरेश ने मनोनीत किया था।¹¹ जिससे विदित होता है कि गणिका का पद प्राप्त करना समाज में कितना गौरवशाली था। आम्रपाली, सालवती,

राजगणिका के पद को सुशोभित करती थी। भगवान बुद्ध ने आम्रपाली का आतिथ्य स्वीकार किया था। उसके बाद आम्रपाली ने अपना आम्रवन बौद्ध संघ को दान में दे दिया था।¹²

गणिका की कोख से जन्मे पुत्र का समाज में तिरस्कार नहीं होता था। उसकी उचित शिक्षा दीक्षा होती थी। परंतु उसे कुल का नाम नहीं मिलता था।¹³

राजगृह की गणिका सालवती का पुत्र जीवक मगध का प्रख्यात राजवैद्य¹⁴ था। और वैशाली की गणिका आम्रपाली का पुत्र विमल कोण्डन बुद्ध के उपदेश को सुनकर बौद्ध भिक्षु बन गया था।¹⁵

गणिकाओं की पुत्रियां शिक्षा, संगीत, नृत्य की विधा के लिये उपनीत होती थीं। और उनका उचित रीति से विवाह भी होता था।¹⁶ शूद्रक के नाटक मृच्छ कटिकम में गणिका वसंत सेना एवं चारुदत्त का वर्णन है।

आम्रपाली एवं सालवती जैसी राजगणिकाओं को समाज में धन सम्मान और यश मिलता था। उन्हें अपने व्यवसाय से पर्याप्त आय प्राप्त होती थी। उस आय से उनका जीवन समृद्ध विलासी थी। वाराणसी की रहने वाली सामा का शुल्क एक हजार कार्षापण था। उसकी सेवा पांच सौ दासियां¹⁷ करती थी।

समाज में सद्गुण संपन्न गणिकाओं के उल्लेख जातक साहित्यों में मिलते हैं। काली ने अपने भाई तुण्डिल को सुधारने का बहुत प्रयत्न किया। कुरु द्यम्भ में लिखा है कि एक गणिका का पुरुष गणिका को एक हजार कार्षापण देकर कहीं चला गया। तो वह गणिका उस पुरुष का तीन साल तक इंतजार करती रही। किसी अन्य पुरुष से संपर्क तक नहीं किया। गणिकायें कुरु द्यम्भ का पालन करती थीं। और पंचशील को अपनाती थीं। सुलसा बुद्धिमती साहसी नारी थी। गणिकाओं के आपसी विवाद के मामले गणिकायें ही उत्तम निर्णय लेकर सुलझाती¹⁸ थीं।

जातक साहित्यों में क्षुद्र विवेकहीन गणिकाओं के भी उल्लेख मिलते हैं। अपने प्रेमपाश में फंसाकर क्षुद्र गणिकायें – प्रेमियों के धन का हरण कर लेती थीं। यदि प्रेमियों से धन नहीं मिलता था तो उन्हें धक्के देकर निकलवा देती¹⁹ थी। कुछ रसिक गणिकाओं के साथ बिहार करने जाते थे और जब वो नशे में होते थे तो गणिकायें उनके आभूषण लेकर चंपत हो जाती²⁰ थीं। भगवान बुद्ध पर चिंवा नामकी गणिका ने भयानक लांछन²¹ लगाये थे।

बौद्ध समाज में अधिकांश नारियां अपमानित होती रहीं। राजाओं और रईसों के द्वारा उनकी भयंकर दुर्गति की जाती थी। मथुरा निवासिनी वासदत्ता के हाथ पैर, नाक, कान कटवाकर उसे श्मशान में फिकवा दिया था। परंतु गणिकायें जब बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेतीं थीं। तो उन्हें आदर प्राप्त होता था। आम्रपाली विमला सरमा को बौद्ध धर्म ग्रहण करने पर समाज में सम्मान प्राप्त हुआ था। दान दात्रियों के रूप में भी गणिकायें सम्मानित होती थीं।²²

बौद्ध साहित्यों में दासियों, सेविकाओं, पारिचारिकाओं, धात्री, पत्रचारिकाओं का उल्लेख मिलता है। राजप्रासादों में सब दोषों से रहित रूपवाली दासियों की नियुक्ति की जाती थी। राजप्रासादों में अधिकतर दासियाँ – धात्री के रूप में रानियों के बच्चों का पालन-पोषण करती थीं तथा पौष्टिक पदार्थों के द्वारा – दूध, दही, घी के द्वारा रानियों के बच्चों का पोषण करतीं थीं।²³

कभी-कभी सेविकायें – कन्या की विदाई के अवसर पर कन्या के पतिगृह भी भेजी जाती थीं, जहां वो कन्या की सहायिका बनकर काम करती थीं। हंस जातक में लिखा है कि – एक निराश्रित ब्राह्मण की तीन पुत्रियों को, दासियों के रूप में जीवन बिताना पड़ा था। जातकों में लिखा है कि धनी महीपति कृषक को खेतों में भोजन भिजवाने वाली दासियाँ रखनी पड़ी थीं। गंगमाल जातक में लिखा है कि एक निर्धन स्त्री – पानी भकर अपनी जीविका चलाती थी।²⁴

संपन्न ब्राह्मण या भूमीपति के घरों में दास दासियाँ होती थीं। जिनका क्रय और विक्रय भी होता था। सत्तुभस्त जातक में लिखा है कि – एक ब्राह्मण ने भिक्षा मांगकर सात सौ कार्षापण प्राप्त किये फिर वह सोचने लगा कि इतनी मुद्राओं से दास-दासियाँ खरीदी जा सकती हैं। दासियाँ उपहार की सामग्री की तरह एक दूसरे व्यक्ति को भेंट भी की जाती थीं। जुन्ह जातक में लिखा है कि एक राजा ने ब्राह्मण को सौ दासियाँ अन्य सामग्री के साथ दान में दी। दहेज में भी दासियाँ दी जाती थीं।²⁵ जातकों में आठ प्रकार की दासियों का उल्लेख है – जैसे युद्ध में पकड़ी गई स्त्री, डाकुओं द्वारा पकड़कर बनाई गई दासियाँ, निर्धन परिवारों की निर्धनता के कारण बनाई गई दासियाँ स्वेच्छा से बनी दासियाँ स्वामी के घर में दासी की पुत्री-दासी का काम करती थी जो अमायदाता कहलाती थी। बिक्री के द्वारा प्राप्त दासी, दान में दी गई दासी, जन्मजात दासी, अपराध के कारण कभी-कभी स्त्रियाँ दासता को स्वीकार कर लेती थीं। भय के कारण भी कुछ स्त्रियाँ अभय देने वाले की दासता स्वीकार कर लेतीं थी।²⁶

दास-दासियों के प्रति स्वामी का व्यवहार कभी-कभी उग्र अथवा मृदु होता था। दास-दासियों के अधिकार स्वामी की कृपा दृष्टि पर निर्भर थे। धन संपत्ति की तरह दास-दासी-स्वामी की संपत्ति की तरह माने जाते थे। कभी-कभी स्वामी दासियों के साथ क्रूर व्यवहार करते थे। और उनको मजदूरी के लिये भेजते थे। अगर वो कुछ कमा कर न दे सके तो स्वामी ऐसी दासियों को कोड़ों से पीटते थे²⁷ और घर से निकाल देते थे।

अंगुत्तर निकाय²⁸ में लिखा है कि – कुछ दासियों के स्वामी क्रूर होते थे। उनकी क्रूरता के भय से दासियों के मुख अश्रुपूर्ण होते थे उनमें कुछ दासियाँ रुदन करतीं रहतीं थीं। तक्क जातक²⁹ में लिखा है कि – वाराणसी के श्रेष्ठी कन्या अपनी क्रूरता दासियों पर बरसाती थी। और उन्हें पीटती थी। वेसंतर जातक³⁰ में लिखा है कि – एक क्रूर ब्राह्मण दास दासियों को बड़े कष्ट देता था। एक जातक के अनुसार दासी कान्हा कहती है कि यह ब्राह्मण मुझे ऐसे प्रताड़ित करता है जैसे मैं उसकी गृहजा दासी हूँ।³¹ एक दासी को स्वामी की अंकशायनी बनना पड़ा तो स्वामिनी ने

दासी के नाक कान काट लिये।³² एक गृहस्वामिनी दासी के साथ बुरा बर्ताव करती थी। इस कारण दासी ने आत्महत्या करने का प्रयास किया था।³³ समाज में दासियों की स्थिति निंदनीय मानी जाती थी। जातकों में श्रावस्ती के राजा प्रसेन अपने पुत्र वैडुभ को दासी पुत्र कहकर अपमानित करते थे।³⁴ त्रिपिटक साहित्यों में दासी भार्याओं का उल्लेख है। इन्हें गृह कार्यों के साथ-साथ स्वामी की सेवा भी करनी पड़ती थी। दासियों को अधिकतर जलाशय से जल लाना। रसोई का काम करना। वर्तन धोना रसोई घर साफ करना। घर की सफाई करना। रसोई पकाने के लिये ईंधन लाना। गायों को बैलों को चारागाह से चारे का प्रबंध करना। गृहस्वामी के बच्चों की देखरेख करना, धान कूटना। मसाले तैयार करना। धूप में अनाज सुखाना घर की पहरेदारी करना।³⁵ मालिक मालकिन के वस्त्राभूषणों की देखरेख करना। दासता से मुक्ति तभी मिलती थी। जब उनकी दासता समाप्त हो जाये। स्वामी की इच्छा से दास-दासियों को मुक्ति मिल जाती थी। या फिर स्वामी को मुक्ति शुल्क देकर दासता से मुक्ति मिल जाती थी। मंझिम निकाय से पता चलता है कि यदि स्वामी को कोई सुखद समाचार दास दासी देते थे तो स्वामी दास दासियों को दासता से मुक्त कर देते थी। अपना सिर धोकर दास दासी दासता से मुक्त हो जाते थे।³⁶

- (1) बुद्धघोष, द्यम्मटीका 1/163, 17/1, वाई डेविड, रोज, विलियम थामस, टी.डब्ल्यू. राइस 1921 वाई-टी डब्ल्यू रीज डेविड और वाई मैक्समूलर एस.बी.एफ, लंदन
- (2) संयुक्त निकाय, पृ. 696, जातक 1 पृ. 556, 167 अनुदित भिक्षु जगदीश कश्यप, धर्मरथ, बनारस
- (3) ललितविस्तर, पी.एल. वैद्य दरभंगा 1959
- (4) तेलपत्त जातक, पृ. 556 (अनु. अंग्रेजी) वाई.टी.डब्ल्यू. रीज डेविड, लंदन
- (5) थेरीगाथा, पृ. 66, संपा. भागवत एन.के. बंबई, 1937, अनु. श्रीमती रीज डेविड्स, पी.टी.एस., लंदन, 1964
- (6) भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, पृ. 177, विमलचंद्र पाण्डेय, प्रयाग 1960
- (7) प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ. 92, हजारी प्रसाद द्विवेदी, बंबई, 1963
- (8) बुद्धचर्या, पृ. 278, (अनु.) महापंडित, राहुल सांस्कृत्यायन, सारनाथ 1952, 1964
- (9) महावग्ग, 8/1/2-3, भिक्षु नानकोली कोलम्बो, 1956
- (10) बुद्धचर्या, पृ. 278, अनु. महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन, सारनाथ 1952
- (11) दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ. 568, के.एन. मुंशी भारतीय विद्या भवन, बंबई
- (12) महावग्ग, 8/30/2, भिक्षु नानकोली कोलंबो 1956, संयुक्त निकाय, पृ. 3, अनु. भिक्षु जगदीश कश्यप धर्मरक्षित बनारस, 1954
- (13) जातक, 4 पृ. 502, भदन्त आनन्द कौसल्यायन प्रयाग, 1955
- (14) महावग्ग, 8/1/4, भिक्षु नानकोली कोलम्बो, 1956
- (15) थेरीगाथा, पृ. 28, संपादक भागवत एन.के. बंबई 1937, अनु. रीज डेविड्स, पी.टी.एस. लंदन, 1964
- (16) विनय पिटक, 3 पृ. 135, अनु. महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन सारनाथ, 1935
- (17) जातक, 3 पृ. 227, भदन्त आनन्द कौसल्यायन प्रयाग, 1955
- (18) प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ. 104, हजारी प्रसाद द्विवेदी बंबई, 1963

- (19) महावस्तु, 3/36/1-4, (एडीटर) वाइ.आर.जी. वशाक कलकत्ता 1963, जातक 4, पृ. 134, महंत आनन्द कौसल्यायन प्रयाग, 1955
- (20) धम्मपद टीका, 5-7, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन अनुदित अवधकिशोर नारायण भिक्षु धर्मरक्षित रंगून 1937, 1958, जातक 2, पृ. 59 भदन्त आनंद कौसल्यायन प्रयाग, 1955
- (21) बुद्धचर्या, पृ. 28, 316, अनुदित महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन सारनाथ 1952, 1964
- (22) महावस्तु 2, 168, 11, (अनु. अंग्रेजी) वाई.जे.जे. जोन्स, एस.बी.ई. वाल्यूम 18 लंदन, 1952, विनय पिटक 2, पृ. 276, अनु. महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन सारनाथ 1935, थेरीगाथा 39, संपा. भागवत एन.के. बंबई 1937, अनु. श्रीमती रीज डेविड्स पी.टी.एस. लंदन 1964
- (23) दिव्यावदान 2/13-14, पी.एल. वैद्य दरभंगा 1959, ई.बी. कोपेल एण्ड आर.ए. नैल केम्ब्रिज 1886, जातक 1, अनु. महंत कौसल्यायन प्रयाग 1955, करुणावदान 73/14, राय शरदचंद्र बहादुर और शरदचंद्र शास्त्री कलकत्ता 1998, महावस्तु 3/36/1-4 (अनु. अंग्रेजी) वाई.जे.जे. जोन्स, एस.बी.ई. वाल्यूम 18 लंदन 1952
- (24) जातक 6, 431, पृ. 1-424, 3 पृ. 446, भदन्त आनंद कौसल्यायन प्रयाग, 1955
- (25) दिव्यावदान 19/7-8, पी.एल. वैद्य दरभंगा 1959, ई.बी. कोबेल एण्ड आर.ए. नैल केम्ब्रिज 1886, जातक 1, 433, 6.474, जातक 4, 7, 4.99, अनु. भदन्त कौसल्यायन प्रयाग, 1955 (अनु. अंग्रेजी) वाई.टी.डब्ल्यू. रीज डेविड्स लंदन एण्ड वाई.ई.बी. कोबेल केम्ब्रिज 1895, 1907
- (26) मिलिन्द पन्थो, 279, अनुदित रीज डेविड जे.डब्ल्यू.एस.बी.ई. 1935-36, जातक 2, 475, 129, भदन्त कौसल्यायन, प्रयाग 1955, (अनु. अंग्रेजी) वाई.टी.डब्ल्यू. रीज डेविड्स लंदन एण्ड वाई.ई. बी. कोबेल केम्ब्रिज 1895-1907
- (27) जातक 1-567, भदन्त आनंद कौसल्यायन प्रयाग, 1955
- (28) अंगुत्तर निकाय, 2 पृ. 207-08, अनु. भदन्त कौसल्यायन कलकत्ता, 1957, 1963, 1966, 1969 वाल्यूम II, VII (अनु. अंग्रेजी) वाई. हेन्टे, पी.टी.एस. लंदन
- (29) तक्क जातक 1-429 (अनु. अंग्रेजी) टी.डब्ल्यू. रीज डेविड्स लंदन एडीटर ई.बी. कोबेल केम्ब्रिज 1895, 1907
- (30) वही, 6, 635
- (31) वही, 6, 554
- (32) धम्मपद, 3-486, संपा. महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन अवधकिशोर नारायण, भिक्षु धर्मरक्षित, रंगून 1937, 1958
- (33) विमान वत्थु, 50, संपा. महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन, सारनाथ 1937
- (34) खुद्धक निकाय, 1, पृ. 139, भिक्षु धर्मरत्न बनारस, 1954, जातक 4.345 अनु. भदन्त कौसल्यायन, प्रयाग 1955
- (35) चुल्लवग्ग, 4/4/7, 6/4/1, विलिंगटन एम.एफ. वूमेन इन इंडिया लंदन, 1895
- (36) बुद्धचर्या, पृ. 41, अनु. महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन, सारनाथ 1952

बघेली कहानी : वस्तुविन्यास और जीवन दर्शन

डॉ. राधवेन्द्र तिवारी*

कमलेश तिवारी**

* सहायक प्राध्यापक हिन्दी श्रीयुत कॉलेज गंगेव जिला रीवा (म.प्र.)

** शोध छात्र हिन्दी शिक्षण विभाग अ.प्र.सिंह वि.वि.रीवा (म.प्र.)

बघेली कहानी का प्रारम्भिक स्वरूप लोक जीवन में कही-सुनी जाने वाली किस्साओं में मिलता है। दिन भर के उलझनों से मुक्त होकर चौपालों बैठकों में अपने अनुभवों और अनुभूतियों को सुनते-सुनते वक्ता और श्रोता अपना मानसिक मनोरंजन किस्सा कहानियों के माध्यम से करते थे। जिनके कथानक सूत्रबद्ध होकर आश्चर्य, रोमांच, भावनुभूति, अनुभूति, अनुभव और आगे बढ़कर के एक उद्देश्य की पूर्ति करते थे।

बघेलखण्ड में समान्यतया प्रेरणास्पद अर्थ गंभीर वाले कथानक ही किस्सा कहानियों के आधार बनते थे। इन किस्साओं में लोक जीवन के दुःख-सुख, व्यक्ति के दुःख, दैन्य, परिवार, समाज की परम्पराओं संस्कृतियों और कुछ नया करने वालों के ऊपर समाज और शासकों की ज्यादाती, नव चेतना सम्पन्न लोगों की हठधर्मिता आदि का सुन्दर संयोजन कथा साहित्य के माध्यम से होता था। देर रात्रि तक चलने वाली चौपालों में धार्मिक आख्यानों के कहने-सुनने की परंपरा भी रही है।

बघेलखण्ड के ज्यादातर कथा सूत्र-रामायण, महाभारत, जातक कथाओं और उससे इतर इन्द्रजालिक, सम्मोहन, घटना चक्रों पर केन्द्रित परियों, राजा-रानी, राजकुमार-राजकुमारी आदि कथानकों के केन्द्र में होते थे। सहज बोल-चाल की भाषा में कही-सुनी जाने वाली इन कथाओं में समय के साथ कुछ नयापन लाने के लिए नवीन घटनाचक्रों के माध्यम से कथानकों के अवतरण की परम्परा भी धीरे-धीरे विकसित हुई। इन कथानकों में चरितनायक और घटनाचक्र आम जीवन से होने के कारण ऐसे कथाचक्र धीरे-धीरे लोकप्रिय होते गये जिससे पारंपरिक कथानकों से हटकर एक नये भाव क्षेत्र में बघेली किस्सा-कहानियों ने प्रवेश किया।

बघेली कहानियों के अस्तित्व में आने की यही पृष्ठभूमि है। किस्सा-कहानी कहने-सुनने का यह दौर अनाम कथाकारों को ही समर्पित रहा जो महज अपना लोकधर्म समझकर इस तरह की कथाओं की सृष्टि करते थे। इन कहानियों से लोगों को शिक्षा भी मिलती थी, आत्मबोध होता था साथ ही जीवन के विभिन्न ज्ञावातों और उलझनों से मन में आती विरक्तियों से छुटकारे का मार्ग भी प्रशस्त होता था। कोई सार्थक मंच न होने के कारण इस तरह के किस्सा कहानी काल के धुंध में धुंधले होते हुए अपनी पहचान खोते गये और उनकी जगह नई चिंतन दृष्टि अपने नये कलेवर में प्रभावी होती गयी और उनमें जनपदीय संस्कृति का रंग और गहरा होता गया। जनपदीय कथा साहित्य के संदर्भ में अपनी राय देते हुए डॉ. अभयराज त्रिपाठी कहते हैं-

जनपदीय साहित्य के अन्तर्गत स्थानीय रंग अपना विशेष महत्व रखता है। कतिपय आलोचक तो स्थानीय रंग को ही जनपदीयता का आधार मानते हैं। स्थानीय रंग के बिना किसी भी जनपद का पूरा चित्र नहीं उकेरा जा सकता। अर्थात् इस तरह जनपदीयता का प्रथम तत्व स्थानीय रंग ही है। स्थानीय रंग के अन्तर्गत पारस्परिकता, भावना, कुमंत्रणा, कुण्ठा, उच्च वर्गीय वर्चस्व, नारी चित्रण तथा राजनैतिक प्रभाव आदि अवयवों को सम्मिलित होते हैं। बघेली के जनपदीय कथा साहित्य में भी यह विशिष्टता विद्यमान है।

ग्रामीण अंचलो में बसे लोगो के बीच पारस्परिक व्यवहार एक दूसरे पर दया, उपकार, करुणा आदि का होना प्राचीन परम्परा है। इसी के साथ ही अशिक्षा, जड़ता, राजनैतिक दांव-पेच, ईर्ष्या-द्वेष आदि विकारों के कारण उनमें विखराव तथा विशेष प्रतिशोध की भावनायें भी पायी जाती हैं। निहित स्वार्थों एवं ईर्ष्या-द्वेष की वजह से कुमंत्रणा का भाव लोगों में जागृत होता है। गांवों में बसे लोगों के बीच सामन्तशाही प्रभाव, जातिवाद, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब के बीच परस्पर शोषण प्रतिशोध के साथ ही बेरोजगारी एवं गरीबी जनमानस में घुटन और कुण्ठा को जन्म देती हैं। देखा जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में नारियों के प्रति पुरुष वर्ग की जो निरीह भावना रही है उसके कारण नारियों में हीन भावना, दैन्य, करुण दशा, सन्तति समस्याएँ यौन विसंगतियाँ भी पनपती हैं। जिसके कारण उनका स्वाभाविक जीवन बाधित होता है।

बघेली भाषा अवधी की अनुसांगिक भाषा है जो समय सापेक्ष विकसित हो कर भाषा के रूप में स्वरूप ग्रहण कर रही है। डॉ. ग्रियर्सन ने बघेली को अवधी का निकटतम रूप मानते हुए लिखा है— 'वास्तव में बघेली और अवधी में इतना कम अन्तर है कि यदि बघेली एक अलग बोली के रूप में जनता में प्रचलित न होती, तो मैं उसे अवधी का रूप में मानता।' एक दूसरे स्थान पर उन्होंने लिखा है कि 'अवधी' का दूसरा रूप बघेली है।

भाषाविद उदयनारायण तिवारी के अनुसार — "बघेली वस्तुतः बघेलखण्ड की बोली है। इसका नामकरण बघेली राजपूतों के नाम पर हुआ है, जिसकी इधर प्रधानता है। इसका एक नाम रिमहाई भी है क्योंकि रीवा बघेलखण्ड का मुख्य स्थान है। बघेली छोटा नागपुर के चन्दमकार तथा रीवा के दक्षिण मण्डला जिले में बोली जाती है। यह मिर्जापुर तथा जबलपुर के कुछ भागों में बोली जाती है। इसी प्रकार फतेहपुर, बाँदा तथा हमीरपुर भी उसी के अन्तर्गत हैं, किन्तु इधर की बघेली में पड़ोस की बोलियों का सम्मिश्रण हो जाता है।"

बघेली रचनाकारों के कहानी साहित्य का स्वरूप शास्त्रीय कहानियों से भिन्न है फिर भी कथ्य, शिल्पगत विशिष्टता के चलते पाठको पर अपना प्रभाव डालती हैं। व्यक्ति समाज में पैदा होता है, पलता है और समाज में ही अपना सर्वांगीण विकास करता है। यदि समाज में रह कर लोगों में एक दूसरे के प्रति परस्पर सहयोग की भावना नहीं होगी तो न व्यक्ति की उन्नति हो सकती है और न समाज की। इन पारस्परिक सम्बन्धों का चित्रण बघेलखण्ड के कहानीकारों की कहानियों में मिलता है। राम नरेश सिंह के 'छिमा' कहानी में 'बंगा' और गांव का सरहंग गुण्डा एवं निष्ठुर व्यक्ति है, जिसने

ठाकुर दादा का बगीचा काट डाला और उनके खलिहान में आग लगाकर उन्हें कंगाल बना दिया, इसके बावजूद भी जब बंगा का इकलौता पुत्र बीमारी के कारण मृत्यु सैया पर पड़ा है तब ठाकुर दादा अपने घर से अदरक और तुलसी का पत्ता ले जाकर बंगा के बीमार पुत्र चैतुआ को अपनी गोद में लेकर दवा पिलाते हैं तथा जब तक चैतुआ अच्छा नहीं हो जाता तब तक वहां बैठे रहते हैं। इससे 'बंगा' का कठोर दिल भी पिघल गया, वह अपने पूर्व कृत्यों पर अपराध बोध से दब गया।

इसी तरह साम्प्रदायिकता की आग में जलता हुआ निहाल रहमत की बीबी को मारने के लिए ढूँढ़ता रहता है और रहमत की बीबी उसकी मां पार्वती के पास उसी घर में अपने बच्चे को लेकर छुप जाती इस पर निहाल अक्रोशित होता है "मां यह रहमतबा की औलाद है जिसने तीन हिन्दुओं को कतल कर दिया। हमें इससे बदला लेना है तथा इसके बच्चे को मारकर अपना प्रतिशोध पूरा करना है।" पार्वती मां कहती है— "निहाल मैं मां हूँ मां की कोई जाति नहीं होती वह केवल मां होती है इतना कह कर उसने गर्दन झुका दी और बोली ले बेटा चला कुल्हाड़ी आज पार्वती मर जाएगी परन्तु मां जिन्दा रहेगी।"

भागवत प्रसाद शर्मा की तिमुहानी कहानी में ने पारस्परिक सम्बन्धों का यथार्थ पूर्ण चित्रण किया है। तिमुहानी गांव के तिवारी एवं दुबे की पुश्तैनी दुश्मनी उस समय रिस्तों में बदल गई जब गंगोली दुबे अपनी इकलौती पुत्री के दहेज में डेढ़ लाख रूपया देने में असमर्थ हो गये, तथा सारे गांव में उनके बड़प्पन की पोल खुलने लगी, एवं प्रतिष्ठा को आघात पहुँचने लगा उस समय 'छब्बू' तिवारी अपने लड़के की बारात सजाकर दुबे के घर में पहुँचे और बिना दहेज के शादी करने को तैयार हो गए तथा दुबे महाराज की मर्यादा बचा ली। द्वार में बारात ले जाकर 'छब्बू तिवारी' ने दुबे को सीने से लगा लिया और बोले—

भीख मांगें हम आएन है औ गवाही मां सगला गांव लै आएन है आज से दुबे और तिवारी टोला नहीं सिर्फ तिमुहानी गांव रहै चाही। आजु अपना के बिटिया के शादी होय बाली रही न। अपनाके बिटिया हमारिउ बिटिया आय अउ अपना के मर्यादा हमारिउ मर्यादा आय।

बघेली के कहानीकारों में जहां एक ओर पारस्परिक सद्भाव दया एवं सहयोग के चित्र खींचा है, वहीं दूसरी ओर विशेष प्रतिशोध, ईर्ष्या द्वेष आदि संकीर्णताओं का यथार्थ चित्रण भी इनकी कहानियों में मिलता है। सैफू की कहानी—'चुरियन केर कोर' बाबूलाल दाहिया की 'ढील मूठ डेगरु चलै' तथा भागवत प्रसाद शर्मा की 'टूका कउरा' कहानियों में देखने को मिलता है। दाहिया के ढील मूठ डेगरु चलै के अन्तर्गत डेगरु हरवाह को पण्डित ददोली की महाराजिन द्वारा तीज त्योहार में भी एक कुरई गेहूँ नहीं मिलता, ऊपर से उसे सूद्र एवं निम्न जाति होने का अपमान सहना पड़ा, तब डेगरु ने खेत में हल ले जाने से इंकार करता हुआ कहता है— 'ई ता आही हरपति देउता, सूद्र कांध न जांय, की लइ जइहै भूमिपति या ओढ़के रहि जांय।

बघेली रचनाकारों ने ग्रामीण अंचलों में व्याप्त कुमंत्रणाओं के कारण उत्पन्न विविध समस्याओं को भी स्थानीय रंग के अन्तर्गत चित्रित किया है। बघेलखण्ड के जन-जीवन में अनेक

प्रकार के कलह एवं अर्न्तद्वन्द प्राप्त है। कहीं भूमि के कारण कलह उत्पन्न हो रहा है, कहीं जातिगत विवाद पैदा हो रहे हैं, कहीं पारिवारिक अर्न्तद्वन्द पाया जाता है तो कहीं खान-पानगत वैमनस्य देखने को मिलता है। ये सब बातें ग्रामीण समाज में यथार्थ सत्य के रूप में विद्यमान है। हिस्साबांट कहानी में सैफू ने इस तथ्य को दर्शाया है कि—परम्परागत रूप में चले आ रहे संयुक्त परिवार का विघटन कुछ चन्द स्वार्थी एवं खोटे लोगों की कुमंत्रणा के कारण ही होता है। जिसमें ससुराल भी एक एजेंसी के रूप में काम करती है। गोरखना के तीनों भाईयों के बीच बंटवारा के कारण उसके छोटे भाई एवं बहू को ससुराल एवं इष्ट मित्रों से मिलने वाली कुमंत्रणा ही है। इसी तरह 'बोतल के चुरकून' कहानी में मां बाप का दुलारा बेटा 'लेदहा' को चोर, जुआड़ी और शराबी बनाने का श्रेय उसके मित्रों की कुमंत्रणा है।

'को न कुसंगत पाइ नसाई' में बाबूलाल दाहिया द्वारा चित्रित किया गया है कि जगदीश को जुआड़ी, चोर के साथ-साथ उसके हरी-भरी गृहस्थी को उजाड़ने के पीछे उनके ससुराल वालों का श्रेय है। जब ससुराल में जगदीश के साले जुआँ खेलने के लिए उसे प्रोत्साहित करते हैं—'उड़ कहिन के बहनोई तुम दांत निपोरत हय। का आव कउना जास्ती राज होइ गय है, बड़ठा बरिख रोज के तेउहार आय, मनई बाजी दुइ बाजी खेलि के हाथ जगाय लेय। सोउब परब त फेर रोजय है। इसकी परिणति यह होती है कि जगदीश पक्का जुआरी बन जाता है तथा जुएँ में अपना सर्वस्व खो देता है।

भागवत प्रसाद शर्मा की 'टूका कउरा' कहानी अयोध्या का कलेक्टर पुत्र रामसुफल के अर्न्तजातीय विवाह कर लेने के कारण पहले तो उसे उसके पिता के यहां लोग पानी तक न पीने की मंत्रणा करते हैं पुनश्च वही लोग—विशाले, रामाधीन, दुलारे आदि के लड़कों को जब वह अपने दफतर में नौकरी देना शुरू कर देता है तो सभी उसकी खुसामद करने लगते हैं और सत्यनारायण व्रत पूजा के दिन उसके औरत का परोसा कढ़ी, भात खाते हैं—

'अजोध्या केर दुआर दुपहर होत-होत मनइन से खचाखच भरिगा, मेहेरिया अउर पतोह दउड़ि-दउड़ि सब के खातिर दारी करत देखानी। चारिउ कइती हंसी-ठट्टा केर बड़ेबर उठत सुनान, पांति बैठि गय सब भीतर से पतोह सामान निकारि-रिकारि देति जाय अब बहिरे से अजोध्या अउर रामसुफल परूसय लागे फेर सीताराम केर हुकांर उठी अइसेन समय मां भला कुकुरवौ काहे पाछे रहै उनहूँ के कुकुराहट लककोर लाग, गांव आज एकउट मा रहा दुबारा न जानी पुनिहोय के न होय।

ग्रामीण परिवेश में आज भी 'मनुष्य' रूढ़ परम्परा, अन्धविश्वास और कुण्ठाओं से घिरा हुआ है। आर्थिक और सामाजिक दबाव से शोषक समाज उसकी मूल चेतना को दबाये हुये है। उसने जीवन और चेतना के बीच एक गहरी खाई उत्पन्न कर दी है। परिणामतः अंचलों में गरीबी, पिछड़ापन, अन्धविश्वास, शोषण एवं उत्पीड़न ने आंचलिक जीवन को अभी भी घेर रखा है। विन्ध्यांचल के कहानीकारों ने अपने कहानियों में इस यथार्थ का मार्मिक चित्रण किया है। कुण्ठा ग्रस्त जीवन या समाज में गरीबी एवं शोषण प्रमुख रूप से उत्तरदायी तत्व है। शालालुद्दीन सिद्दीकी की 'देबारी'

कहानी गरीबी का रोमांचक प्रसंग है— 'गरीब केर जनम उधारी मा, जमानी मजूरी मां, बुढापा सबै दिन सोच फिकिर अउ करजा मा बीतत है। ओखे जिन्दगानी मां भुखमरी आधे कउर देबारी होती है।

भागवत प्रसाद शर्मा की कहानी 'घर', तिरिया पुरान' एवं 'घुनघुना' में गरीबी का जो यथार्थ दृश्य उत्पन्न हुआ है उससे पाठकों में रोमांच उत्पन्न होता है। 'घुन' कहानी में नरबदिया की महतारी मटरी अपनी बेटा की मर्यादा खो देने के बाद छटपटती हुई अपनी बेवशी व्यक्त करती हुयी कहती है—'पेट चण्डाल जउन कराबय थोरे आय, अब धाबय न ता एहं उदड़ार का धाधे कसिकय। विना धाये कय दिन बीतत, के है बइटे—बइटे खबाबय बाला।

ग्रामीण अंचलों में गरीबी का प्रमुख कारण शोषण है। बधेली कहानीकारों ने शोषण के खिलाफ भी अपनी लेखनी चलायी,। बाबूलाल दाहिया की कहानी 'ढील मूठ डेगरू चलय में शोषण के मार्मिक दृश्य देखने को मिलते है। डेगरूआ पण्डित दादोली राम की हरबाही करता है, रात दिन जी तोड़ मेहनत करने के बाद उसको मिलता दो पैला गोजरहा जबा, भला इसमें एक परिवार का गुजर हो सकता है। स्थिति को स्पष्ट करते हुये लेखक ने लिखा है कि—

'एतनेउ मेहनत मसक्कत मां ओही सिरिफ पोकट्टे पइला मां दुइ पहला गोजरहा जबा। किसान जो जादा परसन्न होई जांय तब जड़ाबर में नाव का एकात ठे पुरान धुरांन मिरजाई ओढ़ना दय देबा करय। पै महर जिन अउबल नम्बर के कसरबारिन, ऊइ अपने खातिर ता मेर—मेर के जेउनारि बनामय, अंतरे रोज करहिया चिललिलातय रहय, पै डेगरूआ ओई मलीदन का खाय लेय।

शोषण के अतिरिक्त आंचलिक जीवन में कुण्ठा का एक और तथ्य वहां की अशिक्षा, अन्धविश्वास, आदि भी है। अन्धविश्वास एवं अशिक्षा ग्रस्त कुण्ठा का चित्र बाबूलाल दाहिया की 'परेत' कहानी की नायिका 'भगवनिया' अपने मलेरिया ग्रस्त पति को ठीक करने के लिये अशिक्षा एवं अन्धविश्वास के कारण चउरा—देबाला में जाती है, जहां ओझा, मुरगा, बकरा एवं नारियल चढ़ाने के लिये उससे तीन सौ रुपये ँठ लेता है इसी प्रकार पण्डित गणेशी महाराज भी ग्रह शान्ति कराने के नाम पर पूजा की सामग्री एवं पांच ब्राम्हणों के भोजन कराने के नाम पर सैकड़ों रुपये ले जाते है। शराब और अशिक्षा ग्रामीण अंचल में घुन की तरह लगा हुआ है, जिसका परिणाम यह होता है कि लोगों के घर में दीवाली का प्रकाश विकीर्ण नहीं होता। इस समस्या का चित्रण भी 'देवारी' कहानी में दृष्टव्य है—

रात मां सगला गांव सेठ महाजर, किसानन केर घर मां दियन केर बरात सजी पठाखा फूटें खुशियाली मनाई गर्यी, वही रात लक्ष्मी जब गांव मां पधारी तब पूरा गांव अंधियार मां डुबत उतरात रहा, सिर्फ सेमुंआ केर घर के आगे एकठे अंधिकारे मा जुगुर—जुगुर दिया जलत रहय।

बघेलखण्ड की जीवन गाथा का यथार्थ रूप यहां के कहानीकारों को मिलता है। आजादी के इतने दिनों बाद भी इस क्षेत्र के जनजीवन को आर्थिक, सामाजिक एवं मानसिक रूप से आजादी नहीं मिल पाई है। इस अंचल का एक वर्ग सदियों से परम्परागत गुलामी तथा शोषण की चक्की में पिसता रहा है। आज भी उसी प्रकार से शोषित है। देश में चुनाव की स्थिति जब आती है, मात्र उस समय

कुछ सफेद पोश नेता आकर अपना उल्लू सीधा करते हैं बाद उन्हें फिर से शोषण के उसी दो पाटों में पांच वर्षों तक पिसना पड़ता है। शोषितों के ये दो पाटे हैं—उच्चवर्गीय वर्चस्व एवं शासकीय कर्मचारी, उच्च वर्ग के अन्तर्गत पुराने सामन्त तथा अधिकारी आते हैं जो आज भी इन अंचलों में अपना साम्राज्य कायम कर रखे हैं। प्रशासकीय कर्मचारी हैं जो जनता का शोषण करना अपना अधिकार समझते हैं। इन्हीं दो पाटों के बीच आंचलिक जन—जीवन आज भी त्रस्त है।

बघेलखण्ड के कहानीकारों ने इस सामन्त शाही वर्चस्व का यथार्थ पूर्ण चित्रण करने में कोई कोताही नहीं की है आज ग्रामीण अंचलों में सामन्त वर्ग किस प्रकार अपना प्रभाव जमा रखा है। उन पर कैसे—कैसे जुल्म ढाते हैं यहां तक की उनकी मर्यादा तक को नहीं छोड़ते। उनके सामने ही उनकी बहू—बेटियों की लाज कैसे लूट ली जाती है। किसी के थोड़ा भी सिर उठाने पर उसे गोली से इस प्रकार उड़ा दिया जाता है जैसे ये जंगल में किसी निरीह जानवर का शिकार करते हैं। अथवा अपने पालित गुण्डों के द्वारा उनकी षड़यंत्र पूर्व हत्या करवा देते हैं। घर में आग लगाकर घर के भीतर ही उन्हें भून डालते हैं। उनकी जमीन, जायदाद, जर—जोरू पर अपना पूरा अधिकार समझते हैं।

प्रशासकीय एवं जनता का सेवक कहे जाने वाले नेताओं को भी वे पटा कर रखते इन सब का यथार्थ पूर्ण एवं मार्मिक दृश्य बघेली कहानियों में वर्णित है। 'चुरियन केर कोर' कहानी में सैफू ने इस घटना का वर्णन किया है कि किस प्रकार ये सामन्तवर्ण अपने व्यसन एवं कामाग्नि में दूसरों की विवाहित बहू बेटियों को उठाकर अपने महल के भीतर रख लेते हैं और अपने विलास का शिकार बनाते हैं। इस कहानी की घटना सामन्ती कार्य कलापों का यथार्थ एवं मार्मिक स्मरण कराती है

'खटकीरा' कहानी के माध्यम से सैफू ने यह व्यक्त किया है कि जनता एवं समाज की सेवा करने वाले ये प्रशासकीय कर्मचारी एवं अधिकारी ही समाज को खटमल की तरह चूस रहे हैं। पटवारी, तहसीलदार, थानेदार, वकील, न्यायाधीश, पेशवर सभी तो जनता का खून चूसते हैं। इस कहानी का नायक 'भोदू' बताता है कि—

जब पेशी से लउट के अई, तब घरबाली मारे उराब के पूछवा करै के का भा? फइसला मां, भा के नही? अब का बताई हंसि के कहि देबा करी, के तोर चुरबा गहन धइ के जउन छ सै रुपिया लइ गयेन तय ओखर ता फइसला पेशकार अउ उकील कर दिहिन और रहिगा मुकदमा त पेशी होइ गइ है।

भागवत प्रसाद शर्मा की कहानी 'घुनघुना' भी सामन्ती शोषण एवं अत्याचार का जीता जागता दस्तावेज है। जिसमें अनाथ विधवा की बेटी नर्मदिया जिस सामन्त के घर गोबर उठाती है उसी की हविस का शिकार बनती है। उसी समय नरबदिया का पति घटना को सुनकर आता है तथा नर्मदिया को लेकर उसका पति 'मनगौहा' कालू सिंह के द्वार पर न्याय मांगने जाता है, रात भर वहीं पड़ा रहता है सुबह दोनों नदारद हो जाते हैं, उस समय नर्मदिया की माँ मट्टी रो—रोकर चिल्लाती है—'नरबदिया का चण्डालै मारि डारिनि, रतन गौहा केर हलाल होइगा, हम सब केर निर्बस कइके छोड़ब एक—एक का बिनि—बिनि खाब।

बघेली कहानियों में जीवन के विविध राग विराग और परम्पराओं, मान्यताओं के व्यापक चित्र मिलते हैं। रामप्रसाद तिवारी की कहानी संग्रह 'बूझ-अबूझ' में बघेलखण्ड के लोक जीवन पर केन्द्रित 15 कहानियों का संकलन है श्री तिवारी ने कहानियों में बघेलखण्ड के लोकजीवन में यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। बिना लाग-लपेट के अपनी बात कहने के अभ्यस्थ रामप्रसाद तिवारी के कहानी बूझ-अबूझ में ग्रामीण क्षेत्र में चलने वाली सह-मात के खेल का सजिव चित्रण है, गाँव में रहने वाले व्यवसायी और जमींदार आपस में मिल-जुलकर सहज-सरल और संकोची ग्रामीणों को अपने पंडयत्रों में फंसाकर उनके धन-संपत्ति का दोहन करते हैं यह जानने के वावजूद सरल-सहज ग्रामीण जनों का याह विश्वास है कि सत्य-असत्य, न्याया-अन्याय, सही और गलत के अंतर्द्वंद्व में उलझे मामलों में विजय सत्य की ही होगी। उनको जीवन्तता देता रहा है जिसके बल पर हर कठिन परिस्थितियों में अपने आपको स्थिर बनाये रहते रहे हैं। ग्रामीण संस्कृति के चिंतन मन की आधारशिला चौपाल के सजिव चित्रण कहानीकार ने बूझ अबूझ कहानी में किया है—

गाउँ केर दुइ चारि जने संझा मा बिरऊ के कउड़ा मा बइठत रहें। पीपर के नीचे दुइ झऊआ करसी, चारिठे मोगरी सुचि देइ मा कउनउ कोर कसरि नहीं होति रही। गोरुआरी-बछेरुआरी कइ के बूझ-अबूझ फुरसतिहा कउड़ा मा आइनि जात रहें। चारि मुँह, चारि बाति, केर बतंगड, कुछ लबरी कुछ फुरि केर उथेह लगि जात रहा।

बघेलखण्ड में भी नारी समाज की वही स्थिति निर्मित हुई, जो सम्पूर्ण भारत के विविध अंचलों में व्याप्त थी आजादी के बाद भी पुरुष वर्ग एवं सामाजिक परम्पराओं ने यहां की नारियों को अपनी संकीर्णता पूर्ण परम्पराओं से मुक्त करने में संकोच किया है। इस अंचल के कथाकारों ने नारी की इस वेदना को नजदीक से देखा और साहित्यकार का संवेदन शील हृदय द्रवित होने लगा। इन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में नारी वर्ग की स्थिति का यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण किया है। जिसमें नारियों की करुण दशा, नारी जागरूकता, विधवापन, बेमेल विवाह, दहेज-प्रथा, दैन्य भाव, यौन विसंगतियों, लोकापवाद, पर्दा प्रथा, नारी अशिक्षा आदि विभिन्न समस्याओं का चित्रण पाया जाता है।

रामनरेश सिंह की कहानी 'अमर बौड़ि', 'रानी' एवं 'नाता-रिश्ता' में नारी जागरण, उत्पीड़न, थोथा अह की रानी पात्र 'चन्दी' अपने पति रामदीन, सासु एवं ननद के अत्याचार को सहन नहीं कर पाती तथा विद्रोह कर बैठती है। सासु एवं ननद को पीट देती है। पति को भी मारने दौड़ती है। 'चम्पी' ठाकुर बाबू के घर पर पूरे समाज के समक्ष अपने प्रति होने वाले अत्याचारों का बयान करती हुयी कहती है:—

'अरे अम्मा ई हमारि मंसेरु आहीं, कहथां नेता के अगे जा, हमारि नौकरी लगबाउ। महतारी कहथी पटवारी के घरे जा, कमाई कइ लाउ, सबका खबाउ। तोर बाप हमका ठागि डारिसि हय, ता बिटियइ से सूल करब। येन करि बहिनी गमने जई, हम से कह थां के अपने भउजी महतारी केर गहना चोराइ लाउ। अम्मा जी अब अपनइ बताई के ई मंसेरु आहीं, सात फेरी डारि कइ लअ आए हैं, अब मोही मरिहीं।

बघेली कहानियों में कहानीकार प्रायः जनपद की बोली को उसके समस्त जनपदीय प्रभावों के साथ प्रयोग करते हैं, इससे संवाद स्वाभाविक एवं अनौपचारिक बन गये हैं। इनके अधिकांश पात्र अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित हैं। अतः उनके उनके वाक्य टूटे फूटे एवं अनपढ़ हैं। व्याकरण के विषयों की सतर्कता भी इनमें नहीं है फिर भी भाषा भावों की अभिव्यक्ति में पूर्ण सफल रही है—

‘अब तहिन बताव गांव घर के बात आय, मेला ता सबै का जाय का है, अब कइसन कीन्ह जाय। रमदइला कहिस, सुनी मालिक एई पण्डित फुलिया का कुइयां मा पानी नहीं भरै दिहिन, एक रोज तलाये मां नहाति रही है तो गारी देत रहें.....। ठाकुर कहै लागे, देख रमदइला या सब होतै रहत है, आज बड़मंशी केर बात सामने है। पुरान बातन केर सुधि नहीं करै का होय। जो हम सब कोऊ इहै मेर कहै लागी ता अन्तै बाले का कहि हैं।

कहना न होगा कि बघेली कहानी का इतिहास हर कहानी की तरह पुराना है। बघेलखण्ड के जन जीवन में सदियों से कही सुनी और भोगी जाने वाली कथाओं के भण्डार से आज की बघेली कहानी को खाद और बीज की प्राप्ति हुई है। जो वक्त के साथ अंकुरित होकर अब पल्लवित और पुष्पित हो रही है।

सन्दर्भ सूची—

1. त्रिपाठी अभयराज बघेली लोक कवियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व अप्रकाशित शोध प्रबंध पृ. 52
2. ग्रियर्सन जार्ज इवुलुशन आफ अवधी पृ. 6
3. ग्रियर्सन जार्ज इवुलुशन आफ अवधी पृ. 7
4. तिवारी उदय नारायण भाषा विज्ञान की भूमिका पृ. 183
5. सिंह रामनरेश छिमा संकलित
6. दाहिया बाबूलाल ढील मूठ डेबारू चलै
7. दाहिया बाबूलाल कोन कुसंगत पाइ नसाई
8. शर्मा भागवत प्रसाद टूका कउरा
9. सिद्दीकी शलालुद्दीन देबाती कहानी
10. शर्मा भागवत प्रसाद घुनघुना कहानी
11. दाहिया बाबूलाल ढील मूठ डेमरू
12. देबारी शलालुद्दीन सिद्दीकी
13. सिद्दीकी शलालुद्दीन खटकीरा
14. शर्मा भागवत प्रसाद घुनघुना
15. तिवारी रामप्रसाद बुझ अबुझ पृ 12
16. सिंह रामनरेश अमर बौड़ि
17. सिंह रामनरेश छुआ-छुत

किराना घराने के एक स्तम्भ: पं० सवाई गंधर्व

कविता पंडित

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

kavitajangra111@gmail.com

सार संक्षेप

प्रस्तुत शोध पत्र में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के महान संगीतज्ञ “पं० सवाई गंधर्व”, के संगीत जगत में महान योगदान को दर्शाया है। जिन्होंने पं० भीमसेन जोशी, डॉ० गंगूबाई और फिरोज दस्तूर जैसे प्रतिभावान शिष्य तैयार किये, जो स्वयं उस्ताद अब्दुल करीम खां के प्रकृष्ट शिष्य थे और इस प्रकार ये अपने समय के दिग्गज हिन्दुस्तानी गायकों में से एक थे। शास्त्रीय संगीत के क्षितिज पर गत एक शताब्दी में जो नए सितारे उदित हुए, उनमें श्री रामभाऊ उर्फ सवाई गंधर्व जी का नाम श्रद्धा से स्मरण किया जाता है। यद्यपि शास्त्रीय संगीत के अध्ययन तथा प्रसार में कई मूर्धन्य संगीतकारों का योगदान है, किन्तु यदि 70-80 वर्षों का इतिहास देखें तो निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि सवाई गंधर्व जी का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से शास्त्रीय संगीत को समर्पित रहा है। इसमें अतिशयोक्ति को छोड़कर यह कहा जा सकता है कि रसिक श्रोताओं के कानों को तृप्त करने वाला, मन-ही-मन आनंदित करने वाला संगीत, अपनी गायकी में आत्मसात् करने वाला गायन सवाई गंधर्व जी का था। पं० गंधर्व जी के शिष्यों के शिष्य वर्तमान समय में किराना घराने की गायकी को आगे बढ़ा रहे हैं। अभी 2014 में भारत सरकार द्वारा पांच कलाकारों के नाम स्टैम्प (डाक टिकट) जारी किया गया। जिनमें से तीन कलाकार कर्नाटका से ही संबंध रखते हैं और इसमें भी दो शिष्य पं० भीमसेन जोशी (03 सितम्बर 2014 स्टैम्प जारी) व डॉ० गंगूबाई हंगल (08 सितम्बर 2014 स्टैम्प जारी) हैं जो पं० सवाई गंधर्व जी के ही शागिर्द हैं।

जीवन परिचय सवाई गंधर्व :-

सवाई गंधर्व जी का जन्म 19 जनवरी 1886 को सुबह 4.00 बजे कर्नाटक के धारवाड़ जिले के कुन्दगोल गांव में हुआ, गंधर्व जी का वास्तविक नाम रामभाऊ कुन्दगोलकर है। आपके पिता का नाम गणेश जोशी और माता का नाम सरस्वती बाई था, किन्तु दुर्भाग्यवश तीन वर्ष की छोटी उम्र में ही आपकी माता का देहान्त हो गया। आपको संगीत के संस्कार बचपन से ही अपने पिता जी से मिले और बचपन से ही मधुर, पतली व मीठी आवाज के धनी रहे हैं रामभाऊ जी। आपके पिता श्री गणेश जोशी गाने का शौक रखते थे और इतना ही नहीं वे संगीत महफिलों में कलाकारों के साथ तबले की संगत भी करते थे, और अपने घर पर गाने वाले दोस्तों को बुलाकर वे अपने शौक पूरा करते थे। इसी कारण रामभाऊ को भरपूर संगीत का माहौल मिला और इसीलिए आपकी रुचि भी संगीत के लिए दिनों-दिन बढ़ती गई। कुन्दगोल में ‘नाडगीर वाडा’ में अक्सर संगीत महफिलें होती

रहती थी जहां बड़े-बड़े घरानों के कलाकार आकर प्रदर्शन करते थे जैसे कि जयपुर, ग्वालियर आदि। इसी कारण कुन्दगोल में संगीत की भरपूर धारा बहती थी।¹

हुबली के लेवनटिन स्कूल में आपका दाखिला था परन्तु स्कूल न जाकर संगीत महफिलों का आनंद उठाना अक्सर आपके साथ होता था। बचपन से ही आप कलाकारों को सुनकर उनकी हुबहु नकल उतारते थे और अच्छे गले का सिफारिश पत्र आपको बचपन से ही हासिल हो गया था। आपके पिता जागीरदार जो कि 'नाडगीर वाड़ा' के प्रमुख थे उनके यहां मुंशी का काम करते थे, इसलिए वहां आने वाले कलाकारों को सुनना आपके लिए आसान था, एक बार जागीरदार जी के घर आपने अब्दुल करीम खां जी का गायन सुना, और उन्होंने भैरवी में 'जमुना के तीर' तुमरी की प्रस्तुति दी। जिससे आप काफी प्रभावित हुए और आपने खां साहब से संगीत की तालीम लेने का मन बना लिया। तब आपकी उम्र 15 वर्ष थी, इस उदीयमान गायक की आवाज में सांगितिक माधुर्य था और प्रस्तुति का विलक्षण भी, क्योंकि आपने एक स्थानीय कीर्तनकार से ही ध्रुपद और घमार की शिक्षा ली थी, दूसरे दिन जागीरदार ने रामभाऊ को बुलाकर मुस्कुराते हुए रामभाऊ से पूछा, "खां साहब को गाना सुनाओगे क्या?" रामभाऊ का मन दुविधा में पड़ गया, क्योंकि गाने की इच्छा तो बहुत थी परन्तु इतने बड़े गायक के सामने कैसे गाऊँ, ये डर था, फिर भी डरते-डरते गाना तो गाया अर्थात् वो गाना बचपन में गाये किसी प्राथमिक अवस्था से अधिक ना था लेकिन उसमें भी आपकी आवाज में नैसर्गिक मिठास थी, उसके बाद खां साहब सिखाने के लिए मान गए। 1901 से खां साहब के पास आपकी पहले शिष्य के रूप में सांगितिक शिक्षा आरम्भ हुई। यह लगभग 8 वर्षों तक लगातार चली जिसमें आपने बहुत से राग सिखे जैसे तोड़ी, मुल्तानी, पूरिया इत्यादि।²

पारिवारिक जीवन :-

रामभाऊ जी का व्यक्तिगत जीवन कुछ ज्यादा सुखी नहीं रहा, अक्सर आपको नई-नई मुसीबतों का सामना करना पड़ा, आपका विवाह सीताबाई से हुआ और आपको एक पुत्र और एक पुत्री की प्राप्ति हुई, परन्तु दुर्भाग्यवश पुत्र मतिमंद होने के कारण न के बराबर था। रंगमंच की दुनिया से जुड़ जाने के कारण रिश्तेदार भी संबंध नहीं रखते थे, लेकिन जैसे-जैसे कीर्ति और यश व दौलत प्राप्त होती गई, वैसे-वैसे गुड़ से चिपकने वाली चिटियों की तरह रिश्तेदार भी आने लगे और समाधान मिलता चला गया। आपकी सुपुत्री प्रेमिला की शादी 1904 में श्री वसन्तराव नाना साहेब देशपाण्डे से हुई जो कि सरकारी मैडिकल विभाग में कार्यरत थे और मजे की बात तो यह थी कि वे भी गाने का शौक रखते थे और यही बात ससुर व दामाद को और पास ले आई।

ड्रामा :-

कुछ समय बाद आपने थियेटर भी करना शुरू कर दिया और 1907 में गोपालराव मराठे के साथ नाटक कंपनी खोली जिसमें 'तारा' नामक नाटक में आपने पुरुष की भूमिका निभाई। गोपालराव जी के निधन के बाद आपने ही उनकी जगह नारी पात्र की भूमिका अदा की, वहां आपको 100 रुपये तनखाह मिलती थी।

1910 में गोविन्द राव टैम्बे जी के साथ उनकी शिवाजी मंडली में काम शुरू किया, खुशी की बात यह रही कि इस कंपनी में मुख्य किरदार की भूमिका सदैव आपकी ही होती थी। जब भी आपका अभिनय होता था श्रोताओं की एक बार और सुनने की इच्छा तृप्त न होती थी।

एक बार एक प्रदर्शन के वक्त कार्यक्रम में गाते-गाते आपका गला अचानक खराब हो गया मानो गला पूरी तरह से बैठ गया और आवाज भी बहुत जोर लगाकर निकालनी पड़ रही थी, परन्तु आपकी गाने के प्रति सच्ची लग्न होने के कारण गाना बीच में रोकना आपको उचित न लगा और आप जैसे-तैसे लगातार गाते ही रहे, तभी 'दादा साहेब खरपड़े' जी ने आपको "संवाई गंधर्व" की उपाधि से सुशोभित किया।³

1911 में आपने लेह ले बॉर्डर पर 'नाटक कला प्रवर्तक मंडली' नामक नई कंपनी में भाग लिया, जहां "सौभद्रा" नाटक में आपने सौभद्रा की ही भूमिका काफी निभाई। इसके अलावा हरि नारायण आपटे जी के नाटक 'सन्तसकू' में भी आपने अच्छे पात्र निभाये।

कई बार आपका रंगमंच छोड़कर केवल संगीत करने का मन होता परन्तु नाटक कंपनी आपको जाने ही नहीं देती थी।

आपने 1910 से 1935 तक अधिक से अधिक संगीत कार्यक्रम किए और बहुत से शागिर्द भी तैयार किये जैसे कृष्णा बाई रामदुर्ग, फिरोज दस्तूर, आपके दामाद वसन्त राव देशपाण्डे, वैकटराव रामदुरकर आदि और 1928 से 1942 तक कुन्दगोल में जिन शिष्यों को आपने तालीम दी उनमें हैं डॉ० गंगूबाई हंगल, पं० भीमसेन जोशी, बसोराज राजगुरु आदि।

एक कार्यक्रम के दौरान आपको गाना शुरू किये केवल 10 मिनट हुए थे और अचानक पक्षापात का शिकार होना पड़ा। उसके बाद आप संगीत जगत से थोड़ा विरक्त से हो गये। 1941 से 1942 में आप अपनी प्रिय शिष्या डॉ० गंगूबाई हंगल जी के निवास स्थान हुबली में रहे, उन्होंने आपकी बहुत सेवा की और 1946 में कुन्दगोल कोटन मील में आपकी 60वीं वर्षगांठ भी मनाई गई, फिर 1948 से 1950 तक आप कुन्दगोल में रहे उसके बाद जीवन के आखिरी दो वर्ष आपने अपनी बेटी व दामाद के घर पूना में व्यतीत किये। जहां 12 सितंबर 1952 को संगीत जगत ने एक महान संगीतज्ञ को खो दिया और स्वर्गीय पं० संवाई गंधर्व जी अपनी आवाज के साथ इस संगीत जगत में सदा के लिए अमर हो गए। आपकी उम्र महज 66 वर्ष थी। मृत्यु से पूर्व लगभग 10 वर्षों तक आप पक्षाघात से पीड़ित रहे।⁴

रामभाऊ जी के शिष्य ज्यादा नहीं हैं रंगमंच से जुड़े होने के कारण शिष्यों को सिखाने का समय नहीं मिलता था क्योंकि किसी को सिखाने या शिष्यों को तैयार करने के लिए अत्यधिक समय की आवश्यकता होती है। उसके अतिरिक्त बचा हुआ समय गायन के कार्यक्रमों में व्यतीत होता था। यही कारण था कि शिष्य परम्परा शुरू करने के लिए उनके पास नियमित समय न था। परन्तु इस दरम्यान भी उन्होंने कुछ शिष्य तैयार किये उसमें हैं फिरोज दस्तूर, पं० भीमसेन जोशी और डॉ० गंगूबाई हंगल। जो कि आधुनिक युग में किसी परिचय के मौहताज नहीं हैं।

संवाई गंधर्व महोत्सव:**कुन्दगोल (जन्मभूमि)**

संवाई गंधर्व जी की पूण्यतिथि के रूप में संवाई गंधर्व महोत्सव का आयोजन किया जाता है, और यह हर वर्ष भादो पदमास कृष्ण पक्ष की नवी और दसवीं को आयोजित किया जाता है। इस महोत्सव की शुरुआत 1953 वर्ष में हुई और तब से अब तक लगातार यह चल रहा है। 1953 में इसकी शुरुआत नाना भाई देशपाण्डे जी ने की। उसके बाद 1973 में यह कार्य एम0 एस0 कट्टगी जी ने सम्भाला जो कि उस वक्त कर्नाटक के कृषि मंत्री रहे हैं। हालांकि वे एक अच्छे बांसुरी वादक भी थे। 2012 में उनके निधन के पश्चात यह कार्यभार उनके पुत्र श्री अरविंद कट्टगी को सौंपा गया, जो अभी तक बरकरार है। संवाई गंधर्व नाम की संस्था इस कार्य को मिलकर करती है और सरकार भी इस आयोजन में अपनी तरफ से पूरा-पूरा सहयोग करती है।

यह कार्यक्रम दो दिन व दो रात लगातार चलता है। कुन्दगोल में “संवाई गंधर्व हॉल” में ही हर वर्ष यह आयोजन होता है। हर बड़े से बड़ा कलाकार यहां पर अपनी कला का प्रदर्शन कर चुका है और सबसे बड़ी बात यह है कि वे सभी अपनी प्रस्तुति श्रद्धाजंली स्वरूप देते हैं बिना किसी फीस के। सैंकड़ों की संख्या में श्रोता व कलाकार इस कार्यक्रम का हिस्सा बनते हैं और उन सभी के रुकने व खाने पीने का खर्च संस्था ही उठाती है।⁵

यह समिति (संस्था) पिछले दस वर्षों से हर वर्ष किसी एक कलाकार को सम्मानित करती हैं। कार्यक्रम में भाग ले चुके कुछ कलाकारों के नाम इस प्रकार हैं— पं० जसराज, पं० भीमसेन जोशी, श्री माणिक वर्मा, हीराबाई बडोदेकर, प्रभा अत्रे, डॉ. गंगूबाई हंगल, श्रीकांत देशपाण्डे, बसोराज राजगुरु, श्री मल्लिकार्जुन मन्सूर आदि।

पुणे :-

सन् 1910 में अब्दुल करीम खां साहेब जी ने पूना में “आर्य संगीत विद्यालय” में संगीत शिक्षण की शुरुआत की। कुछ काल तक यह विद्यालय खां साहेब ने चलाया परन्तु उसके बाद यह कार्य अपने शिष्य दशरथ बुआ के हवाले सौंपकर मिरज चले गये। 1937 में खां साहेब का निधन हुआ। श्री नाना साहेब देशपाण्डे, दशरथ बुआ से सिखते थे। वक्त बीतता चला गया और 1968 में “ट्रस्ट एक्ट एण्ड सोसायटीज एक्ट” इसी के द्वारा संवाई गंधर्व मण्डल की स्थापना की गई और महोत्सव भी तभी से शुरू हो गया। उसमें पं० भीमसेन जोशी व डॉ० नाना साहेब देशपाण्डे सैक्रेटरी के पद पर इस मण्डल में संयुक्त रूप से काम देखने लगे। मण्डल के इतिहास की ओर देखें तो 1968 वर्ष में इस आयोजन कार्य में एक अनुशासन बद्धता लाई। उस समय श्रीमती हीराबाई बडोदेकर इस मण्डल की अध्यक्षा थी व और भी सदस्य इससे संबंधित थे जैसे कि सर्वश्री वामन राव देशपाण्डे, वसन्तराव देशपाण्डे, दत्तोपंत देशपाण्डे, नाना साहेब देशपाण्डे, बाबा साहेब अत्रे, पं० भीमसेन जोशी, अरविंद मारुकर, वाई० डी० जोशी, मधुकर पारुडेकर आदि ये सभी सभासद थे।⁶

सन् 1981 में डॉ० नाना साहेब देशपाण्डे जी का निधन हुआ तब से सैक्रेटरी पद की बागडोर डॉ० एस० बी० गोखले जी ने सामर्थ्यता से संभाली है। और श्री वाई० डी० जोशी द्वारा भी इस आयोजन के लिए आर्थिक सहायता बड़े प्रमाण में दी जाती है।

अब 'आर्य संगीत प्रसारक मंडल' को महाराष्ट्र शासन की ओर से जगह भी प्राप्त हो गई है, इस कारण संगीत कला की अखण्ड सेवा करने की संधि उपलब्ध हुई, यह कहने में कोई हरकत नहीं। "संवाई गंधर्व महोत्सव पूणे" कार्यक्रम तीन दिन-रात लगातार चलता है और इसे पांच हजार से भी अधिक श्रोता बैठकर सुनते हैं।⁷

सुझाव

संगीत जगत में पं० संवाई गंधर्व जी के समान बहुत से सूरज उदित हुए हैं। ऐसी महान शख्सियतों को लेकर ज्यादा से ज्यादा शोध कार्य किये जाने चाहिए ताकि आने वाली पीढ़ी को संगीत व संगीत से जुड़े पहलुओं से परिचित कराया जा सके।

निष्कर्ष

इस शोध पत्र को प्रकाशित करने का उद्देश्य यह है कि ज्यादा से ज्यादा संगीत में रुचि रखने वाले व्यक्तियों को संगीत जगत के इस महान संगीतज्ञ के योगदान से परिचित कराना। पं० जी ने अपने जीवन के कुल 66 वर्षों में अपने नाम को इस प्रकार अमर किया कि आज उनके शिष्यों का भी जब कहीं नाम आता है तो पं० संवाई गंधर्व जी के संगीत को याद किया जाता है। कहते हैं कि शिष्य चाहे कितना ही प्रसिद्ध हो जाये पर वास्तविक रूप में तारीफ गुरु को ही मिलती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. देशपाण्डे वामनराव (1997), संवाई गंधर्व आणि त्याचे गंधर्व संगीत, कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, पुणे, पृष्ठ सं० 22
2. धर्मपाल (2008), किराना घराने की गायकी एवं बंदिशों का मूल्यांकन, ओमेगा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली-110002 प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं० 96
- 3- L.K. Kulkarni, Songs of My Life: Dr. Gangubai Hangal.
4. श्री पदमा देशपाण्डे जी द्वारा दिये गये साक्षात्कार के अंश।
5. नाडकर्णी मोहन (1991), भीमसेन जोशी : व्यक्ति और संगीत, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, पृष्ठ सं० 117
6. क्षीरसागर दत्ता (2011), महान संगीतज्ञों के संस्मरण, राजस्थानी ग्रन्थागार जौधपुर प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं० 57
7. श्रीमती शीला देशपाण्डे जी के द्वारा दिये गये साक्षात्कार के कुछ अंश (पं० संवाई गंधर्व जी की प्रौपुत्र वधू) पूणे।
8. श्री अरविंद कट्टगी जी के द्वारा दिये गये साक्षात्कार के अंश, संवाई गंधर्व महोत्सव समिति (मुख्य संचालक) कुन्दगोल
9. गर्ग लक्ष्मी नारायण (1984), हमारे संगीत रत्न, संगीत कार्यालय हाथरस उत्तर प्रदेश चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ सं० 25

अजमेर में ब्रिटिश पुलिस प्रशासन

अभिमन्यु कुमावत (शोधार्थी) मदस विश्वविद्यालय, अजमेर
श्री पोरस कुमार (वरिष्ठ व्याख्याता) स.पू.चौ. राज. महाविद्यालय, अजमेर

25 जून, 1818 ई. को ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा अजमेर को मराठा से अधिग्रहित करने के बाद यहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था हेतु अजमेर सुपरिन्टेन्डेन्ट की नियुक्ति की।¹ मुगल काल में सूबे में आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा की जिम्मेदारी सूबेदार की थी। मराठा सूबेदार सूब्बेराव व राजस्व अधिकारी नरूखा के स्थान पर प्रथम ब्रिटिश सुपरिन्टेन्डेन्ट मिस्टर एफ. विल्डर ने इन पदों को समाप्त कर इनके अधिकार प्राप्त कर लिये। अजमेर सुपरिन्टेन्डेन्ट ने यह जिम्मेदारी ग्रामीण क्षेत्रों में इस्तमरादार, ठिकानेदार और जागीरदारों को सौंप दी।² 1828 ई. में कम्पनी प्रशासन ने ग्रामीण प्रशासन हेतु 5 तहसीलदारों को भी नियुक्त किया। दीवानी निकाय के रूप में कोई ब्रिटिश पुलिस व्यवस्था नहीं थी।³ 1856 ई. में कर्नल डिकसन ने अजमेर के 18 गाँवों में 3 रु. मासिक वेतन पर चौकीदारों की नियुक्तिया की इनके वेतन का एक भाग यात्रियों से कर के रूप में तथा शेष गाँव के खर्च की राशि से वसूल किया जाता था।⁴ 1857 ई. की क्रान्ति के पूर्व डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट व रेवेन्यू कलेक्टर में पुलिस के अधिकार समायोजित थे परन्तु कार्य की अधिकता के कारण पुलिस सम्बन्धित कार्य ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में अनुशासन, सुरक्षा, कानून व्यवस्था दीवानी व आपराधिक कानून, सजा का प्रावधान, अपराध अन्वेषण व शान्ति व्यवस्था करने में असमर्थ रहें। मार्च, 1861 ई. के अधिनियम के तहत मेढ़ बटालियन के सैनिकों का भी पुलिस का कार्य सौंपा गया। तहसीलदार के निरीक्षण में एक पुलिस थानेदार का पद निश्चित करने का निर्णय लिया गया। जिसका कार्य अपने क्षेत्र में शान्ति और कानून व्यवस्था बनाना था। जिले में 10-15 मील की दूरी में प्रत्येक थाने में एक जमादार, एक पेशकर और तीन चपरासी नियुक्त किये गये। ब्यावर मुख्यालय में तैनात मेढ़ बटालियन में नियुक्त 01 रिसालदार, 01 जमादार, 01 दफ्तरी, 48 बस्तरबंद सिपाही, 60 सवार और 48 चौकीदार आदि को लोगों के जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा की जिम्मेदारी दी गई। अजमेर की म्यूनिसिपल को प्राप्त मकान कर जो मासिक 332 रु. संग्रहित होता था उसमें कुल 32 रु. इनमें वेतन के रूप में वितरित किये जाते थे। मेर रेजीमेन्ट मेरवाड़ा पुलिस बटालियन में परिवर्तित कर दी गई जिसे इनसपेक्टर जनरल ऑफ पुलिस नार्थ-वेस्ट प्रोविन्स के अन्तर्गत रखा गया। केन्द्रीय ब्रिटिश सरकार ने 1859 ई. में भारतीय दीवानी प्रक्रिया; 1860 ई. में भारतीय दण्ड संहिता, 1861 ई. में इण्डियन पुलिस एक्ट तथा 1861 ई. में आपराधिक प्रक्रिया संहिता पारित की गई।⁵

22 मार्च, 1861 ई. में गवर्नर जनरल की काउन्सिल ने प्रांतों में एक पुलिस अधिनियम कानून व्यवस्था के लिए पारित किया गया। जिसमें रेवेन्यू कलेक्टर और डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट पुलिस के प्रभार से मुक्त कर दिये गये। इसकी व्यवस्था का प्रभारी जिला अधीक्षक पुलिस डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ पुलिस को बनाया गया। इस

अधिनियम के द्वारा अजमेर में 548 पुरुष पुलिस तैनात किये गये। जिला अधीक्षक पुलिस की सहायता के लिए एक सहायक जिला अधीक्षक की नियुक्ति भी की गई।⁶

ग्रामीण क्षेत्रों में आपराधिक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने के लिए ग्रामीण चौकीदार, इस्तमरारदार, भूमिया और जागीरदारों को कानून व्यवस्था (Law and Order) की जिम्मेदारी सौंपी गई। चौकीदार उसी ग्रामीण समुदाय से सम्बन्धित होता था जिसके पास ग्राम की छोटी सी भूमि अधिकृत होती थी। इस्तमरारदारों को उनके अपने क्षेत्रों के अन्तर्गत घटती तो उन्हें इसका उत्तर-दायित्व वहन करना होता था। भूमियों को उनकी भूसंपत्ति के पूर्ण अधिकार इसी आधार पर प्राप्त थे कि वे अपने क्षेत्र की व्यवस्थित चौकसी एवं निगरानी रखेंगे। खालसा भूमि में भूमियों की प्रथा नहीं थी। वहाँ सरकार को निगरानी एवं चौकसी के लिए चौकीदारों की नियुक्ति की गई। चौकीदार बहुधा चीता एवं मेर जातियों के लोगों में से नियुक्त किए जाते थे। इन पर यह जिम्मेदारी थी कि अगर उनकी लापरवाही के फलस्वरूप किसी तरह की दुर्घटना घटती तो उन्हें क्षतिपूर्ति करनी होती थी।⁷ इनकी नियुक्ति का उद्देश्य था कि जबतक वे नियुक्त होंगे तब इनके जाति भाई इन क्षेत्रों में चोरी करने का दुस्साहस नहीं करेंगे।

अजमेर के ग्रामीण क्षेत्रों में जब किसी व्यक्ति का सामान इस्तमरारदारी या भौम गाँव में चोरी हो जाती तो वे फौजदारी अदालतों में इस आशय का प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत कर इस्तमरारदार या भूमियों से क्षतिपूर्ति की रकम अदालत के जरिये वसूल कर सकते थे। अजमेर-मेरवाड़ा के इस्तमरारदारों को अपने क्षेत्र की समूची पुलिस व्यवस्था का भार वहन करना होता था। केवल कुछ ही प्रमुख क्षेत्रों - अजमेर, पुष्कर, ब्यावर, टाड़गढ़ और दिवेर में सरकारी पुलिस चौकियों की व्यवस्था थी जो कि नोटिस, सम्मन या वारण्ट तलबी का काम करती थी। अजमेर जिले के एक तिहाई क्षेत्र में इस्तमरारदारी व्यवस्था थी। इस क्षेत्र की समूची पुलिस-सेवा उनके अधीनस्थ कार्यरत थी।⁸ अप्रैल, 1870 ई. में अजमेर शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में ब्रिटिश सरकार ने 656 चौकीदार के पद स्वीकृत किये साथ ही 39,360/- की राशि जारी की। इसमें से 7 रु. प्रति चौकीदार प्रतिमाह वेतन के रूप में तथा शेष राशि अधिकारियों में वेतन के रूप में वितरित की जानी थी।⁹ 1874 ई. में भूमियों की क्षतिपूर्ति की जिम्मेदारी समाप्त कर दी और सरकार ने अजमेर में 33 चौकीदार जो पुलिस की वर्दी में रात-दिन नौकरी पर नियुक्त किये गये। यह व्यवस्था 1876 ई. तक बनी रही, इसके बाद अजमेर की नगर पालिका द्वारा चौकीदारों की नियुक्ति की जाने लगी। 1876 ई. के नगर पालिका कानून 20 के अन्तर्गत 40 चौकीदारों

की नियुक्ति की गई। इन चौकीदारों को पुलिस के साथ साधारण सिपाही के समान अधिकारी प्राप्त नहीं थे। 1 जनवरी, 1877 को अजमेर में चौकीदारों की संख्या 680 से घटाकर 490 कर दी गई। 1888 ई. में चौकीदार व्यवस्था में नये परिवर्तन किये गये। इनकी नियुक्ति जिला दण्ड नायक को सौंप दी गई। जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में 150 घरों की आबादी पर 1 चौकीदार अधिक होने पर 2 चौकीदार और इससे अधिक होने पर जिला दण्ड नायक 5 चौकीदार नियुक्त कर सकता था। इनमें से 1 चौकीदार को मुखिया बनाया जाता था, वह जमादार कहलाता था। जमादार को छोड़कर चौकीदार को लाल-नीली पगड़ी, एक पट्टा और खाकी रंग का कोर्ट पहनना अनिवार्य था साथ में उसे एक भाला भी रखना पड़ता था और जमादार को नीली पगड़ी, खाकी कोर्ट जिसकी बाई आस्तीन एक लाल पट्टी लगी हुई रहती थी। ग्रामी चौकीदार का वेतन 4 रु. मासिक और जमादार का वेतन 7 रु. मासिक होता था। वेतन का निर्धारण और भुगतान जिला दण्ड नायक द्वारा किया जाता था। वर्दी का व्यय चौकीदार और जमादार को देना पड़ता था।¹⁰

1889 ई. में एजेण्ट टू द गर्वनर जनरल ने राजपूताना में ठगी और डकैती का दमन करने के लिए एक ईस्टर्न राजपूताना एजेन्सी स्थापित की गई, जिसका सदर मुकाम अजमेर था और रियासतों में निरीक्षण चौकीया कायम की गई अपराधियों का निर्णय अजमेर की अदालत में होता था। रियासतों से उनके वकील पैरवी करते थे।¹¹

1871 ई. में अजमेर पुलिस विभाग को उत्तर-पश्चिमी सूबा के इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस के नियंत्रण से हटाकर अजमेर कमीशनर के हाथों में सौंप दिया गया। इसी आधार पर अजमेर में थाने और चौकियां कायम की गई। 1877 ई. में पुलिस सेवा के अन्तर्गत 3 एस.एच.ओ. (स्टेशन हाउस आफिसर ऑफ पुलिस) और 1 इन्स्पेक्टर ऑफ पुलिस पदों पर अंग्रेज अधिकारी, 93 हैड कान्सटेबल भारतीय, 40 घुड़सवार और 446 सिपाही नियुक्त किये गये। इसी वर्ष 6 प्रथम श्रेणी के पुलिस थाने, 6 द्वितीय श्रेणी के पुलिस थाने और 9 पुलिस चौकियां स्थापित की गई :-

प्रथम श्रेणी : अजमेर रेल्वे वर्क शॉप, नसीराबाद, मांगलियावास, भिनाय, गौयला और केकड़ी में पुलिस थाने, सराधना, दिल्ली दरवाजा, आगरा दरवाजा, त्रिपोलिया दरवाजा, ओस्वी दरवाजा, मदार दरवाजा, दाता, खरवा, बांदनवाड़ा, शोखला आदि में पुलिस चौकियां स्थापित की गई। इसी प्रकार पीसांगन, गेगल, श्रीनगर, मसूदा, सांवर, पुष्कर, हरमाड़ा, देवली और नान्द में द्वितीय श्रेणी की पुलिस चौकीया कायम की गई। इनमें तैनात पुलिस अधिकार व पुलिस बल को वेतन भी पुलिस विभाग से चुकाया जाने लगा।

इनके अधिकार क्षेत्र व सम्बन्धित क्षेत्रीय व्यवस्था का निर्णय अधिकार जिला दण्ड नायक को दिया गया।¹² 1888 ई. में अजमेर में प्रथम बार पुलिस सेवा भर्ती परीक्षा प्रारम्भ की गई। इस सेवा भर्ती की परीक्षा समिति में जिला पुलिस अधीक्षक को अध्यक्ष, एक दण्ड नायक और परीक्षा इन्सपेक्टर नियुक्त किये गये। इस परीक्षा में भारतीय दण्ड संहिता, दीवानी और फौजदारी कानून और अपरिवर्तित पुलिस सेवा नियमों की जानकारी ली जाती थी।¹³ 1903 ई. में अजमेर के पुलिस विभाग ने पुलिस सेवा में भर्ती नये पुलिस दल को प्रशिक्षित करने, कानून व कानून व्यवस्था की प्रारम्भिक जानकारी तथा ड्रिल व शस्त्रों को पकड़ना व चलाना आदि में प्रवीण किया जाता था। प्रशिक्षित पुलिस की नियुक्ति अजमेर, नीमच और इन्दौर कहीं भी की जा सकती थी। यह प्रशिक्षण एक वर्ष का होता था। इस दौरान खाने व रहने की व्यवस्था निःशुल्क दी जाती थी। सफल व ब्रिटिशर्स के स्वामीभक्त पुलिस कान्सटेबल उच्च पदों पर भी पदोन्नत किये जाते थे।¹⁴

नागरिक पुलिस का संगठनात्मक स्वरूप :

1871 ई. में अजमेर-मेरवाड़ा का प्रशासन उत्तर-पश्चिमी प्रांत से मुक्त कर फोरन एण्ड पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट ऑफ द गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया को सौंपे जाने के बाद अजमेर पुलिस व्यवस्था का कार्यभार अजमेर-मेरवाड़ा के कमीशनर को सौंप दिया गया और 1912 ई. में आबू में एक इन्सपेक्टर जनरल ऑफ पुलिस का पद सृजित किया गया। जो कमीशनर, अजमेर के प्रति उत्तरदायी था। 1920 ई. के आसपास सहायक अधीक्षक, पुलिस के पद को समाप्त कर अजमेर में डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ पुलिस का पद सृजित किया गया। मार्च, 1935 में अजमेर-मेरवाड़ा में रेल्वे पुलिस दल भी गठित किया गया। अजमेर में 784 हैड कान्सटेबल एक सर्जन्ट के साथ, 99 हैड कान्सटेबल और 805 कान्सटेबल की नियुक्ति की गई। 1941 ई. में 15 पुलिस स्टेशन जो अजमेर, ब्यावर तथा नसीराबाद में तीन पुलिस सर्किल में विभक्त किये गये थे, स्थापित हुए।¹⁵ द्वितीय विश्व युद्ध के बढ़ते प्रभाव के कारण 1134 हथियार बन्द पुलिस कान्सटेबल की नियुक्ति अस्थायी तौर पर की गई। पुलिस दल की निगरानी का कार्य सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ पुलिस डिप्टी कमीशनर और चीफ कमीशनर अजमेर-मेरवाड़ा को सौंपा गया जिसका केन्द्रीय नियंत्रण इन्सपेक्टर जनरल ऑफ पुलिस अजमेर-मेरवाड़ा का था जो राजपूताना रेजीडेन्ट का पुलिस सलाहकार था।¹⁶

आपराधिक जांच विभाग :¹⁷

1 अगस्त, 1944 ई. को अजमेर में इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस, अजमेर को स्वतंत्र प्रभार देकर आपराधिक जांच विभाग की स्थापना की गई। जिसकी 3 शाखाएं थी - 1. जनरल ब्रांच, 2. क्राइम ब्रांच, 3. स्पेशल ब्रांच। इन तीनों शाखाओं का मुख्यालय अजमेर में था। प्रत्येक शाखा का एक निरीक्षक नियुक्त किया गया इसके साथ ही अजमेर में डिस्ट्रिक्ट इन्टेलिजेन्स स्टाफ भी संगठित किया गया जो डिस्ट्रिक्ट सुपरि. पुलिस ऑफ अजमेर के आधीन कार्यरत था।

Name of the Branches	Inspectors	Sub-inspectors	Head-Constables	Constables	Upper Division Clerk	Lower Division Clerk	Head Clerk
General Branch	1	5	2	-	1	2	1
Crime Branch	1	3	2	23	-	2	-
Special Branch	1	2	-	-	1	1	-
District Intelligence Staff, Ajmer	-	3	7	42	-	-	-

Source : (File No. A/27-62, Rajputana Agency, Criminal Crime. Branch, Ajmer, 1944-45 R.S.A.B.)

राजपूताना के निरीक्षण हेतु अजमेर में एक स्पेशल ब्रांच ऑफ राजपूताना का गठन किया गया इस क्राइम स्टॉफ का कार्य आपराध व अपराधियों को समाप्त करना इन्हें भी क्रीमिनल प्रोसीजर लॉ की जानकारी हेतु 30 दिवस का निःशुल्क प्रशिक्षण दिया जाता था।

इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में घटित घटना, अपराध या चोरी के लिए तहसीलदार और चौकीदार को जिम्मेदारी दी गई। अपराधी के नहीं मिलने पर क्षतिपूर्ति का भुगतान करने का जिम्मा भी तहसीलदार और चौकीदार को होता था। ग्रामीण क्षेत्रों में चोरी-डकैती की सूचना सम्बन्धित थाने या तहसीलदार को अविलम्ब दी जाती थी। चोरी, डकैती, लूटमार, जबरन वसूली या कोई आपराधिक घटना हत्या, बलवा, बलात्कार छेड़खानी, महिला को जबरन उठा ले जाना आदि का उत्तरदायित्व स्थानीय क्षेत्रों के इस्तमरारदार, भौमिया, जागीरदार, ठिकानेदार, जमींदार के जिम्मे ही था।

चौकसी व निगरानी का अधिकार स्थानीय लोगों को सौंपकर ब्रिटिश अधिकारी इस कार्य से मुक्त हो गये। जिन चौकीदार को नकद वेतन देय नहीं होता था उन्हें निश्चित मात्रा में अनाज देना होता था। 1887 ई. में कस्टम अधिकारियों की नियुक्ति की गई, 1905 ई. में लगभग 15 कस्टम अधिकारी अतिरिक्त नियुक्त किये गये। सड़क मार्ग पर व्यापारियों के आवागमन पर कस्टम अधिकारियों की नियुक्ति हुई जिससे घुसपैठियों की

संख्या में कमी हुई। झांसी रिजर्व से बुलाये गये घुड़सवारों को भी तैनात करने से अपराधों में कमी आई। अपराधी के दूसरी रियासत में प्रवेश कर जाने पर 5 पुलिस कान्सटेबल का एक पुलिस उस अपराधी को उस रियासत से अजमेर लाकर अदालत में प्रस्तुत करना व दण्ड दिलाना था।¹⁸ 1895 से 1946 तक अजमेर पुलिस पर कुल व्यय किया गया :-

Years	Expenditure		
	Rs.	a.	p.
1895-96	90000	4	6
1905-06	114224	0	0
1910-11	179215	1	10
1915-16	235310	0	0
1920-21	353560	0	0
1925-26	396460	0	0
1930-31	371200	0	0
1935-36	358300	0	0
1940-41	403200	0	0
1945-46	829594	0	0

Source : Cences Report Ajmer-Merwara 1950-51 Table No. XV

इस प्रकार 1883 ई. के बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा अजमेर में लगातार पुलिस बल को प्रोत्साहन और बढ़ावा मिलता गया। लार्ड रिपन ने 1883 ई. में प्रसिद्ध रिजोल्यूशन पास किया जिसमें म्यूनिसिपल कमेटी को इसका पृथक से जिम्मा सौंपा गया इसी कारण 1879-80 में कुल पुलिस कान्सटेबल 429 थे, वे 1900 में बढ़कर 703 हो गये। 28 दिसम्बर, 1907 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सूरत अधिवेशन ने क्रान्तिकारी गतिविधियों को बढ़ावा देने के कारण ब्रिटिश प्रशासित अजमेर-मेरवाड़ा प्रांत में 1910 तक 947 पुलिस सेवा में भर्ती की गई। 1920 तक इनकी संख्या 3960 तक हो गई धीरे-धीरे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में गांधीजी के प्रवेश के बाद क्रान्तिकारी गतिविधियों में कमी आने से 1930 में 265 व्यक्ति ही पुलिस दल में रह गये सविनय अवज्ञा आन्दोलन व डांडी मार्च के कारण पुलिस कान्सटेबलों की संख्या 933 हो गई और 1950-51 तक 2000 से भी अधिक पुलिस बल में तैनात कान्सटेबल की संख्या हो गई।

इस प्रकार घटती-बढ़ती पुलिस संख्या से ज्ञात होता है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की राजनीतिक गतिविधियों से विचलित ब्रिटिश सरकार ने कानून-व्यवस्था के लिए पुलिस बल में कमी या बढ़ोत्तरी होने लगी।

S.No.	Name of Officers	Pre 1900 AD	Post 1900 AD					
		1890-91	1900-01	1910-11	1920-21	1930-31	1940-41	1950-51
1	Inspector General and Deputy Inspector General.	-	-	-	-	-	-	1
2	Superintendents	1	1	1	1	1	1	1
3	Deputy Superintendents	-	-	-	1	1	2	2
4	Assistant Superintendents	-	-	1	-	-	-	-
5	Inspectors	3	3	5	5	4	4	6
6	Sub Inspectors	12	13	34	34	34	33	46
7	Sergeants	-	-	1	1	-	2	2
8	Head Constables	65	93	89	89	84	98	141
9	Mounted Constables	40	37	35	29	25	-	-
10	Foot Constables	308	556	781	790	716	793	864
Total		429	703	947	950	865	933	1063

Source : Census Reports of Ajmer-Merwara 1901-1951

सन्दर्भ ग्रन्थ :

- १} एचीयन सी.यू., कलेक्शन ऑफ द ट्रीटीज एगेजमेण्टस एण्ड सनद रिलेटिंग इण्डिया एण्ड नेबरिंग कन्ट्रीज, कलकत्ता, १९३३ खण्ड पाँच, पृष्ठ ४०६-१०
- २} अजमेर-सुपरि. एफ. विल्डर अजमेर द्वारा मेजर जनरल सर डेविड आक्टरलोनी को २४ सितम्बर, १८१८ ई. को लिखा पत्र क्रमांक २३८/ए
- ३} अजमेर-सुपरि. आर केवन्डिश द्वारा रेजीडेण्ट राजपूताना कोलब्रुक को १० जुलाई, १८२८ को लिखा पत्र क्रमांक १२३/एजे
- ४} कमीशनर, अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा चीफ कमीशनर जे. जोसफ लायल (कार्यवाहक) को लिखा पत्र १० अप्रैल, १८५७, संख्या ७०२
- ५} वाटसन, सी.सी.; राजपूताना डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, १९०४, खण्ड १, पृ. ३०
- ६} कर्नल ए.जी. डेविडसन, डिप्टी कमिशनर द्वारा आर. एच. कीटिंग, कमिशनर व ए.जी. राजपूताना को पत्र, दिनांक ११ अप्रैल, १८६८ पत्र संख्या ५६८/१८६८
- ७} लेफ्टिनेंट जान लिस्टन, असिस्टेंट कमिशनर द्वारा डिप्टी कमिशनर को पत्र, दिनांक ६ अक्टूबर, १८६६, पत्र संख्या १६८/१८६६
- ८} डिप्टी कमिशनर अजमेर-मेरवाड़ा द्वारा कमिशनर व ए.जी.जी. राजपूताना को पत्र, दिनांक ११ अप्रैल, १८६८ पत्र संख्या ५६८/१८६८
- ९} लेफ्टि. गवर्नर नार्थ-वेस्ट प्रोविन्स (फाईल नं.१, राजपूताना एजेन्सी सी.सी. ब्रान्च, अजमेर द्वारा स्वीकृत मेमोरेण्डम, ७ मई, १८७०
- १०} जे.डी. लाटशू द्वारा कमीशनर अजमेर-मेरवाड़ा को १८/५/१८७२ को लिखा पत्र, क्रमांक १४४ राजपूताना एजेन्सी फाईल नं. १
- ११} ढोढियाल, बी.एन.; राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अजमेर, राजस्थान सरकार, १९६६ पृ. ४६५
- १२} सारड़ा, हरबिलास; अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डेस्क्रेप्टिव फाईन आर्ट प्रिन्टिंग प्रेस, अजमेर, १९४१, पृ. २६६-६७
- १३} द पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज, अजमेर मेन्यूअल, भाग-३, नियम ४१ (५), अजमेर रग्यूलेशन ऑफ पुलिस डिपार्टमेण्ट १९००, अजमेर, १९०१, पृ. २४
- चीफ कमीशनर सरक्यूलर नं. पी/१२८ दिनांक २४.०३.१९२१, फाईल नं. गगटण राजपूताना एजेन्सी सी.सी. ब्रांच अजमेर, आर.एस.ए.बी.

१४} सारड़ा, हरबिलास; पू.उ., पृ. २६६

१५} सेन्सस रिपोर्ट ऑफ अजमेर-मेरवाड़ा, तालिका १६५०-५१, पृ. ७०-७२

१६} सारड़ा, हरबिलास; पू.उ., पृ. २६८

१७} अजमेर-मेरवाड़ा एण्ड रेजीडेन्ट फार राजपूताना द सेक्रेट्री ऑफ राजपूताना, इन्सपेक्ट ऑफ जनरल ऑफ पुलिस का पत्र नं. प्.१४६४४ दिनांक ०४.०७.१६४४ फाईल नं. १६२४. ६२, राजपूताना एजेन्सी क्राइम ब्रांच, अजमेर आर.एस.ए.बी.

१८} अजमेर पुलिस मेन्यूअल, भाग-४, १६२१, अजमेर, 1922, पृ. 42-43

साम्यवादी विचारधारा के अंतर्द्वंद्व की परख : 'बीच में विनय':- स्वयं प्रकाश

कविता शर्मा

महारानी श्रीजया महाविद्यालय भरतपुर (राजस्थान)

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

शोध सारांश

आठवें दशक के सुप्रसिद्ध कहानीकार व उपन्यासकार स्वयं प्रकाश मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा लेकर हिन्दी साहित्य में आए हैं। इसलिए मशीन और मनुष्य के जटिल संबंधों की बात तो उन्हें करनी ही थी। वामपंथी दर्शन ने उन्हें राजनैतिक-सामाजिक दायित्वों के प्रति सचेत किया और साम्यवादी भाव की ओर प्रेरित किया। साम्यवाद कार्लमार्क्स और फेडरिक, एंगेल्स द्वारा प्रतिपादित तथा साम्यवादी घोषणापत्र में वर्णित समाजवाद की परम परिणति है। साम्यवाद सामाजिक-राजनीतिक दर्शन के अंतर्गत एक ऐसी विचारधारा के रूप में वर्णित है, जिसमें संरचनात्मक स्तर पर एक समतामूलक वर्गविहीन समाज की स्थापना की जाएगी। स्वयं प्रकाश जी का उपन्यास 'बीच में विनय' भी इसी भावना से ओतप्रोत है। जिस तरह कार्लमार्क्स ने शोषण से मुक्ति के लिए असंगठित वर्ग को संगठित करने पर जोर दिया उसी तरह स्वयं प्रकाश ने भी दुनिया भर के मेहनतकश लोगों से एकजुट होने का आह्वान किया है।

संकेताक्षर :- मैकेनिकल, वामपंथी, वर्गविहीन, असंगठित, संरचनात्मक, आह्वान।

स्वयं प्रकाश जी द्वारा वर्तमान दौर में लिखे गये उपन्यासों में 'बीच में विनय' एक महत्वपूर्ण व उल्लेखनीय उपन्यास है। यह उपन्यास उन्होंने सोवियत संघ में समाजवाद के विघटन के समय भारत के एक कस्बे में कम्युनिस्टों द्वारा किये जा रहे आचरणों और जिन कठिनाइयों से वे जूझ रहे थे, उन परिस्थितियों के अध्ययन तथा इस बहाने हिन्दी भाषाभाषी प्रदेशों में कम्युनिस्ट आंदोलन की विफलताओं की जाँच-पड़ताल करने की पृष्ठभूमि में लिखा है। उपन्यास के फ्लैप पर लिखा गया है कि यह "उपन्यास भारत के साम्यवादी आन्दोलन के पचास सालों की कारगुजारी पर एक विचलित कर देने वाली टिप्पणी है, एक उत्तेजक बहस और निर्भीक हस्तक्षेप है।"¹

'बीच में विनय' राजस्थान के एक ऐसे ही विकासोन्मुख कस्बे में अपने-अपने ढंग से साम्यवादी आदर्शों और प्रगतिशील जीवन मूल्यों के लिए जद्दोजहद कर रहे ईमानदार और

स्वप्नद्रष्टा पात्रों की गाथा है, जो एक शोषणविहीन समाज की स्थापना के लक्ष्य को सामने रखकर अपना सर्वस्व लुटा देने की बलिदानी भावनाओं से ओतप्रोत है।

साथ ही संदर्भ में, कम्युनिस्ट पार्टियों खासकर मार्क्सवादी पार्टी को उनके सारे गुण-दोषों के साथ आँकने का प्रयास है। मेहनतकश वर्ग की क्रान्ति को लक्ष्य करके कार्यरत बहुत सारे राजनीतिक दल भारत में हैं जिनके नाम के साथ कम्युनिस्ट, मार्क्सवादी, लेनिनवादी, समाजवादी, नक्सलवादी आदि कई शब्द जुड़े हुए हैं। इतनी सारी कम्युनिस्ट पार्टियों का लक्ष्य एक क्रांति है, फिर भी वे एक मंच पर बैठ नहीं पाती। यह क्यों है? चौंकाने वाली बात यह है कि एक कम्युनिस्ट पार्टी का सबसे बड़ा दुश्मन दूसरी कम्युनिस्ट पार्टी है, पूँजीवादी वर्ग नहीं, इतना ही नहीं भारत की कम्युनिस्ट पार्टियों में सबसे प्रबल मार्क्सवादी पार्टी विभिन्न मोर्चों पर संघर्ष करते हुए भी उन सभी मोर्चों को समन्वित नहीं कर पाती। खासकर ट्रेड यूनियन तथा मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के द्वारा वर्ग - संघर्ष को आगे बढ़ाने के प्रयत्न चल रहे हैं, उन्हें एकत्रित करने का प्रयास दिखाई नहीं देता। मेहनतकश लोगों को एकजुट होने का आह्वान देने वाले ही विभिन्न मोर्चों पर अपनी लड़ाईयाँ लड़ रहे हैं। इस संदर्भ में भारत की मार्क्सवादी पार्टी की अवनति के कारणों को ढूढने का प्रयास स्वयं प्रकाश जी 'बीच में विनय' में कर रहे हैं। इसमें कामरेड लक्ष्मण माधव और प्रोफेसर भुवनेश चतुर्वेदी जो क्रमशः ट्रेड यूनियन नेता व सैद्धान्तिक रूप से मार्क्सवादी हैं। उनके माध्यम से मार्क्सवादी पार्टी की भीतरी समस्याओं को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। लक्ष्मण, माधव, कांकरिया सेठ के जिनिंग मिल का मजदूर है। वह मजदूरों के साथ रहकर उनके लिए संघर्ष करने में विश्वास रखता है। नेता बनकर भी साधारण-सा मजदूर का जीवन बिताने वाला लक्ष्मण माधव कई बार मालिकों से पिटकर निरंतर संघर्ष करके कामरेड बन गया था। जनता के दुःख-दर्दों को मिटाने के लिए संघर्षरत कामरेड जनतंत्रीय अधिकारों से दूर रहना चाहता है। वह पार्टी और पीड़ित लोगों के लिए जी रहा है इसलिए कामरेड मजदूरों का प्रिय नेता है। कामरेड लक्ष्मण माधव की व्यवहार कुशलता व भुवनेश की सैद्धान्तिकता दोनों से प्रभावित युवक है, विनय मोहन श्रीवास्तव उर्फ 'विनय'। विनय साधारण परिवेश में जीने वाला एक टाईपिस्ट है। जिन्दगी के अभाव से समझौता करने वाला विनय एक युवा कवि भी है। विनय इन दोनों के बीच पड़ा हुआ है। दोनों में दूसरों को अपनी ओर खींचने के कुछ तत्व हैं। दोनों मार्क्सवाद एवं समाजवाद के लिये कटिबद्ध हैं, किन्तु दोनों के रास्ते अलग हैं। कामरेड ने मार्क्सवाद को किताब से नहीं, संघर्षमय जीवन से सीखा है, कटु जीवनानुभवों से उसने मार्क्सवाद का साक्षात्कार किया है। यह गर्व उसमें है। इसलिए पुस्तक के जरिए मार्क्सवाद को सीखने के प्रति कामरेड के मन में उपहास की भावना है। विनय के हाथों में मार्क्स की 'पूँजी' देखकर व्यंग्य के साथ कामरेड का कहना है - "अरे भाई फील्ड में आओ! काम करो! उससे सीखता है आदमी। किताबी बातों में क्या है?"² किन्तु

भुवनेश मार्क्स की 'पूँजी' को जनसाधारण के लिए रचित ग्रन्थ नहीं मानता है। उनके विचार में यह एक शाश्वत संदर्भ ग्रन्थ है जो तमाम पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों के जवाब में लिखा गया है, लेकिन मार्क्सवाद बेहूदों द्वारा स्थापित नहीं हो सकता। उसके लिए एक सुनियोजित रणनीति की जरूरत है। भुवनेश का मानना है कि सुनियोजित रणनीति की जरूरत है। भुवनेश का मानना है कि "मार्क्सवाद भी एक 'खाका' है। सारी दुनिया के लिए एक नई व्यवस्था का वैज्ञानिक स्वप्न है। वह सिर्फ राजनीति ही नहीं, दर्शन भी है, इतिहास भी है, विज्ञान भी है.....। हर चीज की एक पद्धति, एक योजना, एक सिलसिला एक, शैली एक प्रक्रिया है सिर्फ क्रांति बेचारी ऐसी है..... जो कभी भी कोई भी चार सिरफिरे अनपढ़ लोगों को इकट्ठा कर जोशीले नारे उछालकर लफ्फाजी में मुँह से थूक के छींटे उछालकर..... ... कर लेगा।

हूह। बेहूदा। बिल्कुल बेहूदा।"³ मार्क्स का उद्धरण देकर भुवनेश अपने कथन का समर्थन भी करता है कि "क्रांति कोई व्यक्ति या पार्टी नहीं करती, जनता करती है, पूरा देश करता है..... और उसको अंजाम तक पहुँचाने के लिए सर्वहारा की पार्टी बहुत जरूरी होती है और पार्टी कई मोर्चों पर एक साथ काम करती है।"⁴ स्वयं प्रकाश जी इस उपन्यास में इस तथ्य पर भी प्रकाश डालते हैं कि सर्वहारा वर्ग में राजनीतिक प्रशिक्षण द्वारा क्रांतिकारी चेतना भरने का दायित्व जिन कम्युनिस्टों पर है, वे आपस में लड़ रहे हैं। वे एक दूसरे का सबसे बड़ा दुश्मन मान रहे हैं। "कम्युनिस्ट कम्युनिस्टों को पूँजीवाद, सामंतवाद और साम्राज्यवाद से भी बड़ा दुश्मन मान रहे हैं।"⁵

इतना ही नहीं, सत्ता की भटकन में कम्युनिस्ट पार्टियाँ विरोधी दलों के पक्ष में चली गयी। पटना विश्वविद्यालय के एक सेवानिवृत्त और यशस्वी प्राध्यापक डॉ. आर. के सिन्हा कहते थे कि- "Consistency is the virtue of a ass" मैं कहना चाहता हूँ कि स्वयं प्रकाश के उपन्यास 'बीच में विनय' में मार्क्सवादी विचारधारा के अनेक अन्तर्विरोध हैं। यही कारण है कि इस उपन्यास पर अपेक्षित चर्चा नहीं हुई।"⁶

स्वयं प्रकाश जी सिर्फ कम्युनिस्ट दलों की खामियों को ही नहीं व्यक्त करना चाहते, बल्कि उसकी खुबियों पर भी प्रकाश डालते हैं। उनके कम्युनिस्ट लोग दूसरों से भिन्न दिखाई देते हैं। कामरेड का कहना है कि "कम्युनिस्ट को हमेशा गलतियाँ सुधारने के लिए अपने को खुला रखना चाहिए, जो कि मैं समझता हूँ कि मैं भी हूँ। बल्कि शायद कम्युनिस्ट ही है, जहाँ आप महासचिव को भी आत्मालोचना के लिए कह सकते हैं, और वह करता भी है। सिर्फ कम्युनिस्ट है जिन्होंने खुले तौर पर अपनी ऐतिहासिक भूलें स्वीकार की है, खुले दिल से, बगैर लीपापोती के।"⁷

अपनी भूलें सुधारने की जो इच्छा-शक्ति कम्युनिस्टों में हैं, वह उस अन्य राजनीतिक दलां से अलग कर देती है।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

1. 'बीच में विनय' उपन्यास फ्लैप पर उद्धरित पंक्तियाँ स्वयं प्रकाश
 2. 'बीच में विनय' उपन्यास-स्वयं प्रकाश पृ.सं. 26 प्रकाशन, राजकमल प्रकाश- नयी दिल्ली, पटना, पहला संस्करण-2002
 3. 'बीच में विनय' स्वयं प्रकाश पृ.सं. 67-69 प्रकाशन, राजकमल प्रकाश- नयी दिल्ली, पटना, पहला संस्करण-2002
 4. 'बीच में विनय' स्वयं प्रकाश पृ.सं. 68 प्रकाशन, राजकमल प्रकाश- नयी दिल्ली, पटना, पहला संस्करण-2002
 5. 'बीच में विनय' स्वयं प्रकाश पृ.सं. 69 प्रकाशन, राजकमल प्रकाश- नयी दिल्ली, पटना, पहला संस्करण-2002
 - 6- 'बनारस' पृ. 283 वर्ष 2008 सम्पादक - डॉ. पल्लव, प्रकाशन- सम्भावना संस्थान चित्तौड़गढ़
-

भारत में न्यायिक व्यवस्था में सुधार : कॉलेजियम बनाम राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग

शम्भुलाल सालवी

सीनियर रिसर्च फ़ैलो

राजनीति विज्ञान विभाग

मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर 313001

संसदीय व्यवस्था में न्यायिक नियुक्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संविधान संशोधन, कानूनों का निर्माण या उनको खत्म करने का अधिकार भारतीय संविधान में संसद को दिया गया है जबकि सर्वोच्च न्यायालय उनकी वैधता का परीक्षण कर सकता है। हाल ही में कॉलेजियम बनाम राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को लेकर सरकार और न्यायपालिका के बीच का द्वन्द्व सामने आया है जो संसद बनाम न्यायपालिका की स्थिति की ओर ले जाता है और दोनों के अपने-अपने तर्क है।

I

भारतीय शासन व्यवस्था का संस्थात्मक तंत्र जनतांत्रिक है, जिसमें संघीय व्यवस्था को आत्मसात् किया गया है। संघ और संघ की इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन इस व्यवस्था का मूल तत्व है, जिसका उल्लेख एक लिखित संविधान में किया गया है जो देश की सर्वोच्च विधि है। इस सर्वोच्च विधि का संरक्षण और सरकारों की शक्तियों के विभाजन को बनाए रखने का दायित्व संविधान द्वारा उच्चतम न्यायालय को सौंपा गया है।

संविधान द्वारा प्रदत्त इन दायित्वों के निर्वहन के लिए उच्चतम न्यायालय सरकारों के कार्यों की समीक्षा करता है तथा यह सुनिश्चित करता है कि विभिन्न सरकारें अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुये कार्य करें। संघ और इकाइयों की सरकारों के बीच विवादों का निपटारा और इस सम्बन्ध में संविधान के उपबंधों की सही व्याख्या उच्चतम न्यायालय द्वारा ही की जाती है। यह तभी सम्भव है जब न्यायिक स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता सुनिश्चित हो।

प्रस्तुत आलेख में जनतांत्रिक व्यवस्था में न्यायपालिका के महत्व को रेखांकित करते हुए भारतीय न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों का उल्लेख करते हुए इस संबंध में स्थापित परंपराओं और न्यायिक निर्णयों से अस्तित्व में आयी वर्तमान कॉलेजियम व्यवस्था तथा इस व्यवस्था में पारदर्शिता के लिए गठित राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग का विश्लेषण किया गया है तथा इस बात को दृष्टिगत किया गया है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के आधार, न्यायिक स्वतंत्रता को किस हद तक प्रभावित करते हैं और इसमें कार्यपालिका की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण हो सकती है।

II

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 124 (2) में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति और अनुच्छेद 217 (1) में उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 124 (2) में उल्लेखित है कि “उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात्, जिनसे राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए परामर्श करना आवश्यक समझे, राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीशों को नियुक्त करेगा।” “परन्तु मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से सदैव परामर्श किया जाएगा।”

इस प्रकार संविधान द्वारा राष्ट्रपति को निर्धारित योग्यताएं रखने वाले किसी भी व्यक्ति को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त है। लेकिन अन्य न्यायाधीशों के मामले में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश से परामर्श लेने के लिए बाध्य है। साथ ही राष्ट्रपति की यह शक्ति अनुच्छेद 74 (1) के अधीन है, जिसके अनुसार राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रीपरिषद होगी और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।

अनुच्छेद 217 (1) में उल्लेखित है कि “भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से, उस राज्य के राज्यपाल से और मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात्, राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को नियुक्त करेगा।”

भारत में संविधान लागू होने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा ही उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति संविधान के इन प्रावधानों के अनुसार की जाती रही है जिसमें न्यायाधीशों के परामर्श को मानने या न मानने का अधिकार राष्ट्रपति में निहित था, लेकिन आगे चलकर इस व्यवस्था की कमजोरियां सामने आने लगी। इंदिरा गांधी के शासनकाल में न्यायिक नियुक्तियों में सरकार का दखल बढ़ गया था। इस दौरान वर्ष 1973 में श्री अजीतनाथ रे को वरिष्ठतम न्यायाधीश न होते हुए भी भारत का मुख्य न्यायाधीश बना दिया गया। इसी प्रकार वर्ष 1977 में श्री हंसराज खन्ना को वरिष्ठतम न्यायाधीश होने के बावजूद मुख्य न्यायाधीश नहीं बनाया गया। इस प्रकार न्यायापालिका की स्वतंत्रता खतरे में पड़ती जा रही थी।

श्रीमती इंदिरा गांधी के कार्यकाल में ही वर्ष 1987 में ‘एस.पी.गुप्ता’ मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने अपने 4:3 के बहुमत से निर्णय दिया कि राष्ट्रपति परामर्श मानने के लिए बाध्य नहीं है। जबकि इसी मामले में न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती ने ऑस्ट्रेलिया की तरह “राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग” का गठन करने की सिफारिशें की थी।

III

न्यायाधीशों की नियुक्ति संबंधी सुधारों को आगे बढ़ाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने वर्ष 1993 और 1998 के सेकेंड और थर्ड जजेज फैसलों के आधार पर कॉलेजियम प्रणाली की शुरुआत की। इन फैसलों में सर्वोच्च न्यायालय ने यह तय किया कि अनुच्छेद 124 और अनुच्छेद 217 के तहत

न्यायपालिका द्वारा दिए गए परामर्श को मानना राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी है। यह परामर्श कॉलेजियम द्वारा दिया जाएगा और इसमें मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त चार अन्य वरिष्ठतम न्यायाधीश भी शामिल होंगे जो जजों की नियुक्ति, प्रोन्नति तथा स्थानांतरण के लिए उम्मीदवारों की सिफारिश करते हैं। इसमें पांचों सदस्यों की राय का महत्व बराबर होगा और कोई भी दो सदस्य किसी भी उम्मीदवार के नाम को वीटो कर सकेंगे। इस पूरी प्रक्रिया में सरकार की कोई भूमिका नहीं होती है। तब से ही यह परंपरा चली आ रही है हालांकि संविधान में न्यायिक नियुक्ति के लिए कॉलेजियम का जिक्र कहीं भी नहीं है।

धीरे धीरे कॉलेजियम व्यवस्था में भी कमियां उजागर होने लगीं। चूंकि इस व्यवस्था में पारदर्शिता, सदस्यों में संतुलन और जवाबदेही का अभाव है और सर्वोच्च न्यायालय को कानून बनाने का अधिकार ही नहीं है, जबकि कॉलेजियम व्यवस्था द्वारा उसने ऐसा कर दिखाया है। यदि संसद अपनी संप्रभुता के लिए सजग होती है तो उसका न्यायपालिका के साथ टकराव सुनिश्चित है। वर्तमान में कॉलेजियम व्यवस्था में बदलाव के अनेक तर्क दिए जा रहे हैं:

- स्वयं न्यायाधीश ही न्यायाधीशों का चयन करे यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त के खिलाफ है क्योंकि एक परिपक्व लोकतंत्र में सरकार के तीनों अंगों (विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका) के बीच संतुलन होना आवश्यक है।
- विश्व के अन्य लोकतांत्रिक देशों (अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, द. अफ्रीका आदि) में न्यायिक नियुक्तियों में कार्यपालिका या विधायिका की काफी प्रभावशाली भूमिका होती है।
- इस व्यवस्था के कारण भाई भतीजावाद और भ्रष्टाचार को ही बढ़ावा मिला है।
- इस व्यवस्था में समाज के पिछड़े वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल सकता है। इनमें महिलाओं, पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जाति और जनजातियों के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व न्यून रहा है। इस व्यवस्था में पारदर्शिता के साथ साथ इसकी प्रक्रिया भी गोपनीय है और उचित निगरानी तंत्र का अभाव है जिसके कारण न्यायिक नियुक्तियों में लोकतांत्रिक वैधता का अभाव है। चूंकि पिछले दो दशकों के दौरान समाज में व्यापक परिवर्तन आया है और सरकार के प्रत्येक स्तर पर पारदर्शिता की मांग उठी है। इसमें न्यायाधीशों की प्रतिष्ठा पर भी अंगुली उठी है जिसमें कम से कम पैतीस छोटे बड़े मामलों में न्यायाधीशों की भूमिका संदेह के घेरे में आयी है अतः कॉलेजियम व्यवस्था पर सवाल उठना लाजिमी है क्योंकि यह अपने उद्देश्यों को पूरा करने में विफल रही है।

IV

कॉलेजियम व्यवस्था की खामियों ने एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया जो अधिक पारदर्शी, निष्पक्ष और जवाबदेह हो और इसी आवश्यकता ने न्यायिक नियुक्ति आयोग की दिशा में कदम बढ़ाने के लिए प्रेरित किया और इसी के आधार पर सरकार ने एक राष्ट्रीय

न्यायिक नियुक्ति आयोग के गठन का प्रावधान किया जिसमें वरिष्ठ न्यायाधीशों के अलावा कार्यपालिका और विधायिका की भी नुमाइंदगी न्यायिक नियुक्तियों संबंधी प्रक्रिया में हो सकेगी।

इस आयोग के गठन से संबंधित 121 वां संविधान संशोधन विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा अगस्त 2014 में पास किया गया जिसे 31 अगस्त 2014 को राष्ट्रपति की मंजूरी मिली और यह 99 वें संविधान संशोधन विधेयक के रूप में अस्तित्व में आया। इस संविधान संशोधन के माध्यम से संसद ने संविधान के अनुच्छेद 124 में संशोधन करने के साथ-साथ अनुच्छेद 124 (क), अनुच्छेद 124 (ख) तथा अनुच्छेद 124 (ग) के रूप में तीन नए अनुच्छेदों को जोड़ा। इसके साथ ही संविधान के अनुच्छेद 124 और 217 की भाषा में संशोधन करने जोड़ा गया कि “राष्ट्रपति न्यायिक नियुक्ति आयोग की सिफारिशों के अनुसार न्यायाधीशों की नियुक्ति एवं स्थानांतरण करेगा”। इस संशोधन के साथ ही ‘राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम’ नाम से एक और अधिनियम पारित किया गया जिसमें आयोग के गठन संबंधी प्रक्रिया के प्रावधान किए गए। 99 वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुसार राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग में कुल 6 सदस्य होंगे और इसके अध्यक्ष भारत के मुख्य न्यायाधीश होंगे। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठ न्यायाधीश भी सदस्य होंगे। चौथे सदस्य भारत के कानून मंत्री होंगे। शेष दो सदस्य भारत के प्रख्यात व्यक्ति होंगे जिनका चयन एक तीन सदस्यीय समिति द्वारा किया जाएगा जिसमें भारत के मुख्य न्यायाधीश, प्रधानमंत्री और लोकसभा में विपक्ष के नेता शामिल होंगे। इन दो प्रख्यात व्यक्तियों में से एक का चयन अनु.जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक या महिलाओं में से किया जायेगा। एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रावधान यह है कि यदि इन 6 सदस्यों में से कोई दो सदस्य किसी व्यक्ति के नाम को वीटो कर देंगे तो उसे न्यायाधीश नहीं बनाया जायेगा।

परंतु इस अधिनियम में भी खामियाँ हैं जैसे आयोग में प्रतिष्ठित व्यक्ति कौन होंगे, इसे परिभाषित नहीं किया गया है। वर्तमान में गठित राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के गठन का प्रयास काफी समय से किया जा रहा था। सर्वप्रथम वर्ष 1987 में गठित विधि आयोग ने इस प्रकार के आयोग के गठन की सिफारिशें की थी। विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच व्यापक सहमति के चलते वर्ष 1990 में तत्कालीन कानूनमंत्री दिनेश गोस्वामी और वर्ष 1999 में कानून मंत्री अरुण जेटली ने इस संबंध में विधेयक पेश किए थे परंतु वे पास नहीं हो सके। हाल ही में केन्द्र सरकार अन्य दलों के सहयोग से यह विधेयक पारित कराने में सफल रही। इस विधेयक को पारित करने के लिए संसद के दोनों सदनों के विशेष बहुमत के अलावा कम से कम आधे राज्यों के समर्थन की आवश्यकता थी।

V

अगर हम राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग और कॉलेजियम व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण करें तो पाते हैं कि आयोग में 6 सदस्यों में से 3 सदस्य न्यायपालिका से हैं जबकि सरकार का केवल एक प्रतिनिधि (कानून मंत्री) इसमें शामिल है। जबकि अन्य दो सदस्यों के चयन में मुख्य न्यायाधीश

तथा विपक्ष के नेता की प्रभावशाली भूमिका है अतः सरकार चाहकर भी अपने समर्थकों को आयोग में नहीं भेज सकती।

इसी प्रकार न्यायपालिका के तीन सदस्य आयोग में रहने से सरकार एक भी न्यायाधीश को अनुचित तरीके से नियुक्त नहीं कर सकेगी क्योंकि किसी नाम को वीटो करने के लिए 2 सदस्यों की आवश्यकता ही है। अतः निष्कर्ष रूप में राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के गठन से न्यायपालिका की स्वतंत्रता से कोई खतरा उत्पन्न होने वाला नहीं है और वह स्वतंत्रतापूर्वक एवं निर्भीकता से अपना कार्य सम्पन्न कर सकती है।

यदि हम विभिन्न देशों में न्यायिक नियुक्ति प्रक्रिया पर नजर डालें तो पाते हैं कि इसमें कार्यपालिका और विधायिका महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अमेरिका में कार्यपालिका अर्थात् राष्ट्रपति को सीनेट की सलाह और सहमति से जजों की नियुक्ति का अधिकार है। इसमें सीनेट की न्यायिक समिति राष्ट्रपति द्वारा नामित नामों पर विचार करके उसे सीनेट को भेजती है।

जबकि ब्रिटेन में 5 सदस्यीय न्यायिक नियुक्ति आयोग द्वारा जजों की नियुक्ति की जाती है जिसमें सुप्रीम कोर्ट के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष और इंग्लैण्ड, स्कॉटलैंड और उत्तरी आयरलैंड से एक-एक सदस्य होता है।

द.अफ्रीका में द.अफ्रीकी न्यायिक सेवा आयोग उम्मीदवारों की एक सूची राष्ट्रपति को भेजता है और उसमें से राष्ट्रपति सुप्रीम कोर्ट के जजों को नियुक्ति करते हैं।

और जर्मनी में चुनावी प्रक्रिया द्वारा जजों की नियुक्ति की जाती है। इसमें कार्यपालिका और विधायिका दोनों ही मिलकर जजों का चुनाव करते हैं।

इस प्रकार विश्व के किसी भी देश में सेवारत जज ही जजों का चयन एवं नियुक्ति नहीं करते हैं परंतु भारत में कॉलेजियम व्यवस्था द्वारा ऐसा किया जा रहा है।

VI

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने 16 अक्टूबर 2015 को अपने महत्वपूर्ण निर्णय में राष्ट्रीय नियुक्ति आयोग के गठन का प्रावधान करने वाले 99 वें संविधान संशोधन अधिनियम को असंवैधानिक तथा शून्य घोषित करने हुए कहा कि आयोग न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए खतरा है। चूंकि न्यायिक स्वतंत्रता संविधान का बुनियादी ढांचा है जिसमें सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार आयोग के गठन से मुख्य न्यायाधीश और राष्ट्रपति की भूमिका कम हो रही थी क्योंकि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की सलाह पर कार्य नहीं करते बल्कि स्वतंत्र रूप से निर्णय लेते हैं। राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग न्यायपालिका की स्वायत्ता में ही नहीं, शक्तियों के विभाजन में भी दखल देती है।

हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि कॉलेजियम व्यवस्था में कुछ खामियां हैं और इसमें सुधार किया जाना चाहिए। इसके लिए सर्वोच्च न्यायालय ने सुझाव मांगे हैं ; न्यायिक इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि नियुक्ति की कोई भी प्रणाली पूरी तरह से आदर्श नहीं होती है। उसके अपने गुण और दोष होते हैं जिसमें हमेशा सुधार की गुंजाइश बनी रहती है परंतु जजों की नियुक्ति की प्रक्रिया में देश में मुख्य न्यायाधीशों को प्रभावी भूमिका दी जा सकती है। लेकिन इसमें सीमा और संतुलन भी होना चाहिए और कार्यपालिका की भी राय ली जानी चाहिए।

सुझाव के रूप में हम कह सकते हैं कि एक न्यायिक नियुक्ति आयोग हो जो कॉलेजियम द्वारा सुझाए गए नामों पर विचार करे और उनकी पृष्ठभूमि की व्यापक छानबीन करे तथा सर्वाधिक उपयुक्त उम्मीदवारों की नियुक्ति संबंधी सिफारिशें राष्ट्रपति को भेजे। आयोग का दायरा व्यापक हो जिसमें सेवारत व सेवानिवृत्त न्यायविद, कानून के विशेषज्ञ और कानून मंत्री शामिल हो।

संदर्भ :

पाण्डेय, जयनारायण (2011). *भारत का संविधान*. इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी.

भारत का संविधान (2011). नई दिल्ली : विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार.

Kashyap, Subhash C. (2010) *Our Political System*. Delhi : National Book trust India.

कुमार, अवधेश (2015, अक्टूबर 21). संसद की संप्रभुता का सवाल. *जनसत्ता*, पेज 6.

दीक्षित, हरबंश (2015, दिसम्बर 12). जजों की नियुक्ति: अपने-अपने तर्क. *जनसत्ता (रविवारी)*, पेज 1.

चिदंबरम, पी. (2015, नवम्बर 1). न्यायिक नियुक्ति आयोग की गुत्थी. *जनसत्ता*, पेज 6.

चौहान, शैलेन्द्र (2015, नवम्बर 9). न्याय का नखलिस्तान. *जनसत्ता*, पेज 6.

Chandrachud, Chintan. (2015, Oct.19). Collaboration, not confrontation. *The Hindu*, p.11.

Hegde, Sanjay. (2015, Oct.19). Judging the Judge-maker. *The Hindu*, p.11.

Lodha, R.M.. (2015, Oct.20). Constitution's will upheld. *The Hindu*, p.10.

Menon, N.R. Madhava. (2015, Nov.20). A way to judicial independence. *The Hindu*, p.10.

Parthasarathy, Suhrith. (2015, Oct.30). An anti-constitutional judgement. *The Hindu*, p. 11.

Rajgopal, Krishnadas. (2015, Oct. 17). SC Bench Strikes down NJAC Act as 'Unconstitutional and void. *The Hindu*, P. 1.

_____. (2015, Oct. 17). SC asks government to help improve Collegium system. *The Hindu*, P. 9.

Sengupta, Arghya. (2015, Oct 19). Perils of the Messiah complex, *The Hindu*, p. 11.

Shah, Ajit Prakash (2015, Oct. 27). Re-envisioning the Collegium. *The Hindu*, p. 11.

Venkataramanan, K. (2015, Oct. 19). The Citizana and the Politics of the Verdict. *The Hindu*, P. 11.

जनजातियों के मानवाधिकार एवं समस्याएं

हेमन्त कुमार

व्याख्याता विधि

राजकीय विधि महाविद्यालय, अलवर

भारत में आजादी के कई दशकों के बाद भी जनजातियां अपने समाज में रीति-रिवाज एवं कुरीतियों के कारण वर्तमान विकास की अवधारणा से अभी भी कोसों दूर हैं। आज भी भारत में जनजातियों के हितों में बनाये गये कानून के बावजूद भी यह वर्ग अपने विरुद्ध होने वाली हिंसा व अन्य समस्याओं से त्रस्त है। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में लोकतांत्रिक सरकार के प्रयासों द्वारा अनुसूचित जनजातियों में सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं। इन सबके पीछे विधिक प्रयासों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

जनजातीय व्यक्ति : अर्थ

प्राचीनकाल में जनजातियों को आदिवासी नाम से जाना जाता था। सामान्यतया आदिवासी शब्द का प्रयोग "किसी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिया किया जाता है जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र से ज्ञात इतिहास से पुराना संबंध हो।" वर्तमान में जनजाति निर्धारण के मानक निर्धारित किये गये हैं। चंदा समिति 1960 के अनुसार किसी भी जाति को अनुसूचित जनजाति में शामिल करने के लिए पांच मानक लक्षण निर्धारित किये गये हैं जो निम्न हैं – भौगोलिक एकाकीपन, विशिष्ट संस्कृति, संकुचित स्वभाव, पिछड़ापन आदि जाति के लक्षण। भारत में जनजातियों को आदिवासी, वनवासी, गिरीजन आदि नामों से भी जाना जाता है। भारत के संविधान में आदिवासियों के लिए जनजाति के नाम का उल्लेख किया गया है। जनजातियों को भारत के मूल निवासी के रूप में जाना जाता है। भारत में जनजातियों को अनुसूचित जनजाति के नाम से जाना जाता है। 'अनुसूचित जनजाति' शब्द की परिभाषा संविधान के अनुच्छेद 366(25) अनुसूचित जनजातियां ऐसी जनजातियां हैं या जनजाति समुदायों के भाग या उनमें एक समूह अभिप्रेत है जिन्हें संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुच्छेद 342 के अधीन अनुसूचित जनजाति समझा जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जनजातियों को 'इंडीजिनियस पीपुल्स' नाम दिया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत 700 से अधिक जनजातियों को अधिसूचित किया गया है।

अनुसूचित जनजाति : जनसंख्या परिदृश्य

विश्व में आदिवासी या जनजाति समुदाय की संख्या की दृष्टि से अफ्रीका के बाद भारत का स्थान आता है। भारत की जनजाति की संख्या, जो 1981 की जनगणना के अनुसार 5.38 करोड़ थी, वह 1991 में बढ़कर 6.77 करोड़, 2001 में 8.43 करोड़ हो गई। 2011 की जनगणना के अनुसार जनजातियों की संख्या 10.42 करोड़ है जो भारत की कुल जनसंख्या का 8.60 प्रतिशत है। आदिवासी जनसंख्या का प्रतिशत प्रत्येक राज्य में भिन्न है। उदाहरणार्थ लक्षदीप, मिजोरम, मेघालय, नागालैण्ड

की जनसंख्या में इनका प्रतिशत 80 से अधिक है। असम, मणिपुर, सिक्किम, त्रिपुरा, मध्यप्रदेश एवं ओडिशा में इनका प्रतिशत 20 से 30 के मध्य है। गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र में इनका जनसंख्या प्रतिशत 10 के लगभग है। 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 92.38 लाख जिनमें से पुरुषों की संख्या 47.42 लाख तथा महिलाओं की संख्या 44.95 लाख है। राजस्थान में सर्वाधिक अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या बांसवाड़ा में तथा सबसे कम बीकानेर में है। राजस्थान की प्रमुख जनजातियां भील, मीणा, सहरिया, गरासिया, डामोर, कोकना, कोलीडोर, पटेलिया आदि हैं।

जनजातियां एवं मानवाधिकार :-

सामान्यतः मानवाधिकार का अर्थ मानवीय मूल्यों की सुरक्षा से है। किसी व्यक्ति के निजी विकास हेतु संपूर्ण संसाधनों का उपयोग अधिकार के रूप में किया जाना ही मानवाधिकार है। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 2(घ) के अनुसार मानवाधिकार ऐसे संवैधानिक प्रत्याभूत हैं जो जीवन से संबंधित स्वतंत्रता और व्यक्ति की गरिमा को समाहित करते हैं तथा इनको अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में स्थान प्राप्त है। भारत में मानवाधिकार को न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय बनाया गया है।

जनजातियों के संवैधानिक अधिकार :-

स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान सभा ने ए.वी. ठक्कर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसकी सिफारिशों के बाद जनजाति क्षेत्रों का विकास समस्त भारतीयों के विकास का अभिन्न अंग बन गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद धर्म-निरपेक्ष एवं सामंतवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से संविधान का निर्माण किया गया है। अनुसूचित जनजाति के उत्थान के लिए भारतीय संविधान में विशेष प्रावधान किये गये हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 341 और 342 के प्रावधानों के तहत अनुसूचित जनजाति का निर्धारण किया जाता है। संविधान निर्मात्री सभा ने अपने उद्देश्यों को व्यक्त करते हुए कहा कि कमजोर एवं पिछड़े वर्गों को विकास के विशेष अवसर प्रदान किये जाएं ताकि ये वर्ग देश की मुख्यधारा में स्वयं को समाहित कर सकें। संवैधानिक प्रावधान आदिवासी समाजों को अन्य समाजों की अपेक्षा विशेष सुरक्षा प्रदान करते हैं। ये निम्नलिखित हैं –

—अनुच्छेद 15 के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव वर्जित है।

—अनुच्छेद 16 (4) के अनुसार राज्य पिछड़े एवं कमजोर तबकों के लोगों के लिए नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था लागू कर सकता है।

—अनुच्छेद 17 के अनुसार अस्पृश्यता को अमानवीय अपराध घोषित किया गया है।

—अनुच्छेद 23 के अनुसार द्वाारा बेगार प्रथा तथा बालश्रम को प्रतिबंधित किया गया है।

—अनुच्छेद 29 के अनुसार आदिवासी समुदाय को अपनी भाषा बोली तथा संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करता है।

—अनुच्छेद 46 के अनुसार अनुसूचित जाति व जनजातियों की शैक्षणिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा की जाये और इन्हें सभा प्रकार के शोषण तथा सामाजिक अन्याय से बचाया जाये।

—अनुच्छेद 164 के अनुसार अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण के सभी विभागों और पृथक् सलाहकार परिषदों की व्यवस्था की गई है।

—अनुच्छेद 330, 332 व 334 के द्वारा संसद एवं राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किये गये हैं।

—अनुच्छेद 338 में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु राष्ट्रपति द्वारा आयुक्त की नियुक्ति का प्रावधान है जिसका दायित्व संविधान द्वारा अनुसूचित जनजाति को प्रदत्त सुरक्षाओं का मूल्यांकन करना है।

—अनुच्छेद 339 के अनुसार संघ सरकार को अधिसूचित क्षेत्रों में निवास करने वाले आदिवासियों के प्रशासन का अधिकार प्रदान करता है।

—अनुच्छेद 340 जनजातियों को सरकारी शिक्षण संस्थानों में नामांकन तथा अध्ययन के लिए आरक्षण उपलब्ध कराता है।

—अनुच्छेद 342 के द्वारा राष्ट्रपति जनजातियों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्रदान करता है।

विकास एवं जनजातियों की समस्याएं —

केन्द्र व राज्य सरकार की नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत देशी व विदेशी पूंजीगत निवेश को विकास परियोजनाओं को आमंत्रित कर रही है। विभिन्न परियोजनाओं जैसे खनिज दोहन, स्टील प्लांट, पॉवर प्लांट व रिफाइनरिज के विकास हेतु प्राकृतिक क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों का निरन्तर दोहन तीव्र गति से हो रहा है। इन विकास परियोजनाओं के कारण आदिवासियों की वन आधारित अर्थव्यवस्था प्रभावित हो रही हैं।

जनजाति क्षेत्रों में खनन :— भारत में 4175 खानों में से 3500 खाने जनजातिय क्षेत्रों में स्थित हैं। खानों में होने वाले अवैध खनन के कारण अनेक आदिवासी लोग मारे जाते हैं। राजस्थान के जोधपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, करौली, धौलपुर, अलवर, किशनगढ़ आदि क्षेत्रों में सिलीकोसिस से पीड़ित लोग अनुसूचित जनजाति के हैं।

भूमि अधिग्रहण व जनजातिय विस्थापन :— वर्तमान में विकास संबंधी परियोजनाओं के नाम पर सरकार द्वारा आदिवासियों की भूमि का अधिग्रहण किया गया है। यही कारण है कि देश में विकास परियोजनाओं के प्रभावीकरण में विशिष्टतया आदिवासी बहुल क्षेत्रों में सरकारों को उनके रोष तथा आंदोलनों का सामना करना पड़ता है। सन् 1990 के बाद से ही अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के प्रस्तावों एवं परियोजनाओं तथा केन्द्र व राज्य सरकारों के अति उत्साहित पूंजी निवेश आधारित विकास प्रारूप को प्रभावी बनाने हेतु आर्थिक उदारीकरण नीति के कारण लाखों आदिवासी विस्थापन से प्रभावित तथा पलायन को विवश हुए हैं। विकास को इन नीतियों के कारण आदिवासियों को अपना प्राकृतिक परिवेश, परम्परागत ज्ञान, संस्कृति से वंचित होना पड़ा है।

आदिवासियों का विस्थापन : विधि के सन्दर्भ में

विधिक दृष्टि से मानवाधिकार की महत्ता तथा परियोजना से हुए विस्थापन के संबंध को उच्चतम न्यायालय के एक केस नर्मदा बचाओ आंदोलन बनाम भारत संघ एवं अन्य में दर्शाया गया है। उच्चतम न्यायालय के अनुसार आदिवासियों को उनके इच्छा के विरुद्ध विस्थापित करना, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के साथ-साथ आई.एल.ओ. कॉन्वेंशन 107 का उल्लंघन भी है। विधि शासित राज्य होने के कारण केन्द्र व राज्य सरकारों का विधिक दायित्व है कि वे आदिवासी लोगों को सामाजिक न्याय दिलाने हेतु राष्ट्रीय विधि व अन्तर्राष्ट्रीय समयको का प्रभावी क्रियान्वयन उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने हेतु करें।

समावेशी एवं मानवाधिकार संगत विकास :-

किसी भी राज्य को यह अधिकार है कि वह प्राकृतिक संसाधनों का दोहन विकास परियोजनाओं के लिए करें, लेकिन विकास 'समावेशी' तथा 'मानवाधिकार संगत' होना चाहिए। दोनों का विकास करने हेतु सतत विकास परियोजना बनाने व प्रबंधन करने के साथ-साथ आदिवासियों के मानवाधिकारों के संरक्षण की आवश्यकता है। विकास आधारित परियोजनाओं के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक है कि पारिस्थितिकी तंत्र को सुरक्षित बनाये रखने में आदिवासियों की अहम भूमिका को देखते हुए इनके अधिकारों को संरक्षित किया जायें।

जनजाति अधिकार संरक्षण एवं भारतीय सर्वोच्च न्यायालय :-

सर्वोच्च न्यायालय ने आदिवासियों के धार्मिक, सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण के पक्ष में निर्णय करने का अधिकार उनके समुदाय को ही दे दिया है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने आदिवासी के दैनिक जीवन व मानवाधिकारों में हस्तक्षेप को गंभीरता से लेते हुए उनके संरक्षण में प्रशंसनीय योगदान दिया है। जनजातियों के मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु न्यायालय द्वारा समय-समय पर केन्द्र व राज्य सरकारों को दिशा-निर्देश भी जारी किये गये हैं।

भारत में जनजातियों के अधिकारों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एवं राष्ट्रीय महिला आयोग का प्रावधान संवैधानिक निकाय के रूप में किया गया है।

राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग — संविधान ने 89वें संशोधन अधिनियम, 2003 के द्वारा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग का सृजन संविधान में अनुच्छेद 338(क) जोड़कर किया गया है इस आयोग का मुख्य दायित्व जनजातियों के हितों की रक्षा करना है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग :- एक व्यक्ति के जीवन से संबंधित अधिकारों, समानता, व्यक्तिगत गरिमा आदि की प्रत्याभूति संविधान में मानवाधिकार के रूप में दी गई है। इनकी सुरक्षा करना राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का प्रमुख उद्देश्य है। इसकी स्थापना 12 अक्टूबर 1993 को मानवाधिकारों संरक्षित करने हेतु की गई। मानवाधिकार आयोग द्वारा समय-समय पर कार्यपालाएं आयोजित करके जनजातियों को उनके अधिकारों से अवगत कराया जाता है। आयोग की विधि शाखा से प्राप्त

जानकारी के अनुसार पिछले पांच वर्षों (2008-09 से 2013-14) में अनुसूचित जनजाति समुदाय के 4289 सदस्यों द्वारा मानव अधिकारों के हनन की शिकायत दर्ज करवाई गई। मानव अधिकारों की शिकायतें सही पाये जाने के पश्चात् आयोग पीडित व्यक्तियों के लिए मुआवजे की सिफारिश करता है। समाज के इस आदिवासी वर्ग के मानवाधिकारों के संरक्षण प्रभावी बनाने हेतु आयोग को विशेष प्रयास करने होंगे।

निष्कर्ष :- भारतीय संविधान द्वारा प्राविधानित अधिकारों को दिये जाने के पश्चात् भी वर्तमान समय में अनुसूचित जनजाति का समुचित एवं संविधान सम्मत विकास नहीं हो पाया है। भारतीय जनजातियों को विकास की मुख्य धारा में शामिल करने हेतु अनुसूचित जनजाति एवं परम्परागत वन भ्रमणक अधिकार अधिनियम, 2006 पारित करके जनजातियों के वन अधिकारों को मान्यता प्रदान की है। साथ ही केन्द्र सरकार की आदिवासियों के विकास व कल्याण के लिए प्रारूपिक नीति, 2006 भी इसमें सहयोग प्रदान करेगी। इन वनाधिकारों के जनजातियों के लिए एक विधिक जीवनदान के रूप में उपलब्ध होने के बावजूद इसका पूर्णतया क्रियान्वयन सुनिश्चित नहीं हो पाया है। इसलि ए आवश्यक है कि इस अधिनियम के प्रभावी रूप से क्रियान्वयन द्वारा जनजाति समुदाय को पूर्ण संरक्षण व भयविहीन प्राकृतिक परिवेश तथा भविष्य में उनके समग्र विकास को सुनिश्चित किया जा सके।

संदर्भ :-

1. अक्षेन्द्र नाथ सारस्वत – सामाजिक न्याय मानवाधिकार और पुलिस, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. बी.डी. चौधरी(1982), ' ट्राइबल आइडेनटिटी' रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
3. उदयसिंह राजपूत (2010), आदिवासी विकास एवं गैर सरकारी संगठन, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. 1994 क रिट याचिका (सिविल) सं. 319, फिलिप कलेट " द इंडियन सुप्रीम कोर्ट डिजीजन ऑन सरदार सरोवर इन इंटरनेशनल पर्सपेक्टिव", द इंटरनेशनल एण्ड कपेरिटिव लॉ क्वार्टरली, अंक 50 सं. 4 अक्टूबर 2001
5. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, स्वतंत्र देशों में सीमांत एवं अन्य आदिवासी एवं उप-आदिवासी जनसंख्या के संरक्षण एवं एकता से संबंधित अभिसमय।
6. जनजातियों का विकास एवं समस्याएं, पेज सं. 58, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग नई दिल्ली।

चाकसू तहसील में परती भूमि की समस्या एवं प्रबन्धन

डॉ. राजेश शर्मा (भूगोल विभाग)

स.ध. राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

शोध सार-

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात जनसंख्या में तीव्र वृद्धि एवं संसाधनों के अनियोजित दोहन के फलस्वरूप पर्यावरण अवक्रम एवं परती भूमि में विस्तार हुआ है। देश में प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता जो 1951 0.48 हैक्टेयर थी जो घटकर 2001 0.15 हैक्टेयर एवं 2011 में 0.12 हैक्टेयर रह गई है। बंजर भूमि का निरन्तर विस्तार हमारे संसाधन आधार एवं जीवनतन्त्र के लिए घातक चुनौती है। बंजर भूमि की समस्या के समाधान के लिए प्रबंधन का एक समन्वित स्वरूप विकसित किया जाना चाहिए, जिसका लक्ष्य भूमि की उर्वकता बढ़ाना और रोजगार के अवसर सृजित करना है।

शोध पत्र-

वर्तमान में भारत के कुल क्षेत्रफल का एक तिहाई भाग बंजर है। राजस्थान में वर्ष 2001 के आंकड़ों के अनुसार परती भूमि का प्रतिशत 34.07 है। जबकि भारत में यह प्रतिशत 17.77 था। राज्य में जैसलमेर जिले में परती भूमि का प्रतिशत सर्वाधिक लगभग 90 प्रतिशत था जबकि जयपुर जिले में है 19.24 प्रतिशत एवं चाकसू तहसील में 24.81 प्रतिशत पाया गया। बंजर भूमि से तात्पर्य इस भूमि से है जो कृषि कार्यों में उपयोगी नहीं होती। यह भूमि अपनी क्षमता से कम आर्थिक लाभ देती है। पर्यावरण की दृष्टि से यह भूमि अस्थिर होती है और मृदा की उपरी परत अपना उपजाऊपन खो चुकी होती है तथा किसी भी प्रकार की फसल या पेड़ के लिए उपयुक्त नहीं होती है। अतः उक्त कारणों से भूमि को पड़त छोड़ दिया जाता है। राष्ट्रीय बंजर भूमि बोर्ड जो कि 1985 में गठित किया गया था के अनुसार वह भूमि बंजर है जो अनुपजाऊ होने के कारण खाली पड़ी हो। बंजर भूमि को सामान्यतः दो रूपों में वर्गीकृत किया जाता है-

1- कृषि योग्य बंजर भूमि

इस प्रकार की भूमि में वनस्पति उम्पादक क्षमता निर्धारित होती है। परन्तु उपयोग किसी कारणवश नहीं हो पाता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित भूमि शामिल है-

नाली या कन्दरा भूमि, झाड़ीयुक्त एवं झाड़ी रहित उबड़ खाबड़ भूमि, सेम भूमि, दलदली भूमि, क्षारीय भूमि

स्थानांतरणशील कृषि भूमि, क्षारित वन भूमि, क्षारित चारागाह, मरुस्थली भूमि, खनन या औद्योगिक बंजर क्षेत्र

2- अकृष्य बंजर भूमि

बंजर भूमि पूर्णतया ऊसर होती है और किसी भी प्रकार की वनस्पति के विकास की संभावना नहीं होती। इसके अन्तर्गत बंजर पथरीली भूमि, खड़े ढाल युक्त भूमि और हिमाच्छादित भूमि शामिल है।

अध्ययन का उद्देश्य एवं शोध पद्धति-

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य जयपुर जिले की चाकसू तहसील की परती भूमि के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करना निम्न में मुख्य है बंजर भूमि की वस्तुधिति का आंकलन करना, मिट्टी की उत्पादन क्षमता का विश्लेषण, बंजर भूमि के उत्पत्ति के कारणों का विश्लेषण, मानचित्रों की सहायता से अध्ययन क्षेत्र का आकारमितिक विश्लेषण करना, चाकसू तहसील की मिट्टीयों का भौतिक एवं रसायनिक विश्लेषण करना, परती भूमि के प्रबंधन हेतु सुझाव देना है।

वर्तमान अध्ययन प्राथमिक व द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। प्राथमिक आंकड़े क्षेत्रीय अवलोकन तथा द्वितीयक आंकड़े विभिन्न कार्यालयों से एकत्रित किए गए हैं। विशेषतः बंजर भूमि प्रभावित क्षेत्रों की मृदा, ढाल एवं आकृति संबंधित तथ्य एकत्रित किए गए हैं। भूमि उपयोग के वर्तमान स्वरूप के साथ-साथ एक दशक के परिवर्तन संबंधी आंकड़े एकत्रित किए गए हैं। परती भूमि पर भौतिक, सामाजिक, आर्थिक व तकनीकी वारधों के प्रभाव का आंकलन करने के लिए तत्वों एवं परती भूमि के मध्य सहसम्बन्ध एवं प्रतिपगमन विश्लेषण किया गया है।

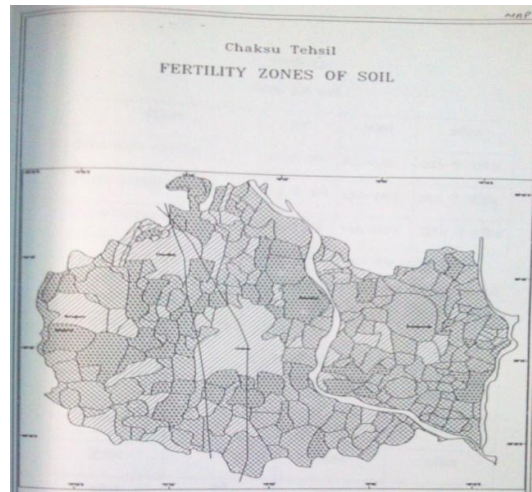
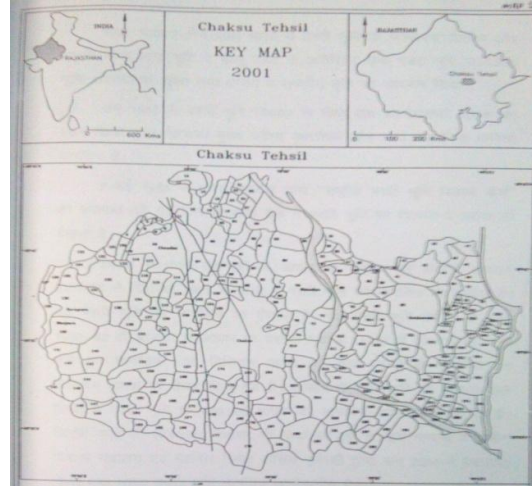
चाकसू अवस्थिति-

चाकसू तहसील जयपुर जिले के दक्षिणी पूर्वी भाग में 790 वर्ग.किमी. क्षेत्र में फैली हुई है। उपर्युक्त क्षेत्रफल भारतीय सर्वेक्षण विभाग की टोपोशीट संख्या 45 छ/14, 54-ठ/2 एवं 45 छ/3 के अन्तर्गत शामिल है जिसकी अवस्थिति 26 30' से 26 46' उत्तरी अक्षांशों तथा 75 45' से 76 12' पूर्वी देशान्तरों के मध्य है।

चाकसू तहसील का भौतिक स्वरूप-

यह क्षेत्र अर्ध शुष्क जलवायु के अन्तर्गत आता है जिसमें औसत उच्च तापमान 42 डिग्री सैन्टिग्रेट ग्रीष्मकाल में और औसत निम्नतम तापमान 16 डिग्री सैन्टिग्रेट शीतकाल में पाया जाता है। वर्षा लगभग 456 मिमी. होती है। चाकसू तहसील मुख्यतः समतल सतह विशेषता से युक्त है। यह क्षेत्र तरंगित मैदान स्थलाकृति को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में क्वार्टजाइट पहाड़ियां तहसील के दक्षिणी तथा दक्षिणी पूर्वी भागों में फैली हैं। इस मैदान की

सामान्य ऊँचाई समुद्र तल से 260 से 300 मीटर के बीच है। सर्वोच्च चोटी 300 मीटर शिव डूंगरी की है। चाकसू तहसील का अपवाह तन्त्र बनास नदी तन्त्र के अन्तर्गत शामिल है। इस क्षेत्र में मोरेल और ढूँढनदियों का अपवाह क्षेत्र है जो तहसील के मध्य व पूर्वी भाग में है। अपवाह तन्त्र अल्प विकसित है व दुमाकृतिक है।



मृदा

चाकसू तहसील में मृदाएँ एल्यूवियम प्रकृति की गहरी (90 सेमी.) से बहुत गहरी (150 से.मी) मध्यम से सूक्ष्म कण, उदासीन से कैल्शियकृत प्रकृति की है। ये मृदाएँ बलुई दुमट से चिकनी दुमट सतह पर नीचे की तरफ सिल्ट युक्त है। इन मृदाओं का रंग पीला भूरा से गहरा भूरा पाया जाता है। इस तहसील के प्रत्येक गांव उसके क्षेत्रफल, मिट्टी की संरचना रंग तथा वर्तमान में ली जाने वाली फसलों के आधार पर नमूने एकत्र करके मिट्टी व पानी की खेती के लिए उपयुक्तता के बारे में कृषि अनुसंधान केन्द्र, दुर्गापुरा द्वारा सर्वेक्षण किया गया जिसमें मृदा के पोषक तत्वों तथा उर्वरता स्तर का निर्धारण किया गया।

पोषक तत्व स्तर

विवरण	कम	मध्यम	अधिक
जैविक कार्बन (प्रतिशत)	0.5 से कम	0.5–0.75	0.75 से अधिक
फास्फोरस (किग्रा/है)	23.0 से कम	23.0–56.4	56.4 से अधिक
पौटेशियम (किग्रा/है)	142 से कम	142–337.4	337.4 से अधिक

उर्वरता स्तर

वर्ग	नत्रजन	फास्फोरस	पौटेशियम
प्रथम	कम	मध्यम	अधिक
द्वितीय	कम	मध्यम	अधिक
तृतीय	कम	मध्यम	अधिक

उर्वरता स्तर (मानचित्र अनुसार)

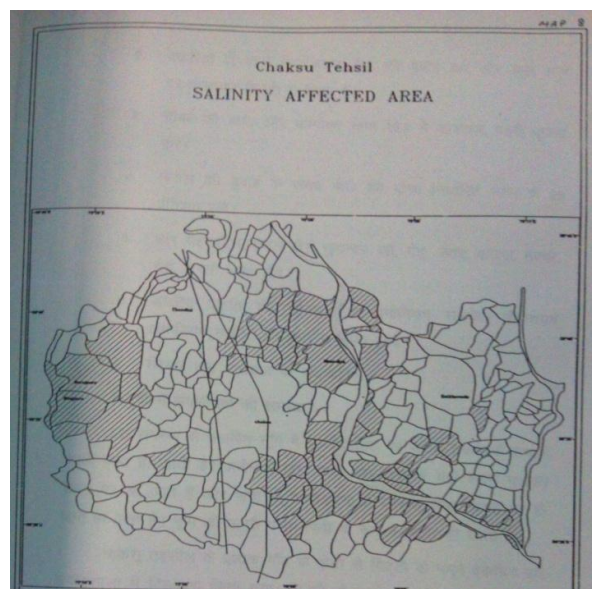
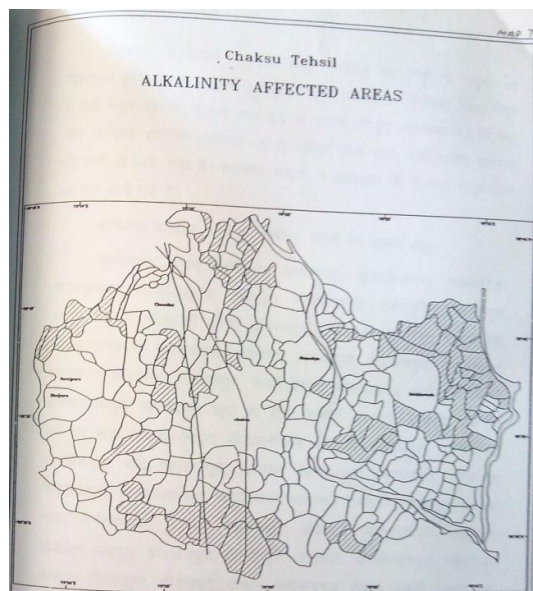
प्रथम वर्ग में कुल 71 गांव, द्वितीय वर्ग में सर्वाधिक 204 गांव तथा तृतीय वर्ग में मात्र 4 गांव पाये गए। अर्थात् क्षेत्र की मिट्टी में नाइट्रोजन का भाग कम तथा फास्फोरस मध्यम व पौटेशियम की मात्रा अधिक है। तहसील की मिट्टी मुख्यतः लवणीयता व क्षारीयता से ग्रस्त है। सिंचाई योग्य पानी लवणीय तथा क्षारीय है जिससे समस्याग्रस्त भूमि की वृद्धि हो रही है।

क्षारीयता की समस्या

क्षारीय मिट्टी पर काले भूरे धब्बे दिखाई पड़ते हैं भूमि में मृदा कणों के संकुचन के कारण वायु संचार और पानी का रिसाव ठीक से नहीं हो पाता जिससे मिट्टी की सतह बहुत सख्त हो जाती है। प्रयोगशाला में परीक्षण मिट्टी के ऐसे नमूने जिनका पी.एच. मान 8.5 से अधिक व विद्युत चालकता 1.5 से कम थी उन्हें क्षारीय मिट्टी के श्रेणी में रखा गया। तहसील में क्षारीयता से ग्रस्त गांवों की संख्या 92 थी। जो कि तहसील में बिखरी अवस्था में पाये गए सर्वाधिक विस्तार पूर्वी भाग में पाया गया है।

लवणीयता की समस्या

इस समस्या से ग्रस्त भूमि में ऊपरी सतह पर सफेद चकते के रूप में पपड़ी जमा हो जाती है। जमीन में जहां पानी भरा रहता है वहां लवण घुलकर सतह पर आ जाते हैं और पानी के वाष्पीकरण के पश्चात लवण सतह पर आ जाते हैं। प्रयोगशाला विश्लेषण में पी.एच मान 8.5 से कम प्राप्त नमूनों को लवणीयता से ग्रस्त श्रेणी में रखा गया। तहसील में लवणीयता से ग्रस्त 92 गांव पाए गए। सर्वाधिक संकेन्द्रण ढूँढ नदी के सहारे उत्तर से दक्षिण की ओर पाया गया है। इसका कारण ढूँढ नदी के सहारे जलस्तर का ऊँचा पाया जाना है।



सामान्य भूमि उपयोग

चाकसू तहसील का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 81,177 हेक्टेयर है। तहसील के भूमि उपयोग का वर्तमान प्रारूप अनेक भौतिक व आर्थिक-सामाजिक तत्वों का परिणाम है।

सारणी-भूमि

क्र. सं.	वर्गीकरण	1990-91 हेक्टेयर	प्रतिशत	2000-01 हेक्टेयर	प्रतिशत	2010-11 हेक्टेयर	प्रतिशत
1	कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र	81,177	100	81177	100	81177	100

2	वन क्षेत्र	163	0.20	88.09	0.11	71.10	0.09
3	सिंचित	12,411.72	15.29	26,246	30.72	24441	30.10
4	असिंचित	45,929.07	56.58	36,326.65	44.75	30231	37.24
5	कृषि योग्य बंजर	11827	14.57	11448	14.10	13253	16.32
6	कृषि हेतु अनुपलब्ध	6474.59	7.98	8377	10.32	13181.9	16.25

स्त्रोत आर्थिक एवं सांख्यिकी प्रतिवेदन (राजस्थान सरकार)

वन प्रदेश

उपरोक्त सारणी को देखने से प्रतीत होता है कि वर्ष 1990-91 में तहसील में इस प्रकार की भूमि का विस्तार 163 हैक्टेयर में फैला था जो कि कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 0.20 प्रतिशत था वहीं 2000-01 में वन भूमि का विस्तार मात्र 88.90 हैक्टेयर भूमि पर रहा जो कि कुल क्षेत्रफल का लगभग 0.11 प्रतिशत है। अर्थात् पिछले दस सालों में तहसील में कुल वन क्षेत्र में कमी दर्ज की गई है। वनों का सम्पूर्ण संकेन्द्रण दूण्ड नदी के किनारे वृन्दावनपुरा रुपाबास ग्राम में है तहसील के अन्य गावों में वनों का प्रतिशत नगण्य हैं।

सिंचित भूमि

चाकसू तहसील में वर्ष 1990-91 में सिंचित भूमि के अन्तर्गत 12411 हैक्टेयर क्षेत्र था जो कि कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 15.29 प्रतिशत था। जबकि वर्ष 2000-01 के अन्तर्गत यह क्षेत्र बढ़कर 26246 हैक्टेयर हो गया जो कि कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 30.78 प्रतिशत है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पिछले दस सालों में चाकसू तहसील में सिंचित भूमि का क्षेत्रफल लगभग दो गुना हो गया। इसका मुख्य कारण गांवों में बिजली की सुविधा के फलस्वरूप कुएँ एवं नलकूपों की मात्रा में वृद्धि होना है। सर्वाधिक सिंचित भूमि तहसील के पूर्वी भागों में है जिसका प्रमुख कारण उस क्षेत्र में बहने वाली दूंद व मरिल। इस नदी के कारण जलस्तर ऊँचा है व कुओं की मात्रा अधिक है। जिससे सिंचाई का विस्तार हुआ है।

असिंचित भूमि

चाकसू तहसील भूमि उपयोग में सर्वाधिक क्षेत्र असिंचित भूमि के अन्तर्गत आता है। वर्ष 1990-91 में तहसील में कुल असिंचित भूमि 45929 है थी, जो कि कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र का 56.58 प्रतिशत था जबकि वर्ष 2000-01 में यह क्षेत्र घट कर 36326 रह गया जो कि कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र का 44.75 प्रतिशत है। परन्तु इस असिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत पडती भूमि को भी शामिल किया गया है।

तहसील में असिंचित भूमि का यदि ग्रामवार वितरण देखा जाये तो सर्वाधिक असिंचित भूमि (अर्थात् 80 प्रतिशत से अधिक) कुल 12 गांवों में है जो तहसील के उत्तरी एवं उत्तरी-पश्चिमी हिस्से में है। इसका मुख्य कारण जलस्तर का नीचे पाया जाना एवं सिंचाई सुविधाओं का विकास कम होना है।

कृषि योग्य परती भूमि

कृषि योग्य परती भूमि से तात्पर्य ऐसी भूमि से है, जो कि कृषि के लिए उपयुक्त है, लेकिन किसी कारणवश उसमें कृषि नहीं की जा रही है।

चाकसू तहसील में वर्ष 1990-91 में कृषि योग्य परती भूमि का क्षेत्रफल 11827 हैक्टेयर था, जो कि कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 14.57 प्रतिशत था, परन्तु कृषि योग्य परती भूमि का यही क्षेत्रफल वर्ष 2010-11 में बढ़कर 13253.44 हैक्टेयर हो गया। जो कि कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 16.32 प्रतिशत था। अर्थात् पिछले दो दशकों में तहसील के कृषि योग्य परती भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है।

कृषि हेतु अनुपलब्ध क्षेत्र

इस प्रकार की भूमि के अन्तर्गत वह भूमि शामिल की जाती है जो कि आवास, सड़क, रेल, लाइन, पहाड़, कारखाने, जलाशय इत्यादि कार्यों के लिए प्रयोग में लायी गयी है। वर्ष 1990-91 में तहसील में कृषि हेतु अनुपलब्ध भूमि कुल 6474 हैक्टेयर अर्थात् 7.98 प्रतिशत थी जो कि बढ़कर वर्ष 2010-11 में 13181 हैक्टेयर अर्थात् 16.32 हो गयी। इस प्रकार हम देखते हैं कि पिछले दो दशकों में कृषि हेतु अनुपलब्ध क्षेत्र में वृद्धि दर्ज की गई है। इस का मुख्य कारण कृषिगत अंसिचित भूमि पर रिहाएशी कोलोनियों का विस्तार है। जो जयपुर कोटा राष्ट्रीय राजमार्ग के सहारे अधिकतम संकेन्द्रित है।

परती भूमि प्रबंधन

देश की परती भूमि में ऊसर भूमि का प्रथम स्थान है। राजस्थान ऊसर भूमि से प्रभावित राज्यों में तीसरे स्थान पर है। राज्य की भूमि के ऊसर होने का प्रमुख कारण यहां कि शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क, जलवायु, कुएँ के खारे पानी से सिंचाई आदि प्रमुख हैं।

ऊसर भूमि प्रबंधन

ऊसर भूमि को विभिन्न गुणों के आधार पर श्रेणियों में विभाजित किया जाता है-

1. क्षारीय मृदा
2. लवणीय मृदा
3. लवणीय-क्षारीय मृदा

लवणीय मृदा सुधार

1. खेत में ऊपरी परत की मिट्टी खुरचकर खेत से बाहर फेंक दी जानी चाहिए।
2. खेत में क्यारियाँ बनाकर अच्छी गुणवत्ता का पानी भरकर लवणों का निक्षालन किया जाना चाहिए।
3. हरी खाद की फसलें लें।
4. उर्वरकों का संतुलित प्रयोग किया जाना चाहिए।

क्षारीयतामृदा का सुधार

1. 2 से 4 टन प्रति हेक्टेयर जिप्सम की खाद दी जानी चाहिए।
2. खेतों में ढेचा की बुवाई की जाये व फूल आने पर पलटकर मिट्टी में मिला देवें।
3. गोबर की खाद व कम्पोस्ट की खाद डालकर गहरी जुताई की जाये।
4. बीज की मात्रा निर्धारित से 20 प्रतिशत अधिक रखी जानी चाहिए।
5. क्षार सहनशील फसलें जैसे-चुकन्दर, जौ, ज्वार, बाजरा, मक्का व सरसों ली जानी चाहिए।
6. सिंचाई कम अन्तराल पर की जाये।

लवणीय-क्षारीय मृदा सुधार

1. खेतों को समतल बनाना एवं एसमें जल निकास ठीक करना।
2. सुधारकों का प्रयोग करना।
3. जैविक खादों का उपयोग करना।
4. उन्नत कृषि विधियों को काम में लाना जैसे-उचित फसल चक्र का चुनाव, सही किस्मों का चुनाव, भूमि की तैयारी, गहरी जुताई आदि।
5. लवणीयता सहने वाली किस्मों को बोया जाये।
6. अधिक लवणीय मृदाओं में बबूल, यूकेलिप्टस, खजूर, इमली, खेजड़ी, बेर, कैर इत्यादि के पेड़ लगाये जाने चाहिए तथा पेड़ों के लिए खोदे गड्ढों में गोबर की खाद डालनी चाहिए।
7. लवणीय मृदाओं में लवणों को मृदा में नीचे बहाकर ही बीज व उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

गली कन्दरा भूमि सुधार

इस प्रकार की भूमि के सुधार के लिए निम्नलिखित कार्य किये जाने चाहिए-

1. पशुओं द्वारा अनियंत्रित चराई पर रोक लगाना।
2. वर्षा जल के अधिकतम संरक्षण के लिए कन्टूर एवं मेड़बन्धी की जानी चाहिए।
3. छोटे ओर मध्यम प्रकार की गली एवं कन्दराओं को समतलीकरण द्वारा उपयोग में लाया जाना चाहिए।
4. गहरी एवं संकरी कन्दराओं में स्थाई वनस्पति का रोपण किया जाना चाहिए।

बालू तथा बालुका स्तूप युक्त भूमि का प्रबंधन

बालुका परती भूमि मृदा की बालू, प्रकृति, नमी की अल्पता तथा कठोर जलवायु उच्च वाष्पोत्सर्जन तथा बालुका स्तूपों की गतिशीलता के कारण कम उत्पादकता वाली भूमि होती है। अतः यह कृषि उद्देश्यों हेतु अनावश्यक होती है। परन्तु इस प्रकार की भूमि में चारा,

रेशे, ईंधन की आपूर्ति हेतु वृक्षारोपण सफलता के साथ किया जा सकता है। इस हेतु निम्न सुधार हो सकते हैं-

1. कन्दूर मेड बंधी की जानी चाहिए जिससे कि ऊपरी ढालों की बालू खिसक कर नीचे नहीं आ सकेगी तथा निचली भूमि की मृदा बंजर भूमि में परिवर्तित नहीं हो पायेगी।
2. नमी संरक्षण हेतु अवरोधों का निर्माण।
3. हल्की मृदा परत वाली भूमि में जुताई प्रायः कम गहरी करनी चाहिए तथा जुताई ढाल के समकोण पर अर्थात् समोच्च रेखा जुताई करनी चाहिए।
4. भूमि पर खरपतवार को लगाकर आवरण बनाया जा सकता है।
5. बलुका प्रदेश में मृदा अपरदन को रोकने तथा बालुका स्तूपों की गतिशीलता को रोकने के लिए उस पर निम्न प्रजातियों के पेड़ों, झाड़ियों तथा घासों का रोपण किया जाना चाहिए। पेड़ प्रजाति (खेजडा, बबूल, कैर, बेर) आदि। घास (मूँझ, सेवण, धामण, मुरात आदि) झाड़ियों में जीजीकस जोजोब व केशिया।
6. वृक्षविहीन पहाड़ियों पर सघन वनारोपण किया जा सकता है। जिससे वर्षाकाल में भूमि कटाव कम हो तथा भूमि को बंजर होने से बचाया जा सके।

वृक्षविहीन पहाड़ियों पर पुनः वनरोपण:- मुख्यतः पर्वत पदीय क्षेत्रों में किया जाना चाहिए ताकि वर्षा काल में भूमि कटाव कम हो तथा भूमि को बंजर होने से बचाया जा सके।

कृषि योग्य परती भूमि सुधार

1. भूमि के उपयुक्त समतलीकरण, मेड़ बंधी तथा पानी एवं उर्वरकों के उचित उपयोग से इसमें सुधार संभव है। चाकसू तहसील के कुछ गांवों में इस प्रकार की भूमि को कृषकों द्वारा स्वयं के खर्चे पर सुधारने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार के प्रयासों में यदि कृषकों को उचित मार्गदर्शन तथा वित्तीय एवं यांत्रिक सुविधाएँ उपलब्ध करा दी जायें तो कृषि योग्य परती भूमि को काफी हद तक सुधारा जा सकता है।
2. खेत के ढाल के विपरीत दिशा में मेड़ बंधी करके और खेत के बाहर प्रवाहित होने वाले वर्षा के जल को रोककर मृदा की नमी में वृद्धि की जा सकती है।
3. इस समस्या के संबंधित भूमि का मृदा परीक्षण कृषि अनुसंधान, केन्द्र, दुर्गापुरा द्वारा करवाया गया है। अतः कृषि वैज्ञानिकों की सिफारिशों के अनुसार ही रासायनिक उर्वरकों एवं हरी खादों के उचित उपयोग द्वारा कृषि की जानी चाहिए।

Selected Bibliography

1. Agarwal, R.R. (1959), Potential and Economic Aspects of Utilisation of Aline Alkali Solis, proc. of Seminar on Recent Advances in Agron and Soil Sci. Held at Simla.

2. Agarwal (1958), R.P. & Saline Alkali Solis in India. I.C.A.R. Publication Technical Bulletin (Agricultural Series) No. 15
 3. Dikshit. K.D. (1961-71) The Morphological Features of the Khar Lands Saline Waste of Gujrat, ind. Jr. iv-iv, 2,21-28.
 4. Dube, R.S. (1987), Agricultural Geography-Issues and Applications. Gian Publishing House, Dehli.
 5. Dwivedi A.P. (1980), Forestry in India, Jugal Kishore, Dehradun.
 6. Dhawan M.L. (1964) Land reclamation. Central board of irrigation and power Publication no. 43, Volume II
 7. Gedroiz K.K. (1917) Saline Soil and their improvement. thur opt. ag 18-122-140. (In Russian translated by S.A. Waksman)
 8. I.C.A.R. (1958)m Final report of all India Soil Survey Scheme.
 9. Kalwar S.C. (1995), Wastelands in Rajasthan, Changing contours of Arid Ecology, Volume II, A.E.C. Jaipur,
 10. Misra V.C. (1967), Geography of Rajasthan, N.B.T. New Delhi.
-

डॉ. रागेय राघव : कथा साहित्य में मुखरित नारी चेतना के स्वर

डॉ. दीपाली शर्मा

हिन्दी विभाग

स.ध.राज.महा.ब्यावर

शोध सार

डॉ. रागेय राघव के कथा साहित्य में नारी मन के अनेक सूक्ष्म पहलुओं, भाव-भंगिमाओं, संवेदनाओं, जीवनगत अनुभूतियों, उसकी पीड़ा, घुटन आदि की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। एक ओर वे भारतीय नारी के प्रति होने वाले परम्परागत अत्याचारों का विरोध करते हैं। तो दूसरी ओर भारतीय नारी को नवीन परिस्थितियों में शिक्षा, अर्थर्जिन आदि द्वारा प्राप्त आत्मविश्वास के साँचे में ढला हुआ अंकित कर प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। कथा साहित्य में अंकित नारी पात्र व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा निर्मित होने से प्रामाणिक हो कर पाठकों की चेतना को जागृत करजते हैं। इन्होंने अपने कथा साहित्य में एक ओर नारी की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए यथार्थवादी रूप उद्घाटित किया है वहीं सचेतन नारी का आदर्श रूप भी स्थापित किया है। रागेय जी की विशिष्टता इसी संदर्भ में है कि इनके नारी पात्र अनुभवजन्य हैं। इनका वर्णन रागेय जी ने परिस्थितियों की विक्षुब्धता से पीड़ित होकर किया है, यही कारण है कि रागेय जी के साहित्य में नारी चेतना का उद्घोष सुनाई देता है।

शोध पत्र

आधुनिक युग, व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा समानता का युग है। गुलामी की जंजीरें तोड़ कर, नारी को एक नयी स्वतंत्र चेतना लेकर प्रगति के अनछुए षिखरों को छूने की प्रेरणा अपने कथा साहित्य के माध्यम से रागेय राघव जी देते हैं। उचित भी है कि अपने कृत्यों और व्यक्तित्व को नयी दिशाएँ देने का हर व्यक्ति को समान अधिकार है, चाहे वे स्त्री हों अथवा पुरुष। रागेय राघव के कथा साहित्य में नारी मन के अनेक सूक्ष्म पहलुओं, भाव-भंगिमाओं, संवेदनाओं, जीवनगत अनुभूतियों, उसकी पीड़ा, घुटन आदि की सशक्त अभिव्यंजना हुई है। उन्होंने नारी की व्यक्तिगत, परिवेशगत, मानसिक एवं सामाजिक समस्याओं को व्यापक अभिव्यक्ति देकर युग-युग से उपेक्षित नारी के अस्तित्व का मौलिक अन्वेषण किया है।

उनके कथा साहित्य में एक और 'लवंग', 'उषा' (घरौंदा उपन्यास) के रूप में ऐसी आधुनिक नारियों का चित्रण हुआ है जिनकी स्वतंत्रता स्वच्छंदता की सीमा को पार करती हुई उच्छृंखलता में बदलती जा रही है तथा जो समाजगत भारतीय जीवन आदर्शों व मूल्यों के प्रति कोरा आक्रोश रखते हैं। भारतीय अभिजात्य वर्ग के ऐसे शिक्षित नारी समुदाय के, पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण तथा मूल्यविहीन, आस्थाविहीन, जीवन दृष्टि का रागेय जी ने पर्दाफाश किया है। वहीं दूसरी ओर 'सविता' (नारी का विक्षोभ-कहानी), 'विमला' (ममता की मजबूरी-कहानी), कान्ता (काका-उपन्यास), नादानी वैष्ठा (घरौंदा-उपन्यास), प्यारी (कब तक पुकारूँ-उपन्यास) जैसे प्रगतिशील नारी पात्रों के प्रति रागेय

जी का दृष्टिकोण उदार व व्यापक है। वैष्णव को भी वह उसकी परिस्थिति, विवशता, निर्धनता आदि के सम्बन्ध में देखने का साहस रखते हैं।

नारी पात्र उनके सम्पूर्ण साहित्य में सशक्त रहे हैं। लेखक की अपनी संवेदना, आधुनिक युग की नारी चेतना का संयुक्त अवलम्ब पा कर, अधिकांश कहानियों एवं उपन्यासों में एक न एक नारी पात्र सशक्त रूप में अंकित हुआ है। इन नारी पात्रों में जहाँ लेखक ने भारतीय नारी के परम्परागत गुणों को प्रदर्शित किया है वहीं नारी पीड़ा और आधुनिक अधिकार चेतना को किसी न किसी रूप में उभारा है।

रांगेय राघव का साहित्यिक कृतित्व जीवनगत व्यक्तिगत अनुभवों का परिणाम होने से यथार्थपरक है। समाज के विभिन्न वर्गों तथा व्यक्तियों के जीवन से जुड़ाव उनके साहित्य की गहराई को और बढ़ा देता है, अतः यहाँ उथलापन व कृत्रिमता नहीं है। नारी जीवन में यथार्थ स्थिति पर विचार करते हुए लेखक 'छोटी सी बात' (उपन्यास) में कह उठते हैं—“क्या है स्त्री का जीवन? एक विषम हाहाकार! संतों के युग में माया थी, छायाग्रहिणी थी, दरबारों में विलास की पुतली, धर्म में माता और आधुनिकता में एक सिरे पर वेष्ठा, दूसरे पर आवरण में छिपी हुई घुटन, और दोनों सिरे जलते हुए, गलती हुई.....मिटती हुई।”(1)

यषोधरा जीत गई उपन्यास में 'यषोधरा' के चुनौतीपूर्ण तर्क पुरुष के मिथ्या अहंकार का भाण्डाफोड़ करने के साथ नारीत्व की गरिमा भी सशक्त से स्थापित करते हैं। पत्नी रूप में वह समान अधिकारों की माँग करती है—“वे मेरे पति थे, मैं उनकी दया नहीं समान अधिकारों को चाहती हूँ।” रांगेय जी ने नारी स्वाभिमान, उसके अस्तित्व आदि प्रश्नों पर विचार कर उसके विडम्बनापूर्ण जीवन को चित्रित किया है। पुरुष जाति को जन्म को जन्म देने वाली स्त्री पुरुष के लिए हेय व त्याज्य किस रूप में हो सकती है?(2)— “जो जन्म देती है, वह नीची है। फिर पुरुष ही क्यों ऊँचा है? क्योंकि वह भोगी होने का अहंकार रखता है.....पुरुष सृजन की महानता और गरिमा का अनुभव नहीं करता। (3)“पुरुष की पूर्णता चुनौती देती 'यषोधरा' कहती है— “पुरुष कितनी भी पूर्णता प्राप्त कर ले, किन्तु जब उसकी सत्ता का प्रश्न उठता है, तब उसे देह धारण करने के लिए, नारी के गर्भ में ही आना पड़ता है।”(4) 'घरौंदा' की 'नादानी' वेष्ठा जो विधवा होने पर गुण्डों द्वारा भ्रष्ट किये जाने पर वेष्ठा जीवन अपनाये है, के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण राघव जी के यहाँ मुखरित होता है, वे 'नादानी' के कथन के माध्यम से आक्रोश व्यक्त करते कहते हैं— “तुम नदी में नहाते हो, मगर तुम गंदे नहीं होते, उलटे बहने वाली नदी गंदी हो जाती है क्या न्याय है तुम्हारा ?”(5)

विधवा समस्या का साहसिक समाधान राघव के 'काका' में प्रस्तुत किया है। बाल विधवा 'कान्ता' सामाजिक व्यवस्था व आरोपित परम्परागत रूढ़ियों का विरोध करते हुए, 'राम धुन' के विवाह प्रस्ताव को स्वीकार कर कहती है— “भले ही यह पाप हो, पर यही अच्छा है। मेरे वेष्ठा बनने से, या चेली बनने से, यह पवित्र है। स्त्री हूँ स्त्री जैसा जीवन क्यों न बिताऊँ? अगर धर्म इसे नहीं मानता तो धर्म गलत है।”(6) पुरुष द्वारा, स्त्री को दासी रूप में मानने व स्वीकारने की भावना का विरोध करते

हुए 'नीलूफर' (मुर्दों का टीला उपन्यास) में कहती है— "पुरुष स्त्री का स्वामी होना चाहता है, अपने धन और अधिकार से स्त्री को खरीद लेना चाहता है जैसे हम कोई पशुमात्र हों।" (7)

रांगेय जी के नारी पात्र अपने अधिकारों, आत्मसम्मान तथा अस्तित्व के प्रति विषेय जाग्रत हैं। आधुनिक जीवन की जटिलताओं, तनावों तथा पीड़ा आदि के परिणामस्वरूप एक मनुष्य के रूप में उसकी अपनी समस्याएँ, कुण्ठाएँ, दुःख व पीड़ा आदि मानवीय समस्याएँ हैं पर इन सब के बीच टूटते जीवन मूल्यों व बिखरती नैतिकताओं के धुँ से वह अपने आत्मसम्मान तथा अस्तित्व को बचाए रखने के लिए प्रयासरत है।

देवताओं को अर्पित की जाने वाली देवदासियों की मनःस्थिति व धर्म के नाम पर उनके स्त्रीत्व और मातृत्व को जबरन छीन लिये जाने को 'देवदासी' कहानी में उजागर किया गया है। सम्पूर्ण हिन्दी कहानी साहित्य में नायक के वर्चस्व को चुनौती देने के साथ सम्पूर्ण समाज को चुनौती देने वाली 'गदल' के समान अन्य कोई नारी पात्र इतने सशक्त रूप में साहित्य में नहीं उभर कर आता। 'गदल' हिन्दी कहानी साहित्य का अविस्मरणीय पात्र है, 'गदल' के चरित्र का ठोस रोमांटिक ठहराव स्त्रीत्व और पौरुषत्व का अद्भुत सम्मिलन, 'गदल' के चरित्र की विषिष्टता को उजागर करता है। 'गदल' का अपने देवर 'डोडी' से अदृश्य मूक लगाव है, पति 'गुन्ना' के साथ तीस वर्षों के वैवाहिक जीवन के उपरांत, पति की मृत्यु और 'डोडी' के पत्नी-बच्चों की मृत्यु हो जाने पर वह विधवा के स्थान पर विवाहिता के रूप में 'डोडी' के साथ जीवन बिताना चाहती है। पर 'डोडी' द्वारा समाज से संकोच को जानकर वह विद्रोह कर 'मौनी' के यहाँ बैठ जाती है। कहती है— "गदल" तो मालिक बनकर रहती है समझी! बांदी बनकर नहीं। चाकरी करूँगी तो मरद की नहीं तो

विधना मेरे ठेंगे पर।" (8) 'नारी का विक्षोभ' की शिक्षित, तर्कशील नायिका पति के अत्याचारों के कारण पतिगृह को छोड़कर इलाहाबाद आकर शिक्षिका का जीवन व्यतीत करने लगती है। वह कहती है— "पति ही स्त्री का सबकुछ है? किन्तु वह पति पुरुष होता है। सीता जिस राम के पीछे चली थी वह पुरुषार्थी था। जो व्यक्ति अपनी रुढ़ियों में जकड़े हॉफ रहा है, वह मेरे जीवन का आदर्श नहीं हो सकता।" (9) पुरुष की वासना का शिकार स्त्री को, अवैध संतान होने के कारण अस्पताल में भर्ती नहीं किया जाता तब लेखक कह उठते हैं— "उसकी लाज इतनी है कि उसकी दरिद्रता पशुता मात्र न रह जाये। कम से कम उसे मनुष्यत्व का एक अधिकार मिले कि उसे जनने के लिए एक बंद घर प्राप्त हो।" (10) 'कुछ नहीं' कहानी में समाज द्वारा बलात्कार की शिकार लड़की के प्रति सहानुभूतिके स्थान पर उसे लज्जित किया जाता है बलात्कारी को कोई कुछ नहीं कहता तब लड़की का पति कहता है— "हमारा पाप-पुण्य रखने का नैतिक ज्ञान इतना कलुषित और संकुचित हो गया कि एक स्त्री-पुरुष यौन संबंध पर ही धर्म की दीवार खड़ी करते हैं।" (11) १

चिरकाल से पीड़ित, संघर्षशील नारी जीवन की समस्याओं ने लेखक को झकझोर दिया है, वे स्वयं स्त्री की परम्परागत मानसिकता को भी उसके कष्टों के लिए जिम्मेदार मानते हैं— "परमात्मा ने

स्त्री को जननी बनाया है, पर इसलिए नहीं कि वह सदैव अपने को इसी काम में अपने को खोए रखे।”“स्त्री इतनी समर्थ क्यों नहीं बन जाती कि वह अपना पेट स्वयं भर सके, अबला क्यों बनी रहती है वह? स्त्री में क्या सामर्थ्य नहीं है? क्यों बनती है वह दासी? वीरता से सामना क्यों नहीं करती जीवन की सच्चाईयों का।” एक अन्य जगह वे कहते हैं—“उसका दासत्व पुरुष को हटाये नहीं हटेगा, वह तो तब हटेगा, जब नारी बोझ बनने से इंकार कर देगी।”(12) रांगेय जी नारी को मुक्ति की राह पर उन्नति की और स्वच्छन्दतापूर्वक बढ़ने को संदेश देते हुए कहते हैं—“न तुम सन्यासिनी बने ताकि यौन जीवन से विरक्ति दिखा कर लोगों को प्रभावित कर सको। न तुम वेष्ठा बनो कि उसी के बल पर जिओ। प्रेम के नाम पर जो विवाह नामक गुलामी तुमने इसलिए मंजूर की थी कि घर बैठे मौज उड़ाओ, ...कुछ सम्मानित जीवन बिताओ।.....आजादी की भीख मत माँगो उसे स्वयं लो।”(13)

रांगेय जी ने अपने कथा साहित्य में एक और नारी की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए यथार्थवादी रूप उद्घाटित किया है। वहीं सचेतन नारी का आदर्श रूप स्थापित करने का प्रयास भी किया है। रांगेय जी की विषिष्टता इस रूप में दृष्टिगोचर होती है कि उन्होंने अपने साहित्य में नारी का चित्रण यांत्रिक रूप से न कर, अनुभवजन्य आधार पर, संवेदना-सहानुभूति से प्रेरित होकर तथा तत्कालीन परिस्थितियों की विक्षुब्धता से किया है। यही कारण है कि रांगेय जी के साहित्य में नारी व्यक्तित्व के विविध रूप तथा नारी चेतना का स्पष्टतः उद्घोष क्रमशः दिखाई व सुनाई देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. छोटी सी बात (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1959, पृ.106
2. यषोधरा जीत गई (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1954, पृ.95
3. यषोधरा जीत गई (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1954, पृ.95
4. यषोधरा जीत गई (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1954, पृ.95
5. घरौंदा (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1985, पृ.190-191
6. ढाका (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1953, पृ.174
7. मुर्दों का टीला (उप.) ग्रन्थावली भाग-2, संपा. सुलोचना राघव, संस्करण-1982, पृ.346
8. गदल (कहानी)- रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-2, संपा. अषोक शास्त्री संस्करण-1997, पृ.267
9. नारी का विक्षोभ (कहानी)-रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-1, संपा. अषोक शास्त्री संस्करण-1996, पृ.90
10. नारी की लाज (कहानी)-रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-1, संपा. अषोक शास्त्री संस्करण-1996, पृ.103
11. कुछ नहीं (कहानी)- रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-1, संपा. अषोक शास्त्री संस्करण-1996, पृ.260
12. राह न रूकी (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1958, पृ.64
13. कल्पना (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1961, पृ.126

जोधपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों द्वारा पढ़ी जाने वाली पत्रिकाओं का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव

नवीन कुमार शोधार्थी, शिक्षा विभाग

शाह गोवर्द्धन लाल काबरा, शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय

(जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय), जोधपुर

मेरे इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों द्वारा पढ़ी जाने वाली पत्रिकाओं का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है। विद्यार्थी विद्यालय के पुस्तकालय में वैकल्पिक विषयों के अतिरिक्त विभिन्न पत्रिकाओं का अध्ययन करता है, वर्तमान समय में विभिन्न विद्यार्थी ऑनलाइन या इन्टरनेट द्वारा “h पत्रिकाओं का अध्ययन करता है, जिसे e-पत्रिका भी कहा जाता है। इन पत्रिकाओं के अध्ययन से विद्यार्थी बहुमुखी भी हो जाता है। उसके लेखन शैली एवं व्यक्तित्व में शी सकारात्मक परिवर्तन दिखाई देते हैं। ऐसे विद्यार्थी जो पत्रिकाओं का अध्ययन नहीं करते हैं, उनका ज्ञान सीमित एवं संकुचित हो जाता है।

विद्यालय में विषयाध्यपक एवं शिक्षक विभिन्न प्रकार की शिक्षा देते हैं, परन्तु पत्रिकाओं के माध्यम से विद्यार्थी स्वयं शिक्षा व ज्ञान अर्जित करने में सक्षम हो जाता है। विद्यार्थी इन पत्रिकाओं के अध्ययन विभिन्न पुस्तकालयों, सूचना केन्द्र, इन्टरनेट एवं बाजार से खरीदकर करता है। विद्यार्थी ज्ञान प्राप्ति का कार्य पत्रिकाओं के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से कर सकता है। विद्यार्थी उन जिज्ञासाओं का भण्डार होता है। यह जिज्ञासारूपी प्यास इन पत्रिकाओं के माध्यम से आसानी से पूर्ण की जा सकती है।

आधुनिक समय में विस्तृत एवं गहन ज्ञान महत्वपूर्ण हो गया है। ज्ञान का दायरा विस्तृत करने में पत्रिकाओं का सकारात्मक योगदान रहता है।

शोध उद्देश्य :-

इस शोध का उद्देश्य जोधपुर जिले में विद्यार्थियों द्वारा पढ़ी जाने वाली पत्रिकाओं का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है।

उपकल्पना :-

वैकल्पिक विषयों के साथ-साथ विभिन्न पत्रिकाओं का अध्ययन विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

विधि तंत्र :-

इस शोध अध्ययन के लिये नार्मेटिव सर्वेक्षण विधि को अपनाया गया। कुल 5 विद्यालयों के 30-30 छात्र – छात्राओं को लेकर न्यादर्श में यादृच्छिक विधि अपनाई गई।

न्यादर्श

छात्रों की संख्या	30
छात्राओं की संख्या	30
कुल	60

विद्यार्थियों द्वारा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन किया जाता है। जो निम्नलिखित है—

क्र.सं.	पत्रिका	स्तम्भ	प्रतिशत
1.	इण्डिया टुडे	राजनीति	32%
2.	बालहंस	पहेली	06%
3.	सुजस संचय	प्रशासनिक	40%
4.	योजना	कृषि	08%
5.	कुरुक्षेत्र	सामान्य	04%
6.	क्रिकेट स्टार	सामान्य	10%
	कुल		100%

स्रोत :- उम्मेद उद्यान पुस्तकालय, जोधपुर

निष्कर्षतः यह पता चला कि विद्यार्थियों में सुजस संचय व इण्डिया टुडे के पढ़ने की आदत अधिक पायी गई। ये वे विद्यार्थी हैं, जो श्विष्य में प्रशासनिक सेवाओं में जाना चाहते हैं और वे राष्ट्रीय अंतराष्ट्रीय राजनीति अर्थव्यवस्था एवं प्रशासनिक जानकारी प्राप्त करने के लिये इन पत्रिकाओं का अध्ययन करते हैं। इन बच्चों की तार्किक क्षमता “h अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट व अच्छी थी। कुछ बच्चों में प्रतियोगिता दर्पण, परीक्षा मंथन व लक्ष्य प्रकाशन की “h पत्रिकाएं पढ़ने कर जागरूकता देखी गई।

परिणाम एवं विश्लेषण :-

पत्रिकाएं पढ़ने वाले विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में प्रथम श्रेणी में 72% द्वितीय श्रेणी में 27% और तृतीय श्रेणी में 1% विद्यार्थी हैं। पत्रिकाओं का नियमित अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि उच्च होती है।

पत्रिकाएं नहीं पढ़ने वाले विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में प्रथम श्रेणी में 30% द्वितीय श्रेणी में 48% और तृतीय श्रेणी में 22% विद्यार्थी हैं। इन विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि उच्च नहीं होती।

निष्कर्ष व सुझाव :-

शोध से पता चला कि पत्र-पत्रिकाएं पढ़ने वाले विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि उच्च होती है और पत्र-पत्रिकाएं नहीं पढ़ने वालों की कम। लगभग 80% विद्यार्थियों के घरों में

राजस्थान पत्रिका एवं दैनिक शस्कर समाचार पत्र आते हैं, जबकि 20% के घरों पर दैनिक नवज्योति। लगभग 65% विद्यार्थियों के घर पर समाचार पत्र के साथ-साथ साप्ताहिक एवं मासिक पत्रिकाएं भी आती हैं। जिनमें इण्डिया टुडे, प्रतियोगिता दर्पण, योजना, बालहंस, अहा ! जिन्दगी जैसी पत्रिकाओं को अधिक पसन्द किया जाता है। अनेक विद्यार्थी जो कि पहले रोजगार समाचार पत्र खरीदते थे। वे अब स्मार्ट फोन का प्रयोग करके मद्रोजगार समाचार पत्र व मद्रपत्रिकाओं का अध्ययन करके अपनी क्षमताओं व ज्ञान में वृद्धि कर रहे हैं। अतः विद्यार्थियों को यह शिक्षा दी जानी चाहिये कि वे निरन्तर पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन करके अपने शैक्षणिक स्तर व ज्ञान में वृद्धि करते रहे। इन विद्यार्थियों को मद्रपत्रिकाओं के अलावा सूचना केन्द्र व पुस्तकालय में जाने हेतु भी प्रेरित करना चाहिये। विद्यालय के अध्यापकों द्वारा “ह विद्यार्थियों को पुस्तकालय में जाकर विभिन्न पत्र – पत्रिकाएं पढ़ने के लिये प्रेरित किया जाना चाहिये। पत्रिकाएं पढ़ने के लिये प्रेरित किया जाना चाहिये। पत्रिकाएं खरीदने में सक्षम अभिभावकों को “ह अपने घर पर पत्रिकाएं मंगवानी चाहिये तथा संभव हो सके तो कुछ पत्रिकाएं पुस्तकालयों में “ह दान करवानी चाहिये। जिसमें कमजोर आर्थिक स्थिति वाले विद्यार्थी भी उनका अध्ययन करके लाभान्वित हो सके।

संदर्भित ग्रन्थ :-

1. डॉ. पी. डी. पाठक – शिक्षा एवं मनोविज्ञान, 2006 Page No. 112 ।
2. सरीन एण्ड सरीन – शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ, 2003 Page No. 52 ।
3. सूचना केन्द्र, जोधपुर, 2016 ।
4. विभिन्न लेखों (शिक्षा) का अध्ययन, 2016 ।

“उदयपुर संभाग के प्रमुख मंदिरों का पर्यटन एवं आर्थिक विकास में योगदान”

योगेश कुमार भाटी— शोधार्थी
इतिहास विभाग, म.द.स.वि.वि. अजमेर

शोध का उद्देश्य :- शोधार्थी का प्रमुख उद्देश्य अपने शोध कार्य के माध्यम से उदयपुर संभाग के मंदिर स्थलों की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व के ऐसे पहलुओं को प्रकाश में लाना है जो पूर्ववर्ती शोध कार्यों में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाश में तो लाये गये किन्तु उन्हें अपेक्षाकृत कम महत्व मिला। मेरे इस शोध कार्य के द्वारा राज्य सरकार की नवीन पर्यटन नीति व आर्थिक विकास के अन्तर्गत उदयपुर संभाग के प्रमुख मंदिर स्थलों के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व के साथ-साथ उन्हें प्रमुख तीर्थ पर्यटन स्थलों के केन्द्रों के रूप में विकसित करना है जिसमें राज्य की आय में वृद्धि के साथ ही राज्य के आर्थिक विकास को भी प्रोत्साहन मिलें।

राजस्थान के दक्षिणांचल में अरावली की सुरम्य उपत्यकाओं से गिरा क्षेत्र जो नदियों, जलाशयों, मंदिरों, ऐतिहासिक दुर्गों एवं प्रकृति की सुखद वादियों से आच्छादित है, जिसे उदयपुर संभाग के नाम से जाना जाता है। उदयपुर संभाग शिल्प स्थापत्य और पुरातत्व आदि सम्पदा का धनी क्षेत्र हैं। जो निर्माण कला, शिल्प और अपनी भव्यता के लिए सम्पूर्ण प्रदेश ही नहीं अपितु पूरे भारत वर्ष में ख्याति प्राप्त हैं।

पुरातात्विक, सांस्कृतिक सम्पदा से भरपूर इन प्रमुख मंदिर स्थलों के आस-पास का प्राकृतिक सौन्दर्य, ऐतिहासिक घटनायें, स्थापत्य विशेषताएं आदि उदयपुर संभाग के लिये वरदान साबित हो रहा हैं। उदयपुर संभाग के ये प्रमुख मंदिर यथा – एकलिंग जी मंदिर, (उदयपुर), बेणेश्वर मंदिर, (डूंगरपुर), त्रिपुरा सुन्दरी मंदिर, (बांसवाड़ा), गौतमेश्वर मंदिर, अरनोद (प्रतापगढ़), श्रीनाथ जी मंदिर, नाथद्वारा, (राजसमन्द), श्री सांवलिया सेठ मंदिर, मण्डफिया (चित्तौड़गढ़) आदि अपने ऐतिहासिक, प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक धरोहरों को संरक्षित कर अपने-आप को तीर्थ पर्यटन उद्योगों के प्रमुख केन्द्रों के रूप में स्थापित कर रहे हैं। जिसमें उदयपुर संभाग के इन क्षेत्रों में हस्तशिल्प, विविध शिल्प, कुटीर उद्योग, रोजगार-सृजन इत्यादि के माध्यम से राज्य के आर्थिक विकास में प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से योगदान कर रहे हैं।

राज्य में पर्यटन उद्योग के सर्वांगीण विकास के लिये पर्यटन, कला एवं संस्कृति विभाग, राजस्थान सरकार ने वर्ष 2001 में “नई पर्यटन नीति” की घोषणा की। इसी संदर्भ में उदयपुर संभाग के ये प्रमुख मंदिर अपने सांस्कृतिक व ऐतिहासिक महत्व को आलोकित करने के साथ साथ राज्य के आर्थिक विकास में अपना महत्वपूर्ण स्थान निम्न प्रकार से रखते हैं –

1. मंदिर परिसरों का तीर्थ पर्यटन स्थलों के रूप में विकसित होने पर ये धार्मिक आस्था के प्रमुख केन्द्र होने के साथ ही स्थानीय निवासियों के लोगों के लिये रोजगार के प्रमुख केन्द्र बन जायेंगे।
2. इन मंदिर स्थलों पर प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले मेलों, त्यौहारों, सांस्कृतिक व धार्मिक आयोजनों में सम्मिलित होने के लिये दूर-दराज के सैकड़ों श्रद्धालु आते हैं। परिणामस्वरूप राज्य सरकार इनके ठहरने, भोजन आदि की बड़े, स्तर पर विभिन्न सुविधाओं का प्रबन्ध व विस्तार करती है, फलस्वरूप पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहन मिलेगा।
3. पर्यटन उद्योग के प्रोत्साहन से इन मंदिरों से राज्य सरकार को आर्थिक लाभ व आय के स्रोतों में वृद्धि के पर्याप्त संसाधन उपलब्ध होंगे।
4. उदयपुर संभाग के प्रत्येक जिलों में स्थित इन विभिन्न मंदिर स्थल परिसरों में स्थानीय निवासियों द्वारा विभिन्न हस्तशिल्प कलात्मक वस्तुओं का क्रय-विक्रय किया जाता है, जिससे बड़े पैमाने पर यहां के युवाओं, महिलाओं, पुरुषों को रोजगार उपलब्ध होता है।
5. ये मंदिर स्थल आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को विविध हस्त एवं शिल्पकलाओं के लिये बाजार उपलब्ध कराते हैं।
6. उदयपुर संभाग में बांसवाड़ा जिले का त्रिपुरा सुन्दरी का मंदिर एवं बेणेश्वर धाम मंदिर, डूंगरपुर सामाजिक समरता के प्रमुख केन्द्र होने के साथ-साथ पर्यटन व्यवसाय के माध्यम से स्थानीय आदिवासी जनजातिय लोगों की गरीबी उन्मूलन एवं रोजगार के संसाधन उपलब्ध करवाने के साथ ही इस भौगोलिक क्षेत्र को आर्थिक दृष्टि से विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान रखते हैं।
7. उदयपुर संभाग के प्रमुख मंदिर श्री सांवलिया सेठ मंदिर, मण्डफिया (चित्तौड़गढ़), गौतमेश्वर मंदिर, अरनोद (प्रतापगढ़), एकलिंग जी मंदिर, (उदयपुर) आदि धार्मिक केन्द्रों को अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन स्थल केन्द्रों के रूप में विकसित करने हेतु राज्य के बदलते हुये सामाजिक, आर्थिक ढांचे के अनुरूप यहां निवेश किया जा सकता है।

उदयपुर संभाग के प्रमुख मंदिर-स्थल विविध सांस्कृतिक व ऐतिहासिक विशेषताओं के साथ-साथ राज्य में पर्यटन व्यवसाय के आधारभूत ढांचों को विकसित करने में अपना महत्वपूर्ण रचनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं। तीर्थ पर्यटन जैसे बेणेश्वर धाम, मंदिर (डूंगरपुर), श्री सांवलिया सेठ मंदिर, मण्डफिया (चित्तौड़गढ़), आदि मंदिर पर्यटन एवं मेलों, त्यौहारों द्वारा अन्तर सांस्कृतिक भाईचारे को बढ़ावा देता है।

नाथद्वारा, राजसमन्द के स्थानीय क्षेत्र की संस्कृति की प्रमुख पहचान "पिछवाई" कलाकृति, जिसकी राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बड़ी मांग बढ़ रही है। इस चित्रात्मक कलाकृति ने यहां के रोजगार क्षेत्र को काफी उन्नत किया है।

आदिवासियों के महाकुम्भ के नाम से प्रसिद्ध बेणेश्वर धाम मंदिर केन्द्र पर स्थानीय लोगों के अलावा अन्य राज्य के श्रद्धालु व्यापारी यहां दर्शनार्थ व रोजगार की दृष्टि से वर्षपर्यन्त आते रहते हैं।

प्रमुख संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो. के. के. शर्मा	—	“राजस्थान में पर्यटन विकास”, 1989, जयपुर
2. राजेश कुमार व्यास	—	“ पर्यटन उद्भव एवं विकास”, 2010, जयपुर
3. कर्नल जेम्स टॉड	—	“राजस्थान का इतिहास”, 1988, जयपुर
4. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा	—	उदयपुर राज्य का इतिहास
5. डॉ. एम. एल. गुप्ता	—	उदयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन
6. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा	—	बांसवाड़ा राज्य का इतिहास
7. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा	—	डूंगरपुर राज्य का इतिहास
8. शालिनी सक्सेना	—	राजस्थान के लोक तीर्थ, जयपुर 2001
9. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा	—	प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास

सहायक ग्रन्थ सूची

1. शिव सहाय गुप्त	—	“पर्यटन के विविध स्वरूप”, 2010, नई दिल्ली
2. प्रगति प्रतिवेदन विभाग	—	1991-1992 “पर्यटन कला एवं संस्कृति विभाग”
3. वासुदेव उपाध्याय	—	प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, 1970
	—	प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर, पटना 1989
4. एस. एल. नागौरी	—	राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास
5. वेद व्यास	—	राजस्थान के लोकतीर्थ, जयपुर 1971
6. राम पाण्डये	—	राजस्थान का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
7. जे. एस. गहलोत	—	राजस्थान के प्रमुख अभिलेख, जोधपुर 1988
8. पेमाराम	—	मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन
9. आर.एस. मनोहर	—	राजस्थान के प्रमुख शक्तिपीठ, जयपुर 2010
10. एच. भीष्मपाल	—	द टेम्पल ऑफ राजस्थान, जयपुर 1969

“उदयपुर संभाग के प्रमुख मंदिर एवं उनका सांस्कृतिक महत्व”

योगेश कुमार भाटी—शोधार्थी

डॉ. एम. एल. शर्मा — शोधनिर्देशक

इतिहास विभाग, म.द.स.वि.वि. अजमेर

त्याग, तपस्या, तीर्थ व असीम वीर गाथाओं से परिपूर्ण विविध सांस्कृतिक विशेषताओं वाला राज्य राजस्थान, भारत की सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण बनाये रखने में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राजस्थान प्राचीन समय से ही तीर्थ स्थल, धर्म स्थल स्मारकों, प्रमुख देवी-देवताओं, मंदिरों, स्थापत्य कलाओं, की दृष्टि से अनेक सांस्कृतिक विशेषताओं को अपने में संजोये हुये हैं। राजस्थान का प्रत्येक भाग विभिन्न ऐतिहासिक मंदिर स्थल व उनकी विशेषताओं से भरा हुआ है, जिसमें उदयपुर संभाग के विभिन्न हिन्दु देवी-देवताओं के मंदिर व उनकी ऐतिहासिक कहानियों, घटनाओं ने राजस्थान की क्षेत्रीय संस्कृति को विकसित करने का कार्य किया है।

मैंने अपने इस शोध पत्र में उदयपुर संभाग के प्रमुख मंदिरों यथा एकलिंग जी मंदिर, (उदयपुर), श्रीनाथ जी मंदिर, नाथद्वारा (राजसमन्द), श्री सौवलिया सेठ मंदिर, मण्डफिया (चित्तौड़गढ़), गौतमेश्वर मंदिर, अरनोद (प्रतापगढ़), त्रिपुरा सुन्दरी मंदिर, (बांसवाड़ा), बेणेश्वर मंदिर (डूंगरपुर), इत्यादि को सम्मिलित किया है। मेरे द्वारा शोध निर्देशक डॉ. एम.एल. शर्मा के निर्देशन में किये जा रहे शोध कार्य के दौरान इन मंदिरों के द्वारा राजस्थान की संस्कृति को विकसित व समृद्धशाली बनाने के साथ-साथ किस प्रकार ये मंदिर स्थानीय क्षेत्रों के लोगो को रोजगार, पर्यटन आदि उपलब्ध करवाने के साथ ही स्थानीय संस्कृति को देश-विदेश में प्रसारित करने अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, का अध्ययन किया जा रहा है।

मंदिरों में स्थापित अनेक शिलालेखों, स्थापत्य कलाओं, अभिलेखों इत्यादि से इनकी ऐतिहासिकता के साथ-साथ सांस्कृतिक विशेषताओं की भी जानकारी प्राप्त होती है।

उदयपुर संभाग के मंदिर परिसरों में आयोजित होने वाले विशाल मेले श्रद्धालुओं की आस्था के प्रमुख केन्द्र होने के साथ-साथ इन मेलों, पर्वों, त्यौहारों के माध्यम से देश के अन्य राज्यों के लोगो का इन क्षेत्रों की स्थानीय संस्कृति से घनिष्ठ जुड़ाव बना रहा है। ये मंदिर आस्था के रूप में बड़े पैमाने पर लोगों को स्थानीय उत्पादों, हस्तशिल्प वस्तुओं इत्यादि के क्रय-विक्रय के प्रमुख स्थान होते हैं, जिसमें स्थानीय लोगों को रोजगार प्राप्त होता है।

1. श्रीनाथ जी का मंदिर — नाथद्वारा (राजसमन्द)

राजसमन्द जिले के नाथद्वारा कस्बे में वल्लभ सम्प्रदाय के मुख्य आराध्य श्रीनाथजी का मंदिर है। ये वैष्णव जाति का प्रमुख तीर्थ स्थल है। बनास नदी के समीप सिंहाड़ गांव के पास वि.सं. 1728 फाल्गुन बदी सप्तमी को श्रीनाथजी की स्थापना हुई। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी को श्रीनाथजी

की मूर्ति गोवर्धन पर्वत से प्राप्त हुई थी। यह मूर्ति श्रीकृष्ण भगवान के अवतरित रूप में एक सात वर्षीय बालक के प्रतीक के रूप में मानी जाती हैं।

श्रीनाथजी, श्री वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टिमार्ग के इष्टदेव के रूप में पूजे जाते हैं। भगवान नित्य-प्रतिदिन अपने भक्तों, श्रद्धालुओं को दिन में आठ बार दर्शन देते हैं, जिन्हें “झांकी” के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक झांकी के समय एक विशेष भजन-कीर्तन किया जाता है। ||1||

यहाँ पर मनाये जाने वाले प्रमुख पर्व में दीपावली पर गोवर्धन पूजा है, जिसका आयोजन विशाल पैमाने पर किया जाता है। इस आयोजन को “अन्नकूट महोत्सव” के नाम से जाना जाता है जिसका प्रारम्भ दशहरे से ही हो जाता है। ||1||

कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर यहाँ विशाल मेलों का आयोजन होता है। देश-विदेश में सैकड़ों श्रद्धालु यहाँ आते हैं। इस मंदिर व मेलों के कारण स्थानीय संस्कृति को विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहन मिलता है। यहाँ की प्रमुख स्थानीय चित्रकला शैली में निर्मित कलाकृति “पिछवाई” है, जिसकी देश-विदेश में बड़ी मांग रहती है। साथ ही यहाँ की स्थानीय संस्कृति से विश्व के अनेक देश परिचित होते हैं। ||5||

2. बेणेश्वर मंदिर धाम – (डूंगरपुर)

डूंगरपुर जिले में स्थित बेणेश्वर धाम मंदिर को वागड़ का वृन्दावन कहा जाता है। पुष्कर, हरिद्वार व गया के समान ही इस स्थान की भी धार्मिक आस्था के रूप में मान्यता है। बेणेश्वर का यह टापू क्षेत्र 240 बीघा का है जो मंदिर (बेणका) या बिलकेश्वर महादेव आदि नामों से जाना जाता है। भाटोली गांव के समीप बेणेश्वर का शिव मंदिर बना हुआ है जो महारावल आसकरण के द्वारा निर्मित करवाया था। ||4||

धर्म-आस्था की प्रतीक इस भूमि पर ब्रह्मा मंदिर, विष्णु मंदिर व शिव मंदिर अर्थात् सृष्टि के निर्माता, पालनकर्ता व संहार के भव्य मंदिर शोभायमान हैं।

दक्षिणी राजस्थान की सांस्कृतिक विशेषताओं को अपने में समेटे हुए, यहाँ लगने वाले प्रमुख मेलों-मावजी का मेला, बह्मा मंदिर का मेला इत्यादि प्रमुख हैं। बेणेश्वर धार्मिक स्थल पर प्रमुख मेला शिवरात्री पर लगता है। जिसमें दूर दूर से सैकड़ों श्रद्धालु आते हैं। इस मेलों की सांस्कृतिक कलाकृति, हस्तशिल्प वस्तुओं, स्थानीय उत्पादों को खरीदने व बेचने हेतु दूर-दूर से व्यापारी तथा यात्री आते हैं। इस मेलों के कारण स्थानीय क्षेत्र की सांस्कृतिक विशेषताओं से गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र इत्यादि राज्यों के निवासियों का उदयपुर संभाग के इस क्षेत्र से विशेष जुड़ाव रहता है। इस लिये बेणेश्वर धाम मेले को “आदिवासियों का महाकुंभ भी कहा जाता है। ||2||

3. एकलिंग जी का मंदिर – उदयपुर

उदयपुर जिले के प्रमुख मंदिरों में से एक एकलिंग जी का मंदिर है। इस मंदिर की स्थापना 8वीं सदी में उदयपुर से लगभग 25 किलोमीटर दूर “कैलाशपुरी” नामक स्थान पर महाराणा

“बापा रावल” के द्वारा की गयी थी। प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त कैलाशपुरी अरावली शृंखला की पहाड़ियों के मध्य स्थित एक अत्यन्त रमणीक स्थान हैं।

मेवाड़ के महाराणा अपने स्वयं को एकलिंग जी का दीवान मानकर उनकी पूजा-आराधना करते थे। एकलिंगजी को मेवाड़ के महाराणाओं का इष्टदेव व मेवाड़ राज्य का अधिपति माना जाता है। इस मंदिर में एकलिंग जी, भगवान शिव के प्रतीक है जिनकी स्थापित मूर्ति चौमुखी हैं जिसका प्रत्येक मुह चारों दिशाओं पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में है, जिसकी प्रतिष्ठा महाराणा रायमल ने की थी। ।।1।।

एकलिंग जी का मंदिर उदयपुर जिले के साथ-साथ पूरे राज्य व देश की आस्था का प्रमुख केन्द्र हैं। प्रतिवर्ष शिवरात्री व मकर संक्रान्ति के दिन यहाँ विशेष प्रकार से आयोजित की जानी वाली पूजा से मेवाड़ के अधिपति की आरती की जाती हैं। देश-विदेश से बड़ी संख्या में धार्मिक श्रद्धालु यहाँ इस दिन विशेष मन्त्रों मांगने आते हैं। शिवरात्री के दिन यहाँ विशाल मेलों का आयोजन किया जाता है। एकलिंगजी का मंदिर राजस्थान की विविध पारम्परिक विशेषताओं का देश-विदेश के हर क्षेत्र में हमारी सांस्कृतिक छटाओं को बिखेरता है। ।।5।।

4. त्रिपुरा सुन्दरी का मंदिर – बांसवाड़ा

बांसवाड़ा से 5 किलोमीटर दूर तलवाड़ा नाम ग्राम में भव्य प्राचीन त्रिपुरा सुन्दरी का मंदिर स्थित है। इस मंदिर में माँ भवगती की अष्टादश भुजा की मूर्ति जो कि सिंह पर सवार हैं। इस मंदिर के आस-पास पहले कभी तीन दुर्ग-शक्तिपुरी, शिवपुरी तथा विष्णुपुरी में स्थित होने एवं दिन में तीन रूपों में-प्रातःकाल में कुमारिका, मध्याह्न में सुन्दरी तथा संध्या में प्रौढ़ रूप में दर्शन देने से इन्हें त्रिपुरा सुन्दरी कहा जाता है।

इस मंदिर का निर्माण संभवतः कनिष्क के पूर्व समय का है। प्राचीन काल में इस क्षेत्र में चान्दा भाई पाता भाई लुहार (पंचाल) ने त्रिपुरा सुन्दरी मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। माँ त्रिपुरा सुन्दरी पंचाल समाज की कुल देवी हैं। ।।3।।

चैत्र नवरात्रा में इस मंदिर प्रांगण में विशेष कार्यक्रम आयोजित होते हैं, तथा विशाल मेला लगता है जिसमें राजस्थान के अलावा गुजरात, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, दिल्ली और महाराष्ट्र के लाखों श्रद्धालु शामिल होते हैं।

नवरात्रा में नौ दिन तक प्रतिदिन त्रिपुरा सुन्दरी माँ का भव्य श्रृंगार किया जाता है। पारम्परिक संस्कृति के अनुसार गोबर-मिट्टी का लेप कर वहाँ विधि-विधान पूर्वक मिट्टी के कलश में जल भरकर अखण्ड-ज्योति जलाई जाती है, जिसे घट स्थापना कहा जाता है।

प्राचीन परम्परा के अनुसार यहाँ विशाल सहसायण्डी एवं शतचण्डी यज्ञ का नियमित रूप से आयोजन करवाया जाता है, जिसमें सैकड़ों श्रद्धालु भाग लेते हैं। ।।5।।

5. श्री साँवलिया सेठ का मंदिर – मण्डफिया (चित्तौड़गढ़)

चित्तौड़गढ़ जिला मुख्यालय से 35 किलोमीटर दूर विश्व प्रसिद्ध साँवलिया सेठ का मंदिर स्थित हैं। श्री साँवलिया सेठ भगवान को श्रीकृष्ण का प्रतीक माना जाता हैं। कहा जाता है कि श्री साँवलिया सेठ वही कृष्ण भगवान की मूर्ति हैं जिसको संत शिरोमणी मीरा गीरधर गोपाल मानकर पूजा करती हैं, तथा अपना आराध्य मानती थीं। ॥1॥

श्री साँवलिया सेठ का प्राकट्य स्थल मंदिर भादसौड़ा बागुंड चौराहे पर स्थित हैं। जहाँ से साँवलिया सेठ की मूर्तियां प्रकट हुई थी। 1961 ई से जन भावनो के अनुरूप श्रद्धा व भक्ति के केन्द्र श्री साँवलिया जी मंदिर का निर्माण व विस्तार कार्यक्रम को प्रोत्साहन मिला।

सांस्कृतिक परम्परा के प्रतीक इस मंदिर स्थल पर वर्षों से कार्तिक मास की देवझूलनी एकादशी को विशाल मेला भरता हैं। इस मेले में देश-विदेश से श्रद्धालु बड़ी संख्या में श्री साँवलिया सेठ के दर्शन करने यहाँ आते हैं। भाद्रपद माह की एकादशी को भी श्री साँवलिया सेठ जी का तीन दिवसीय मेले का आयोजन होता हैं। इन मेलो में स्थानीय क्षेत्र की विशेष कलाकृतियों, उद्यमों इत्यादि से देश-विदेश के लोग परिचित होते हैं। साथ ही चित्तौड़ की अन्य ऐतिहासिक स्थलों, घटनाओं, दुर्गो, काष्ठ कला (लकड़ी) से निर्मित खिलौने वस्तुएं आदि सांस्कृतिक विशेषताओं की लोगों को जानकारी होती हैं। ॥5॥

6. गौतमेश्वर मंदिर – प्रतापगढ़

प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण प्रतापगढ़ जिले में अरणोद कस्बे से लगभग 03 कि.मी. दूरी पर सुरम्य पहाड़ियों की घाटियों के मध्य सुप्रसिद्ध गौतमेश्वर मंदिर स्थित हैं। राजस्थान में आदिवासी जाति के लोगों का दूसरा सबसे बड़ा तीर्थ स्थल के रूप में ख्याति प्राप्त गौतमेश्वर मंदिर में भगवान शिव की आराध्य के रूप में पूजा की जाती हैं। ॥5॥

अरणोद पहाड़ी क्षेत्र में चौथी व पांचवी सदी के कई प्रसिद्ध प्राचीन मंदिर स्थित हैं। गौतमेश्वर मंदिर में प्रतिवर्ष “मीणा” जाति के हजारों लोगों का विशाल जनसमूह यहाँ दर्शनार्थ निरन्तर आते जाते रहते हैं। मंदिर परिसर में स्थित जून 1585 के शिलालेख की जानकारी के अनुसार यह क्षेत्र मांडू के सुल्तान नासिरशाह के अधीन था। ॥6॥

गौतमेश्वर मंदिर पर प्रतिवर्ष वैशाखी पूर्णिमा के अवसर पर विशाल तीन दिवसीय मेला लगता हैं। जिसमें राज्य के साथ साथ गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश राज्य के अतिरिक्त देश के अन्य क्षेत्रों से सैकड़ों की संख्या में आदिवासी सम्मिलित होते हैं। हस्तशिल्प, व्यापार, पारम्परिक वस्तुओं के क्रय-विक्रय के रूप में ये विशाल मेला आदिवासियों को विभिन्न प्रकार से रोजगार उपलब्ध कराता हैं। आदिवासी संस्कृति के प्रतीक इस मेले में आदिवासी जातियों से सम्बन्धित अनेक लोक कलाएँ, लोकनाट्य, संगीत व नृत्यों का आयोजन इस मेले की प्रमुख सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं।

गौतमेश्वर मंदिर के सबन्ध में यहाँ प्रमुख मान्यता है कि यहाँ ऋषि गौतम ने कठोर तपस्या की थी। अतः यह भूमि तपोभूमि (गौतमऋषि) के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। ॥5॥

प्रमुख संदर्भ ग्रन्थ सूची

10. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा	—	उदयपुर राज्य का इतिहास
11. डॉ. एम. एल. गुप्ता	—	उदयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन
12. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा	—	बांसवाड़ा राज्य का इतिहास
13. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा	—	डुंगरपुर राज्य का इतिहास
14. शालिनी सक्सेना	—	राजस्थान के लोक तीर्थ, जयपुर 2001
15. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा	—	प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास

सहायक ग्रन्थ सूची

11. वासुदेव उपाध्याय 1970	—	प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर, पटना
12. एस. एल. नागौरी	—	राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास
13. वेद व्यास	—	राजस्थान के लोकतीर्थ, जयपुर 1971
14. राम पाण्डये इतिहास	—	राजस्थान का सामाजिक एवं सांस्कृतिक
15. जे. एस. गहलोत	—	राजस्थान के प्रमुख अभिलेख, जोधपुर 1988
16. पेमाराम	—	मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन
17. आर.एस. मनोहर	—	राजस्थान के प्रमुख शक्तिपीठ, जयपुर 2010
18. एच. भीष्मपाल	—	द टेम्पल ऑफ राजस्थान, जयपुर 1969

वंशकार समुदाय के सामाजिक मूल्य व प्रतिमान

ऋचा सेनगुप्ता

सहायक प्राध्यापक

सामाजिक सीढ़ी के सबसे निम्न भाग में जातियों का एक समूह आता है जिसे औपचारिक रूप में अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है इन जातियों के लोग बहुत सी सामाजिक और धार्मिक अपवित्रताओं के शिकार रहे हैं। जिन्हें आज कानून से तो निषिद्ध कर दिया गया है, लेकिन व्यवहार से अभी ये पूरी तरह लुप्त नहीं हुई है कुछ थोड़े लोगों को छोड़कर जिन्हें अच्छी शिक्षा प्राप्त हो चुकी है और अपनी योग्यता के बल पर काफी ख्याति प्राप्त हो चुकी है, आज भी ये सड़कों पर झाड़ू लगाना, मैला साफ करना, मरे जानवरों को इकट्ठा करना, उनकी खालें उतारकर मांस खाना आदि कार्यों में जुटे हैं। सही रोजगार के अभाव में ये किसी तरह अपना जीवन चलाते हैं।

कभी-कभी इन्हें जाति बहिष्कृत भी कहा जाता है, लेकिन यह शब्द भ्रामक है क्योंकि इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि ये हिन्दू जाति की स्वीकृत श्रेणी में स्थान पाए हुए थे। परंतु दिलचस्प बात यह है कि इनकी अपनी ही एक जातीय श्रेणी है। स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान की धारा के अंतर्गत राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया कि वह प्रत्येक राज्य के राज्यपालों से परामर्श करके प्रत्येक राज्य की अनुसूचित जातियों की घोषणा करें। इन जातियों को अधिक सम्मान देने के लिये गांधी जी ने इन्हें हरिजन कहना आरंभ किया था, जो शब्द आज भी प्रचलित है।

प्राचीन काल में ऊँच-नीच का भाव नहीं था। सब वर्ण अपने-अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण समझे जाते थे किसी एक के न रहने से वह सुचारु रूप से नहीं चल सकता था इस तथ्य को ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में आलंकारिक भाषा द्वारा समझाया गया है इस प्रकार वेदकालीन समाज में वर्ण व्यवस्था समाजशास्त्र के मूल सिद्धांतों के आधार पर विकसित हुई थी व अर्थशास्त्र का कार्य विभाजन का तत्व उसके अंतर में निहित था। जाति प्रथा का अत्यंत भयंकर अभिशाप रहा है शूद्र। माने जाने वाले स्त्री पुरुषों की दयनीय स्थिति नीचे माने जाने वाले व्यवसायों की उनकी बाध्यता और हर प्रकार से उन्हें शोषित और अपमानित किये जाने की वृत्ति जाति प्रथा की ही देन है।

सामाजिक विघटन की एक प्रमुख समस्या अनुसूचित जातियों की समस्या रही है। मानव-मानव के बीच भेद की मोटी दीवार खड़ी करने वाली यह समस्या, मानव के प्रति मानव जैसी समानता का व्यवहार रोकने वाली यह समस्या भारत के लिये कलंक का रूप ले रही है। मध्यकालीन युग में स्वामी रामानंद, संत कबीर रैदास आदि संतों ने प्रेम और भक्ति की जो

शांति दायिनी धारा प्रवाहित की उसने जातियता, भेदभाव आदि के निवारण में ठोस कार्य किया इन संतों ने आत्मा की एकता पर सबसे अधिक बल दिया इस निवारण में स्वामी शंकराचार्य, रामानुज चैतन्य, महाप्रभु, दयानंद, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण योगदान गांधी का है इन्होंने हरिजनों के उत्थान के लिये समय-समय पर जीवन की बाजी लगा दी।

उद्देश्य-प्रस्तुत शोध पत्र में इस जिज्ञासों को जानने का प्रयास किया गया है वंशकार समुदाय के सामाजिक मूल्य व प्रतिमान के आधार पर समाज में उनकी स्थिति क्या है? तथा इस अध्ययन में यह जानने का प्रयास भी किया गया है कि वंशकार चूंकि उस भारतीय जाति प्रथा के अंतर्गत एक जातीय व्यवस्था है जो अपने एक निश्चित कार्य व पेशे के अनुसार वंशकार जाने जाते हैं इनका पेशा बाँस से बनी वस्तुओं को निर्मित करना व सुअर पालन है भारतीय जातिय सामाजिक समूह हो जो प्रभावित न हुआ हो।

शब्द कुंजी- वंशकार समुदाय, सामाजिक मूल्य, सामाजिक स्थिति सामाजिक प्रतिमान।

जब समाज की प्रगति की कल्पना की जाती है उस समय सामाजिक मूल्यों का मूल्यांकन करना अनिवार्य है क्योंकि सामाजिक मूल्य समाज के वे प्रमुख तत्व हैं जिन मूल्यों के आधार पर समाज की प्रगति, उन्नति, अवनति व परिवर्तन की दिशा को निर्धारित किया जा सकता है। इन्हीं मूल्यों के आधार पर व्यक्तियों की क्रियाओं को भी निर्धारित कर समाज के प्रगति के विभिन्न मापदण्डों के आधार पर सामाजिक मूल्यों व प्रतिमानों को निरूपित किया जा सकता है।

समाज एक सावयव है जिसका निर्माण करने वाली विभिन्न इकाईयों में परस्पर प्रकार्यात्मक सम्बंध होता है जिसके आधार पर सम्पूर्ण समाज एक व्यवस्थित प्रतिमान के रूप में निरंतर क्रियाशील रहता है। सामाजिक मूल्यों व प्रतिमानों को समाज के वातावरण उसके सामाजिक, मनोवृत्ति दृष्टिकोण, व परिस्थितियों के विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर निर्धारित करना ही सामाजिक मूल्यों का सही मूल्यांकन है। प्रस्तुत अध्ययन में सामाजिक मूल्य व प्रतिमान को तीन भागों में विभाजित किया है।

1. सांस्कृतिक दृष्टिकोण
2. मनोवृत्तिक दृष्टिकोण
3. परिस्थितियाँ।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण के अंतर्गत समूह में की जाने वाली पूजा-पाठ, विवाह, खान-पान, मृत्यु, पर्दाप्रथा आदि। मनोवृत्तिक दृष्टिकोण के अंतर्गत मनोरंजन, परिवार का स्वरूप, पारिवारिक तनाव, पारिवारिक झगड़ों, का निवारण, विवाह में दहेज प्रथा, अंतर्जातीय विवाह को

मान्यता, विवाह विच्छेद, अपराध तथा परिस्थितियों के अंतर्गत व्यवस्थाएं यातायात पशुधन आदि के आधार पर शोध अध्ययन किया गया है।

किसी भी समुदाय में मानव के सामाजिक स्वरूपों की कल्पना करने हेतु उस समाज के सामाजिक संगठन, परिवार, सामाजिक वर्ग, सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था परस्पर सम्बद्धता सामाजिक व व्यक्तिक उद्देश्य सामाजिक आदर्श नियमों आदि तथ्यों को जानना आवश्यक है, आधुनिक युग में जिस तीव्रगति से समाज का परिवर्तन हो रहा है उसी गति से समाज के मूल्यों में परिवर्तन, उसकी स्थितियों व मनोवृत्तियों में परिवर्तन दिखाई देता है, क्योंकि सामूहिक आकांक्षाओं के आधार पर जब व्यक्ति अपनी स्थिति के अनुसार समाज में व्यवहार करता है वही उसके सामाजिक प्रतिमान है इस प्रतिमान व स्थिति को नियंत्रित व व्यवस्थित बनाए रखने के लिये मानव व्यवहार, सहयोग संस्कृति एवं उनकी परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण को निर्धारित करने हेतु प्रस्तुत अध्ययन में वंशकार समुदाय में धार्मिक प्रवृत्तियों के आधार पर पूजा पाठ, सामाजिक संगठनों में उनके विवाह, खानपान व मृत्यु और परम्परात्मक प्रथाओं में पर्दा प्रथा को उद्धृत किया है।

A सांस्कृतिक दृष्टिकोण-

पूजा-पाठ - वंशकार समुदाय के व्यक्तियों में भी धार्मिक प्रवृत्तियों होती है ये लोग भी हिन्दू धर्म की तरह जैसे पूजा पाठ करते हैं। इनकी ईष्ट मरही देवी है। जिनका कोई स्वरूप या आकृति नहीं है। निराकार रूप में कल्पना करके देवी की पूजा अर्चना करते हैं ये लोग किसी भी पाषाण को देवी रूप मानकर वंदना करते हैं। देवी को फूल, नारियल आदि चढ़ाते हैं तथा प्रसाद के रूप में सुअर के बच्चे जो कि इनका पशुधन है की बलि चढ़ाते हैं इस शूकर का रक्त ही विशिष्ट रूप से देवी पर अर्जित करते हैं व साथ ही शराब भी देवी को भेंट रूप में देते हैं परिवार में किसी भी विपत्ति के आने पर देवी के सम्मुख कष्ट निवारण हेतु मानता मानते हैं।

सामाजिक संगठन -

विवाह- इस समुदाय में विधि विधान द्वारा ही विवाह संस्कार किया जाता है अपने ही समाज के व्यक्तियों में आपस में विवाह होते हैं परिवार के सदस्यों के आपसी बातचीत के पश्चात पंचों के सम्मुख भी विवाह का प्रस्ताव रखा जाता है और सबके सहयोग से ही विवाह सम्पन्न होता है इनके समाज में दहेज की प्रथा है आर्थिक क्षमता के अनुसार ही वे दहेज दे पाते हैं जिनमें ५ बर्तन व हैसियत के अनुरूप नगद राशि भी देते हैं।

विवाह के पश्चात् यदि लड़की विधवा हो जाए तो उसका पुनर्विवाह नहीं हो सकता और उसे पूर्ण जीवन अकेले ही व्यतीत करना पड़ता है यदि इसके मध्य कोई व्यक्ति पसंद आए तो वह उसके साथ रह सकती है किन्तु दोबारा विवाह की रस्म नहीं होती वरन् वह लड़का उस

लड़की के घर जाकर उसे चूड़ी पहनाकर बिदा करवाता है यह कार्य पंचों के ही सम्मुख होता है।

खानपान- वंशकार समुदाय के व्यक्तियों का खानपान साधारण ही है रोटी, सब्जी, दाल, चावल ही खाते हैं इनका प्रमुख व्यंजन सुअर का मांस है मांस के साथ मदिरा पीते हैं प्रत्येक त्यौहार व खुशी के अवसर पर सुअर का मांस खाना आवश्यक है अपने खाना की व्यवस्था स्वयं करते हैं। अतः सुअर को अपने घरों में ही पालते हैं।

पर्दा प्रथा- परम्परागत प्रथाओं के अनुसार पर्दा प्रथा को समुदाय में मान्यता देते हैं। अध्ययन क्षेत्र में प्राप्त आंकड़ों यह जानकारी देते हैं कि ७४ प्रतिशत उत्तरदाता मान्यता देते हैं और २६ प्रतिशत उत्तरदाताओं की मान्यता विपरीत है।

B मनोवृत्तिक दृष्टिकोण-

सामाजिक परिस्थितियों के प्रति भावात्मक अनुभूति तथा व्यक्ति द्वारा एक विशेष विचार करने के पश्चात् की गई क्रियाओं को करने के दृष्टिकोण को हम मनोवृत्तिक दृष्टिकोण कहते हैं। जो समूहों के संबंध, अनुकूल प्रतिकूल धारणा विशेष घटनाओं, प्रेरणात्मक व संवेगात्मक प्रक्रियाएं इस व्यक्ति के मनोवृत्ति के आधार पर व्यवहार को दिशा प्रदान करती है। जो सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को विकसित करती है इस प्रभावित मनोवृत्ति में मनोरंजन, परिवार का स्वरूप, पारिवारिक तनाव झगड़ों का निवारण, विवाह विच्छेद आदि तथ्यों को उल्लेख कर मनोवृत्तिक दृष्टिकोणों को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है।

मनोरंजन - सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ में वंशकार समुदाय के व्यक्तियों का मनोरंजन विभिन्न रूपों में होता है बड़े बुजुर्ग एक स्थान पर एकत्रित होकर गपशप करते हैं सर्वाधिक मनोरंजन रेडियो व टी.वी. द्वारा करते हैं।

परिवार का स्वरूप- परिवार के स्वरूपों में ८६ प्रतिशत उत्तरदाता एकाकी परिवार के सदस्य हैं। जबकि १४ प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो संयुक्त परिवार के सदस्य हैं।

पारिवारिक तनाव - परिवारों में तनाव के प्रमुख कारण आर्थिक व सामाजिक है आर्थिक कारण से ही परिवार में अधिक तनाव उत्पन्न होते हैं परिवार में हुए तनाव का निवारण वे स्वयं ही निपटाते हैं और ज्यादा उलझे झगड़ों का निवारण पंचों द्वारा होता है।

दहेज व विवाह विच्छेद - वंशकार समुदाय में भी दहेज का प्रचलन है विवाह के समय यह एक प्रमुख समस्या रहती है इस समुदाय में सभी निर्णय पंच द्वारा होते हैं अतः विवाह विच्छेद के संबंध में भी किया गया निर्णय सबको स्वीकार होता है।

C परिस्थिति-

इस अध्याय में परिस्थितियों का उल्लेख कर सामाजिक मूल्यों व उसके प्रतिमानों में यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि वे अपनी मान्यताओं के आधार पर उनकी

अभिव्यक्तियों, सामाजिक सहयोग, सामाजिक, मानसिक धारणाएं व समाज की प्रतिबद्धता को बनाए रखने के लिये वे किन परिस्थितियों में अपना गुजारा करते हैं क्योंकि किसी भी मनुष्य के व्यवहार आचरण व उसके मानक इस व्यक्ति की स्थिति व परिस्थितियों के आधार पर मान्य होता है।

समुदाय अधिकतर एकाकी परिवार में ही रहना पसंद करते हैं व आर्थिक तनाव से परिवार में तनाव उत्पन्न होता है अंतर्जातीय विवाह को समुदाय में मान्यता देने वालों की संख्या नगण्य है समुदाय शहर के वातावरण से प्रभावित होते हुए भी प्रतिकूलमत परिस्थितियों में जीवन बसर करता है मुख्यतः पानी की व्यवस्था के लिये नल, कुंआ आदि किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं है लोगों को प्रतिकूल परिस्थितियों में रहना पड़ता है व्यक्तिगत व सामाजिक रूप से आर्थिक अभावग्रस्त एवं ऋणी व तनाव की परिस्थितियों में अपना जीवन बिताते हैं।

अंत में इस अध्ययन में वंशकार समुदाय के सामाजिक मूल्य व प्रतिमानों को ज्ञात करने हेतु सामाजिक मूल्यों को तीन अवस्थाओं में निर्धारित किया है। सांस्कृतिक, मनोवृत्तिक व परिस्थिति को सांस्कृतिक अवस्था के अंतर्गत ये वंशकार समुदाय हिन्दू धर्म की तरह पूजा पाठ करते हैं किन्तु इनकी ईष्ट देवी मरही देवी की कोई प्रतिमा नहीं होती है किसी एक पत्थर के टीले को देवी स्वरूप मानकर फूल, नारियल चढ़ाकर अपनी मान्यताओं के आधार पर पूजा करते हैं सामाजिक संगठनों में विवाह एक ऐसी संस्था है जिसके आधार पर समुदाय में आपस में संबंध व व्यवहारों को बनाए रखा जा सकता है चूंकि आर्थिक स्थिति मिश्रित होने के कारण दहेज की प्रथा स्वरूप एक निमित्त मात्र है।

भारतीय जाति प्रथा से शायद ही ऐसा कोई सामाजिक समूह हो जो प्रभावित न हुआ हो अतः उसके स्वरूप जटिल व रोचक होते हुए भी हिन्दू धर्म में यह एक अभिव्यक्ति है कि समय के परिवर्तन को साथ ही साथ इसका स्वरूप भी परिवर्तित होने लगता है अतः इस स्वरूप पर यदि अध्ययन समय व वर्तमान समय में तुलनात्मक रूप से अध्ययन कर ज्ञात हुआ कि समुदाय के सामाजिक मूल्य व प्रतिमान के अंतर्गत सांस्कृतिक दृष्टिकोण में परम्परागत प्रथाओं के अनुसार पर्दा प्रथा के प्रचलन में परिवर्तन हुआ है अपने क्षेत्र से बाहर निकलते हुए महिलाएं पर्दा नहीं करती है साथ ही विधवा पुनर्विवाह पर भी समुदाय के बड़े बुजुर्गों की सहमति होने लगी है।

मनोवृत्तिक दृष्टिकोण में मनोरंजन के साधनों में भी बदलाव है जैसे रेडियो के अलावा टी.वी., युवा वर्ग सिनेमाघर जाकर मनोरंजन करते हैं अन्य झगड़े, दहेज प्रथा, पारिवारिक तनाव, परिवार के स्वरूपों में किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ है। सरकार द्वारा चलायी जा रही योजना इन समुदायों तक पहुंच रही है। जिससे समुदायवासी लाभान्वित हो रहे हैं। सर्वाधिक लाभ शिक्षा के क्षेत्र, स्वास्थ्य के क्षेत्र में था दैनिक जीवन की आवश्यकता पानी बिजली

1. पंडित, पुरुषोत्तम दास गौड़, 1934 अछूत के पत्र
2. चित्रा तिवारी, 1963 शूद्र इन मनु अध्याय 11, पृ.37
3. आन्द्रे ब्रेटिल, 1965-66 कास्ट ओल्ड एण्ड न्यू, पृ.87
4. डॉ शिवदत्त ज्ञानी, 1967, वेदकालीन समाज
5. डॉ. आर.एस.शर्मा, 1958, शूद्राज इन एनशेंट इंडिया
6. महात्मा गाँधी, वेद शिरोमणी, 1933 मंदिर प्रवेश पर अस्पृश्यता निवारण
7. कोजट लेनिस, 1956 द फंक्शन ऑफ सोशल कान्फ्लिक्ट,
8. डी.एन.मजूमदार, 1978 रेस एंड कल्चर ऑफ इंडिया, पृ.226
9. जे.एच.हर्टन, कास्ट इन इंडिया, पृ.206
10. श्री कृष्णदत्त भट्ट, 1977, सामाजिक विघटन और भारत पृ.469
11. टालकर पारसन्स- 1958-1980 सोशल स्ट्रक्चर

संभ्रांत परिवेश की लेखिका : डॉ. श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री

ज्योति शर्मा

शोधार्थी, महारानी श्री जया राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)

शोध सारांश -

वरिष्ठ लेखिका कृष्णा अग्निहोत्री का लेखन जीवन के झंझावतों एवं संघर्षों से तपकर निकला है। वे अत्यंत जुझारू व प्रचलित पुरुष निर्मित परम्पराओं और रूढ़ियों की भंजक रही हैं। उम्र के नवें दशक में प्रवेश कर वे शरीर से अवश्य तनिक शिथिल हुई हैं, लेकिन उनकी कलम न थकी है, न रूकी है। प्रस्तुत पत्र में कृष्णा अग्निहोत्री के व्यक्तित्व व कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है।

जिन्दगी तो सभी जीते रहते हैं, पर कुछ का जीवन संश्लिष्ट व अन्यो का खुला हुआ रहता है। बालक तो भीतर से साफ होता है, पर सामाजिक घटनाएँ, पारिवारिक संस्कार उसे कभी नैतिक खोलों से दुबकाते हैं, तो कभी वह डर और प्रताड़ना के कारण अपने को समेट लेता है ऐसी ही स्थिति में कृष्णा अग्निहोत्री का जीवन गुजरा हुआ है। अपने जीवन में लेखिका ने जो कुछ देखा, भोगा और अनुभव किया उसको अपनी ईमानदारी तथा प्रमाणिकता के साथ अपनी रचनाओं में विविध पात्रों के माध्यम से व्यक्त भी किया है।

संकेताक्षर : झंझावत, संघर्ष, जुझारू, रूढ़ियाँ, शिथिल, संश्लिष्ट, प्रताड़ना, प्रमाणिकता।

डॉ. श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री पिछले दो दशक से हिन्दी साहित्य की सेवा करती चली आ रही हैं। साप्ताहिक हिन्दुस्तान और धर्मयुग के अतिरिक्त भी इनकी दर्जनों कहानियाँ देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। इनके टीन के घेरे, गलियारे, याही बनारसी रंग बा, नपुंसक, विरासत, पारस, जै सियाराम आदि चर्चित कहानी संग्रह हैं।

‘बात एक औरत की, बौनी परछाइयाँ, टपरेवाले, टेसू की टहनियाँ, कुमारिकाएँ, अभिषेक नीलोफर, नानी अम्मा मान जाओ, बित्ता भर की छोकरी, मैं अपराधी हूँ , इनके उपन्यास हैं।

बच्चों के लिए भी कृष्णा जी ने कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं जिनमें नीली आँखों वाली गुड़िया, बुद्धिमान सोनू और सतरंगी बौने नामक पुस्तकें काफी लोकप्रिय हुई हैं। इन्होंने ‘ख्याति’ नामक एक समीक्षात्मक पुस्तक भी लिखी है।

डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री हिन्दी की महत्त्वपूर्ण कथा लेखिकाओं में चर्चित हैं। कतिपय समीक्षक आरोप लगाते हैं कि उनके अनुभव का दायरा सीमित है और वे प्रखर भाषा इस्तेमाल नहीं कर पातीं। आलोचनाओं और निन्दाओं की परवाह किये बगैर वे बराबर लिखे जा रही हैं और निरंतर छप रही हैं।

लघुकथा से लेकर उपन्यास तक फैली हुई डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री का जन्म 8 अक्टूबर 1934 को नसीराबाद, राजस्थान में हुआ। डॉ. कृष्णा जी का पारिवारिक माहौल प्रारम्भ से ही

सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक रहा और ऐसी स्थिति में वही सब उनके साहित्य में भी दिखलाई पड़ता है। आपकी पहली कविता ३ वर्ष की उम्र में छपी बतौर पारिश्रमिक ५ रुपये भी मिले और यहीं से प्रेरणा की शुरुआत हुई। १४ वर्ष की उम्र में ही उन्होंने शरत चन्द्र, प्रेमचन्द्र, बंकिम चन्द्र आदि पढ़ डाले। माता-पिता के संस्कारों के साथ यहीं से उनकी लेखन यात्रा प्रारम्भ हो गई। पति की तानाशाही, अलगाव और इस तरह सारी परिस्थितियों का निर्माण होता चला गया कि उनका झुकाव साहित्य की ओर बढ़ता चला गया।

कृष्णा जी का मानना है- “अत्याचार आदर्श नहीं होते, परम्पराएँ मनुष्य को रौंदने के लिए नहीं बनती जिन्दगी के उदास लम्हें बार-बार के उतार-चढ़ाव के फलस्वरूप इस संसार को पार करना पड़ता है। लिखना भी आज राजनीति से जुड़ गया है, जुड़े होने के बाद अपनी अलग पहचान बनाना जरा मुश्किल ही है। स्वतंत्रता पूर्व या कुछ बाद के लेखकों की साहित्यिक लड़ाई एक मोर्चे की थी और आज के लेखक के सामने सबसे अधिक चुनौतियों का सामना है। भारत की साहित्यिक राजनीति में भी भ्रष्ट कालखण्ड का प्रभाव है और इससे ईमानदार लेखक की ना तो इमेज बन पाती है और ना ही उससे उसका सही मूल्यांकन हो पाता है।”¹

“कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियाँ किसी ढाँचे को तोड़ने की जगह उसकी कमजोरी व्यक्त कर और क्या होना चाहिए- इस कथन की अभिव्यक्ति करती है। जीवन दृष्टि का सही ढाँचा क्या है इसे ये सहजता और मार्मिकता से कहना चाहती हैं। उनका लक्ष्य बदलते परिवेश में समकालीन विसंगतियों को भी जगी हुई चेतना के साथ प्रस्तुत करना है। इनकी कहानियाँ उन पीढ़ियों को भी व्यक्त करती हैं जिनके कारण हम छोटी-छोटी खुशियों से वंचित रह जाते हैं। आज के जीवन के विघटित मूल्यों की बात भी गहरी संवेदना से व्यक्त करना उनका प्रयास रहा है। चाहे उनकी बाद की कहानियाँ हों या प्रारम्भिक, उनका जायज़ा लेना अपने आप में एक दिलचस्प अनुभव है।”²

परिवार और समाज के प्रत्येक वर्ग से वंचित ऐसे अनेक कड़वे-मीठे अनुभवों को कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने कथा साहित्य में तराशा है। उनका लेखन न तो मताग्रहों का प्रचार है, न ही पाठकों को क्षणिक रूप से उत्तेजित या उनका मनोरंजन करने का साधन है। उनके लेखन का उद्देश्य समाज-सापेक्ष होता है और अपने अनुभवों की पूँजी से पाठकों को जीवन दृष्टि का सही ढाँचा बताने के लिए सहजता और मार्मिकता के केनवास पर रचनाएँ पेन्ट करती है। डॉ. अग्निहोत्री के अधिसंख्य उपन्यासों तथा कहानियों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर होता है तथा वे सामान्यतः यह उजागर करना चाहती है कि पुरुष एक जटिल प्राणी होता है जो स्त्री का जिस रूप में चाहे जहाँ-तहाँ अवसर मिलने पर दोहन-पर-दोहन करता है। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा भी है- “प्रगति के नगाड़े बजाकर इक्कीसवीं सदी तक पहुँच आने वाला भारतीय पुरुष समाज अब भी बुद्धिजीवी, कलाकार, प्रतिभाशाली महिला

और साहित्यकार को वास्तविक सम्माननीय दृष्टि से नहीं देखता। उसके लिए वह इस्तेमाल की वस्तु है। नाटक, प्रेम, बहकाव और जोर जबरदस्ती से वह उसे अपने अधीन करना चाहता है।।”³

विभिन्न कथ्यों तथा परिवेश के संदर्भ में कृष्णा जी की रचनाएँ अपनी अलग पहचान रखती हैं। उन्होंने सामाजिक विसंगतियों तथा राजनीतिक पक्षपात, भ्रष्टाचार तथा विशेषण के लिये लालायित जन सामान्य को भ्रमित करने वाले राजनेताओं को अपनी चुटीली, चुभती, व्यंग्यात्मक शैली से बेनकाब किया है। धार्मिक पाखंड तथा आडम्बर नौकरशाही या समाज सेवा ऐसे विभिन्न क्षेत्रों की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति कृष्णा जी के शिल्प तथा शैली को उजागर करती है।

”कृष्णा अग्निहोत्री और कथाकार डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री को शायद अपने नाम के साथ जुड़े ‘अग्निहोत्री’ शब्द का ही शाप लगा है कि उनकी जिन्दगी, एक अनवरत अग्निहोत्र ही बनकर रह गई। साहित्य संसार में भी और खुद के जीवन संसार में भी। निरंतर आहुतियाँ ही दी है उन्होंने और आज भी अग्निहोत्र छोड़ा नहीं है। यह जलना शायद नियति है उनकी।”⁴

कृष्णा अग्निहोत्री..... दोगली सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य व्यवस्था से संघर्षरत नारी अस्मिता का एक ऐसा चेहरा है जिसकी कोमल रेखाएँ, सरलता सहज और सहज मुस्कान सब कुछ छीन कर भी कोई नहीं छीन सका। समाज के धिनौने वर्ग द्वारा ताक-ताक कर फेंके अपमान, उपेक्षा लांछन, कूट कटु, आरोपों के तीखे तेजाब जिस चेहरे पर कोई कालोंच, कोई निशान एक खरोंच तक नहीं छोड़ सका। न कोई ताकत न कोई दबाव उनके पतले ओठों से फूटती, मन के अलाव में तपी गलत कहने वाली सच्ची तीखी आवाज का गला घोट सकीं। कृष्णा जी ने अपनी खुद्दारी भरी जिन्दगी में गलत चीजों के साथ कभी समझौता नहीं किया। जहाँ झूठ, छल-कपट, दोगलापन, खोखलापन, फरेब है वहाँ कृष्णा जी नहीं हो सकतीं, उन्हें वहाँ ढूँढ़ना बेकार है, पाना दुर्लभ है।

कृष्णा जी संघर्षमय जिजीविषा समाज से मिली बड़ी से बड़ी चुनौती और आघात से नहीं हारी वें जहाँ भी हारी हैं, अपने से ही अपने सहज विश्वासी मन, अपने बेहद संवेदनशील हृदय की माँ और नारी से हारी हैं।

महिला साहित्यकार होने के कारण आपको जाने कितनी मानसिक यातनायें, कुत्सित टिप्पणियाँ सहनी पड़ी हैं। लेकिन हर चोट का डटकर मुकाबला करते हुए आप निरंतर आगे बढ़ी हैं। गलत के आगे सिर न झुकाना आपका स्वभाव रहा है। मन से आप बेहद संवेदनशील, भावुक और सहृदय रहीं हैं।

कृष्णा जी के लेखन की यह विशेषता है कि आपने जो भी लिखा है काल्पनिक नहीं है वरन् सत्य घटित, स्वयं का अनुभव व सच्चाई को ही लिखा है। सच्चाई की जीत और खोखलेपन व दिखावा आंडम्बर को आपने निर्वस्त्र किया है।

मध्यप्रदेश की लेखिकाओं में कृष्णा अग्निहोत्री अलग से पहचानी जा सकती है इसलिए कि उन्होंने अपनी हर नयी कृति में अपनी पिछली सीमा का अतिक्रमण भी किया है और संभावनाओं का विस्तार भी सौंपा है।

वे कहती हैं कि संघर्ष ही जिन्दगी है, व्यक्ति को निराश नहीं होना चाहिए। आपकी इन्हीं बातों से महिलाओं को संबल मिलता है। कृष्णा जी जो घटता जाता है उसे लिखती जाती हैं। निरंतर उनकी कलम इस अवस्था में भी चलती रहती है। आपने संपूर्ण जीवन को कलम के सहारे से बाँट रखा है। लेखनी की व्यवस्तता ही उनकी सहेली है, पन्नों में उचटती स्याही की लम्बाईयाँ समाज को नई प्रेरणा नया उत्साह तथा शिक्षा प्रदान करती है।”⁵

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नहीं है दिल मेरा, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2010 पृ.सं. 61
2. डॉ. नीहार गीते, कृष्णा अग्निहोत्री : सम्पूर्ण साहित्य का मूल्यांकन, अमन प्रकाशन, कानपुर 2015, पृ. सं. 20
3. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नहीं है दिल मेरा, पृ. सं. 72
4. डॉ. नीहार गीते, कृष्णा अग्निहोत्री : सम्पूर्ण साहित्य का मूल्यांकन, पृ.सं. 42
5. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नहीं है दिल मेरा, पृ. सं. 95

भारतीय किसान और उनकी मूलभूत समस्याएं

डॉ कल्पना वर्मा

व्याख्याता (कॉमर्स)

राजकीय कन्या महाविद्यालय अजमेर राजस्थान

प्रस्तावना :-

देश की 70 फीसदी आबादी गांवों में रहती है और कृषि पर ही निर्भर है। ऐसे में किसानों की खुशहाली की बात सभी करते हैं और उनके लिए योजनाएं भी बनाते हैं किंतु उनकी मूलभूत समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती है किसानों की समस्याओं को उठाते हुए उनके शीघ्र निराकरण की जरूरत है। स्वतंत्र भारत से पूर्व और स्वतंत्र भारत के पश्चात एक लम्बी अवधि व्यतीत होने के बाद भी भारतीय किसानों की दशा में सिर्फ 19-20 का ही अंतर दिखाई देता है। बढ़ती आबादी, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण कृषि योग्य क्षेत्रफल में निरंतर गिरावट आई है।

भारत कृषि प्रधान देश है, परन्तु यहाँ कृषि की दशा सन्तोषजनक नहीं है। कृषि उत्पादन में वृद्धि पूर्व में जनवृद्धि दर से भी कम रही। इसी कारण 1975 तक देश की खाद्य समस्या जटिल बनी रही। निम्न स्तर पर सीमित विकास के बावजूद आज भी भारतीय कृषि परम्परावादी है। भारतीय किसान खेती व्यवसाय के रूप में नहीं करता है, बल्कि जीविकोपार्जन के लिये करता है। कृषि की पुरानी परम्परागत विधियों, पूंजी की कमी, भूमि सुधार की अपूर्णता, विपणन एवं वित्त संबंधी कठिनाइयों, आदि के कारण भारतीय कृषि की उत्पादकता अत्यन्त न्यून है। अब नई पीढ़ी में शिक्षा एवं कृषि को कमाई का साधन मानने की प्रवृत्ति से भी कृषि एवं कृषक की आर्थिक दशा में कुछ सुधार आने लगा है। भारतीय कृषि की प्रमुख निम्न समस्याएँ ऐसी हैं, जिनसे भारतीय कृषि शताब्दियों से पीड़ित है

भूमि पर जनसंख्या का निरंतर बढ़ता हुआ भार:-

भारत में जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ रही है, जो 2017 में 134 करोड़ को पार कर चुकी है। अतः भूमि पर जनसंख्या का भार निरंतर बढ़ता जा रहा है। जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति पलब्ध भूमि का औसत कम होता जा रहा |

एक ओर जनसंख्या का भार भूमि पर बढ़ता जा रहा है, प्रति व्यक्ति खेती योग्य भूमि कम होती जा रही है, दूसरी ओर भूमि का वितरण अत्यन्त असंतुलित है। देश में आज भी किसानों के पास समस्त कृषि भूमि का 62 प्रतिशत है तथा 90 प्रतिशत किसानों के पास कुल कृषि भूमि का केवल 38 प्रतिशत है।

खाद का दुरुपयोग:-

भारत में पशुओं की संख्या अत्यधिक है और उनके गोबर तथा मूत्र से प्रतिवर्ष 2.89 करोड़ टन खाद प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त कम्पोस्ट तथा अन्य बेकार वस्तुओं से लगभग 93 लाख टन खाद उपलब्ध हो सकती है। दुर्भाग्य से गोबर का अधिकांश भाग ईंधन के रूप में जला दिया जाता है, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य सस्ते ईंधन का अभाव है। फलतः खेतों को पर्याप्त मात्रा में खाद नहीं मिल पाती, जिससे उत्पादन की स्थिति अच्छी नहीं है।

सिंचाई के साधनों का सीमित विकास:-

भारतीय कृषि प्रधानतः मानसून पर निर्भर है, क्योंकि आज भी कुल कृषि योग्य भूमि के 45 प्रतिशत में सिंचाई होती है। देश में वृहत और मध्यम सिंचाई योजनाओं के जरिए सिंचाई की पर्याप्त संभवनाओं का सृजन किया गया है। मानसून पर इतनी अधिक निर्भरता का प्रभाव यह होता है कि देश के अधिकांश भाग की कृषि प्रकृति की दया पर निर्भर है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि जब तक सिंचाई की व्यवस्था नहीं होती, तब तक भूमि में खाद देना भी सम्भव नहीं है, क्योंकि खाद का यथोचित प्रयोग करने के लिये काफ़ी जल चाहिए, अन्यथा सामान्य खेती के सूखने का भी भय रहता है। सिंचाई की यह कमी कम वर्षा वाले पठारी भागों एवं सारे उत्तर पश्चिमी भारत में

विशेष रूप से महसूस की जाती है, क्योंकि औसत वर्षा 100 सेण्टीमीटर से भी कम एवं वर्षा की अनिश्चितता 35 प्रतिशत से भी अधिक रहती है।

कृषि साख संस्थाओं की कमी:-

भारत में कृषि कार्यों के लिए करोड़ों रुपये की साख की आवश्यकता प्रतिवर्ष होती है। कुछ दशक पूर्व तक इसकी पूर्ति महाजन, साहूकार एवं देशी बैंकरो द्वारा की जाती थी, किन्तु अब नियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कृषि एक प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र घोषित किया जा चुका है। अब देश की बैंकिंग व्यवस्था अपने कुल ऋणों का एक निश्चित प्रतिशत इस क्षेत्र के लिए देने को बाध्य है। इस समय बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋण का लगभग 41 प्रतिशत प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को दिया जा रहा है। इसमें कृषि का प्रतिशत 17 है।

कृषि रोग आदि:-

कभी-कभी फसलों की अनेक बीमारियाँ, बाढ़, ओले, पाला, शीतलहर, विभिन्न कीड़े मकोड़े, चूहे व वन्य जीव भी फसलों को हानि पहुँचाते रहते हैं। जिससे भूमि का वास्तविक उत्पादन बहुत कम रह जाता है। इन तत्वों को वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से ही नियंत्रित किया जा सकता है।

विक्रय व्यवस्था:-

भारतीय किसान की एक महत्वपूर्ण समस्या यह रही है कि उसे अपना माल मण्डियों में बेचना पड़ता है। ये मण्डियाँ या तो बहुत दूर हैं, जहाँ पहुँचने के लिये यातायात के साधन पर्याप्त नहीं हैं या इनके विक्रय की व्यवस्था ठीक नहीं है। अतः किसान को अपने माल के उचित दाम प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इस कठिनाई के कारण ही कभी-कभी तो वह अपना माल ग्राम के साहूकार को ही बेंच देता है, जिससे उसे और भी कम मूल्य प्राप्त होता है।

कृषि शिक्षा:-

जिस देश में 1.34 अरब के लगभग आबादी निवास करती है और देश की 70 प्रतिशत आबादी कृषि पर आधारित है, उस देश में कृषि शिक्षा के विश्वविद्यालय और कॉलेज नाम-मात्र के हैं, उनमें भी गुणवत्तापरक शिक्षा का अभाव है। भूमंडलीकरण के दौर में कृषि पर आधुनिक तकनीकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से जो इस देश में आती हैं उसे कृषि का प्रचार-प्रसार तंत्र उन किसानों तक पहुँचाने में लाचार नजर आता है, यह गंभीर और विचारणीय विषय है। शिक्षा का ही दूसरा पहलू जिसे प्रबंधन शिक्षा की श्रेणी में रखा जा सकता है, नाम-मात्र भी नहीं है। राष्ट्रीय अथवा प्रदेश स्तर पर कृषि शिक्षा के जो विश्वविद्यालय हैं, उनमें शोध संस्थानों के अभाव में उच्चस्तरीय शोध समाप्त प्रायः से हैं। चाहे संस्थानों का अभाव हो, वित्तीय एवं तकनीकी सुविधाओं का अभाव हो अथवा गुणवत्तापरक शिक्षकों का अभाव हो, जिसके कारण एक हरित क्रांति के बाद फिर कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ। किसान ईश्वरीय कृपा पर ही आज भी निर्भर हैं। कृषि शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार ग्रामीण क्षेत्रों में होना चाहिए और प्रत्येक शिक्षण संस्थान में न्यूनतम माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा अवश्य होनी चाहिए। उन लोगों का उपयोग कृषि के निचले स्तर के व्यापक प्रचार-प्रसार और उत्पादन वृद्धि में किया जाना चाहिए।

क्रय-विक्रय व्यवस्था:-

विडंबना है कि जब भी कृषि उत्पाद बाजार में आता है तो उसके मूल्य निरंतर गिरने लगते हैं और मध्यस्थ सस्ती दरों पर उसका माल क्रय कर लेते हैं जिससे कृषि घाटे का व्यवसाय बना हुआ है। दुर्भाग्य है कि संबंधित लोग औद्योगिक क्षेत्रों के उत्पादन की दरें लागत, मांग और पूर्ति का ध्यान में रखते हुए निर्धारित करते हैं किंतु किसान की जिंगों का मूल्य या तो सरकार या क्रेता द्वारा निर्धारित किया जाता है उसमें भी तत्काल नष्ट होने वाले उत्पाद की बिक्री के समय किसान असहाय दिखाई देता है। ऐसी दशा में क्रय-विक्रय व्यवस्था को मजबूत और पारदर्शी बनाया जाना चाहिए और उसके उत्पाद का मूल्य भी मांग, पूर्ति और लागत के आधार पर किसान को निर्धारित कर लेने देना चाहिए। सर्वविदित है कि किसानों का कहीं उत्पाद इतना अच्छा और अधिक हो जाता है कि सड़ने लगता है और किसान उसे फेंकने को मजबूर हो जाता है और कभी-कभी उत्पाद इतना कम होता है कि उसे मध्यस्थ सस्ती दरों पर क्रय कर उच्च दरों पर बिक्री कर बीच का मुनाफा ले लेता है और किसान ठगा-सा रह जाता है।

(i) प्रक्रिया इकाइयों की स्थापना-

सरकार को यह भी ध्यान देना चाहिए कि किसान का जो उत्पाद है , वह किस प्रकार का है और उसकी उपयोगिता क्या है। जैसे हर वर्ष हमारे देश में विभिन्न भागों में विभिन्न फसलें खेतों में ही नष्ट हो जाती हैं। एक क्षेत्र में आलू गोदामों में छोड़ देते हैं या मिट्टी में दबा देते हैं , लहसुन की उपज लागत न मिलने के कारण खेतों में दबा रहने देते हैं, आम जैसे अनेक फल सस्ती दरों पर बिक्री करने अथवा बिना मूल्य लिए वितरित करने के लिए किसान मजबूर होता है। कहीं-कहीं प्याज, केला, अंगूर और अनेक सब्जियां नष्ट हो जाती हैं जबकि देश के दूसरे भागों में इनकी आवश्यकता होते हुए भी महंगे परिवहन के कारण उपलब्धता सुनिश्चित नहीं करायी जा पाती है। जहां जिस क्षेत्र में किसी चीज का उत्पादन अधिक है , उन क्षेत्रों में उत्पाद से संबंधित प्रक्रिया इकाइयां लगाई जानी चाहिए जिससे उत्पाद को खराब होने से बचाया जा सके तथा उसका उचित मूल्य भी किसान को मिल सके। इस व्यवस्था का पूरे देश में नितांत अभाव है।

(ii) भंडारण व्यवस्था—

किसान का ऐसा उत्पाद जो विभिन्न समितियों के माध्यम से क्रय किया जाता है , उसे किसी न किसी गोदाम में रखने की व्यवस्था अथवा निर्यात की व्यवस्था की जानी चाहिए। उस क्रय किए गए उत्पाद की ग्रेडिंग व्यवस्था भी होनी चाहिए ताकि कुल उत्पाद की मात्रा पर उसके ग्रेड के अनुरूप बिक्री मूल्य मिल सके।

कृषि आधारित उद्योग-धंधे :-

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित ऐसे उद्योग-धंधों की स्थापना की जानी चाहिए जिनमें न्यूनतम प्रशिक्षण से स्थानीय आबादी के व्यक्तियों को रोजगार मिल सके तथा किसानों के उत्पाद की उसमें खपत हो सके जैसे - फ्लोर मिल, राइस मिल, तेल कोल्हू, फलों से बनने वाले विभिन्न सामान, पापड़, बड़ियां, चिप्स एवं आचार आदि के उद्योग लगने चाहिए तथा उनको देश के दूसरे भागों में भेजने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। ग्रामीण बेरोजगारों को ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार उपलब्ध कराने के लिए वहां के स्थानीय उत्पाद को ध्यान में रखते हुए लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना भी की जानी चाहिए।

निष्कर्ष :-

किसानों की मांग मुफ्त बिजली और पानी नहीं है , बल्कि बिजली की निर्बाध आपूर्ति के लिए हैं जिसके लिये वे भुगतान करने के लिए तैयार हैं। पंजाब जैसे राज्यों में, पहली बार में हरित क्रांति से किसानों को बहुत मदद मिली लेकिन कम कीमतों में बम्पर फसलों की उपज के कारण उनके काम में बधाओ ने आना शुरू कर दिया। भारतीय किसानों की हालत में सुधार किया जाना चाहिए। उन्हें खेती की आधुनिक विधि सिखाया जाना चाहिए। उन्हें साक्षर बनाया जाना चाहिए। उनको पढ़ा लिखा बनाना चाहिए। वह हर संभव तरीके में सरकार द्वारा सहायता प्रदान की जानी चाहिए। छोटे किसानों ने भी कुछ कुटीर उद्योग शुरू करने का निर्णय ले लिया। फसल चक्र प्रणाली और अनुबंध फसल प्रणाली कुछ राज्यों में शुरू कर दिया गया। इस तरह के कदम किसानों को सही दिशा में ले जाते और लंबे समय तक किसानों करने में मदद करते। भारत का कल्याण किसानों पर ही निर्भर करता है।

संदर्भ :-

1. भारत में आर्थिक पर्यावरण —	डॉ. वी. के. वशिष्ठ / डॉ. पी. सी. भिण्डा
2. भारतीय अर्थव्यवस्था —	रुद्रदत्त सुन्दरम
3. Bharatiya Arthvyavastha	Ramesh Singh
4. Indian Economy	P. K. Dhar
5. प्रतियोगिता दर्पण (अर्थशास्त्र विशेषांक)	
6. Irrigation in India – Wikipedia	

अलङ्कारों का इतिवृत्त

डॉ० अर्पिता चन्द्रा

इलाहाबाद

कवि और काव्य शब्द वैदिक काल से ही प्रयुक्त होते रहे हैं— कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः। ऋग्वेद में कवि शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। शुक्ल यजुर्वेद में संसार के स्रष्टा का नाम कवि है। इसकी सदा नवीन एवं अमर रचना काव्य कहलाती है।

प्राचीन काल में साहित्यशास्त्र के लिये 'साहित्यविद्या' अथवा 'काव्यालङ्कार' नाम प्रचलित था। 'अग्निपुराण' में कहा गया है कि विष्णु ही सर्ग के आदि कारण हैं और शब्दालङ्कार रूप में स्थित है। राजशेखर ने 'काव्यामीमांसा' में स्वयम्भू ब्रह्मा को काव्य का स्रष्टा बताया है। उपकारक होने से अलङ्कारशास्त्र को सप्तम वेदाङ्ग कहा गया है— 'उपकारत्वादलङ्कार सप्ताङ्गम् इति यायावरीयः'।

राजशेखर अलङ्कारविद्या को वेदार्थ समझने के लिये अपरिहार्य मानते हैं। विश्व के आदिग्रन्थ और अपौरुषेय ऋग्वेद में भी अनेक स्थलों पर उपमा वाचक लुप्तोपमा, अतिशयोक्ति और रूपक आदि अलङ्कारों की स्वाभाविक छटा द्रष्टव्य है। यथा—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनशनन्नन्यो अभिचाकशीति ।।

संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास में महामहोपाध्याय पी०वी० काणे महोदय के अनुसार कुछ मन्त्रों में श्लेष अलङ्कार की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। पाणिनि ने भी उपमान और उपमेय आदि से सम्बन्धित अनेक सूत्र लिखे हैं। आचार्य भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' के सोलहवें अध्याय में काव्यशास्त्र का निरूपण किया है। उन्होंने नाट्यकृति के सौन्दर्य को अलङ्कार कहा— अलङ्कारास्तु विज्ञेयाश्चत्वारो नाटकाश्रयाः।

सौन्दर्य की परख करने वाले शास्त्र को प्रायः अलङ्कारशास्त्र कहा जाता है। आचार्यों को अलङ्कार संज्ञा इतनी प्रिय लगी कि सभी काव्य वैशिष्ट्यों को अलङ्कार कहा जाने लगा। भामह और उद्भट ने भी अपने ग्रन्थ का नाम क्रमशः 'काव्यालङ्कार' और 'काव्यालङ्कारसारसंग्रह' रखा। वामन में 'काव्यालङ्कारसूत्र' की रचना की तो रुद्रट ने काव्यालङ्कार। जबकि इन ग्रन्थों ने अलङ्कारों के अतिरिक्त गुण, दोष आदि काव्यमार्गों का भी विवेचन किया। काव्य में अलङ्कारों के महत्त्व को लेकर दण्डी और भामह में विचारसाम्य है। अग्निपुराण में अलङ्कार से रहित सरस्वती को विधवा के समान चित्तापकर्षक बताया गया है। अर्थालङ्काररहिता विधवैव सरस्वती।

अलङ्कार शब्द का पूर्वपद 'अलम्' ऋक् संहिता में 'अरम्' के रूप में मिलता है। 'अरम्' 'ऋ' धातु से निष्पन्न शब्द है। ऋ का अर्थ है गति। 'गति' शब्द बोध, मुक्ति और गमन व्यापार का भी बोधक है। अर्थ यह है कि ज्ञान, इच्छा और क्रिया इन तीन शक्तियों से बने विश्व व दो तिहाई भाग गति शब्द की शक्ति से व्याप्त है। वेद विज्ञान 'गति' तत्त्व को प्राण और 'अग्नि' कहता है तथा उसे इन्द्र से अभिन्न मानता है।

ऋक् संहिता के ऋषि वसिष्ठ इन्द्र से ही पूछते हैं— का ते अस्त्यरङ्कृतिः सूक्तैः। अर्थात् हे इन्द्र, सूक्तों में ऐसी कौन सी अलङ्कृति, कौन सी आपूर्ति, कौन सी उपलब्धि रहती। जो तुम्हें उनसे प्राप्त होती है? अवश्य ही इस वाक्य में सूक्तात्मक उक्ति के अन्तर्गत रहने वाले अतिशय तत्त्व की जिज्ञासा प्रकट हो रही है। मानों ऋषि यानी कवि, अलङ्कार से उसके उक्तलभ्य अलङ्कार के विषय में प्रश्न कर रहा है।

इस प्रकार ऋक् संहिता में अर्थात् मानव इतिहास के प्रथम ग्रन्थ या आदिकाव्य में हम परवर्ती अलङ्कार के लिये 'अरङ्कृति' शब्द पाते हैं, किन्तु यहाँ यह शब्द उपमा आदि के लिये प्रयुक्त नहीं है। इसी प्रकार यास्क के निरुक्त में हम 'उपमा' शब्द और उसकी वही व्याख्या पाते हैं जो हमें परवर्ती आलङ्कारिकों से मिलती है। गार्ग्य का मत उद्धृत करते हुये यास्क लिखते हैं— 'उपमा अतत् तस्सदृशम्'।

पाणिनि उपमा, सादृश्य, सामान्य, उपमान, सदृश, प्रतिरूप, उपमित शब्दों का प्रयोग करते हैं तथा 'पुरुषव्याघ्र' आदि ऐसे स्थलों पर दृष्टि रखते हैं जिनमें स्पष्ट रूप से उपमा अलङ्कार है, तथापि वे इन्हें उपमालङ्कार नहीं कहते। यह भी कहा जा सकता है कि अपने शास्त्र में वैसा कहने का उनके पास कोई अवसर नहीं था। किन्तु पातंजलि के समय में हल अलङ्कारत्व पर उपमा आदि अलङ्कार दोनों समानान्तर गंगा-यमुना को मिला दिया गया। यह कार्य भरतमुनि ने किया। वे उपमा, रूपक, दीपक और यमक को अलङ्कार मानते हैं तथा लक्षण नामक तत्त्व के रूप में उन्होंने अन्य गुणों का भी निरूपण किया। जिनसे अलङ्कारों की दिशा में चिन्तन को विद्युद्गति प्राप्त हुई और दण्डी तक के अनेक मनीषी उस दिशा में लगभग 700 वर्षों तक निरन्तर चिन्तन करते रहे। भारतीय चिन्तन ने काव्य को अकाव्य से पृथक् करने वाले जिन तत्त्वों का अनुसंधान किया, संस्कृत के काव्यशास्त्र ने उनके नामकरण का शताब्दियों व्यापी एक रोचक इतिहास प्रस्तुत किया। यह इतिहास वैज्ञानिक भी है।

इस प्रकार रस, अलङ्कार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य के परिक्षेत्रों में विभक्त काव्य-चिन्तन मूलतः एक ही धुरी पर घूमता दिखाई देता है वह है अतिशय की धुरी, अलंभाव की धुरी, अतएव अलङ्कृतितत्त्व की धुरी। अलङ्कृतितत्त्व एक सामान्य और व्यापक तत्त्व है काव्यात्मा का काव्य एक कला है और क्योंकि वह स्वयम्भावी सृष्टि है, संकल्पयोनि, मनोभवा या प्रज्ञानघनीय सृष्टि है, प्रतिबिम्बित्मका है अतः वह उसकी समग्रता में वैसी है, आंशिकता में नहीं। अभिप्राय यह है कि बिम्ब में

लगा तिलक भले ही वाह्य हो, बिम्ब से भिन्न हो, किन्तु प्रतिबिम्ब में लगा तिलक जिस प्रकार प्रतिबिम्बात्मा की सृष्टि, निर्मिति, अभिव्यक्ति, प्रतिभा, या प्रज्ञप्ति के साथ ही कर्ण के साथ कवचकुण्डल के समान निष्पन्न होता है उसी प्रकार लोकभूमि पर वस्तु और वस्तु के अतिशयाधायक तत्व भले ही भिन्न हों किन्तु कलाभूमि पर वस्तु और उसके अतिशयाधायक तत्व वैसे नहीं होते। ऐसा नहीं कि दर्पण में वनमालाविभूषित श्रीकृष्ण (परमात्मा) प्रतिबिम्बित हों तो उस प्रतिबिम्ब में वे स्वयं ही प्रतिबिम्ब होकर न रह जायें, उनकी वनमाला प्रतिबिम्बित न हो और वह उनके प्रतिबिम्ब में अलग से संयोजित की जाय। श्रीकृष्ण का श्रीविग्रह और उनका अलङ्करण वनमाला, दोनों एक साथ प्रतिबिम्बित होते हैं। कला में, प्रतिबिम्ब में, चित्र में अलङ्कार्य और अलङ्कृति दोनों सहजात होते हैं, क्रमोत्पन्न नहीं। इस स्थिति में यह कैसे कहा जा सकता है कि अलङ्कार अलङ्कार्य से भिन्न और उसकी घटकता से रहित रहते हैं।

इस प्रकार काव्य की आत्मा अर्थात् काव्य को अकाव्य में पृथक् करने वाला तत्व या काव्य की उपादेयता ग्राह्यता का बीज एक ही है और उसका एक ही नाम है अलङ्कार।

राजस्थान के जनजाति क्षेत्र में नगरों की उत्पत्ति एवं विकास में भौगोलिक स्थिति कि दशा एवं दिशा

डॉ. हितेश पाटीदार (प्राचार्य)

सिद्धि स्नातकोत्तर (P.G.) महाविद्यालय

(P.G.) महाविद्यालय

सागवाडा ,डुंगरपुर ,राजस्थान

दीनबन्धु बी.ठाकोर (व्याख्याता)

सिद्धि

स्नातकोत्तर

सागवाडा ,डुंगरपुर ,राजस्थान

1 परिचय (Introduction)

मानव सभ्यता के उद्भव व विकास के साथ ही नगरों की उत्पत्ति व विकास को माना जाता है, अतः यह कहना उचित होगा कि *“नगर उतने ही प्राचीन हैं जितनी मानव सभ्यता।”* यह एक सारगर्भित शाश्वत कथन है। भू-पृष्ठ पर होने वाली समस्त क्रियाओं का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सम्बन्ध नगर से ही है। अतः वर्तमान में नगर सर्वाधिक विकसित मानवीयकृत है एवं नगरीय भूगोल का अध्ययन मानव की समस्त सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है।

भारत में लगभग 2500 ई. पूर्व सिन्धु घाटी सभ्यता में नगरों की उत्पत्ति हुई। अतः नगरीय सभ्यता का उद्भव कांस्य युगीन “सिन्धु घाटी की सभ्यता” (3500 ई.पू.-1750 ई.पू.) से माना जाता है जो कि एक सुनियोजित नगरीय सभ्यता थी, जिसके साक्ष्य आज भी उपलब्ध हैं। सामान्यतया नगरों की उत्पत्ति के बारे में प्राप्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि नगर (City) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के सिविटस (Civitas) शब्द से हुई है। इस शब्द का प्रयोग रोमन भाषी साम्राज्यों के अधीन संगठनों के लिए किया जाता था। ब्रिटेन में आज भी ‘सिटी’ शब्द का प्रयोग जहाँ मुख्य गिरजाघर स्थित है उन नगरों के लिए किया जाता है। नगर के विकास के पश्चात् क्रमशः नगरीय भूगोल के अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। नगरीय भूगोल के अध्ययन से पूर्व जर्मनी के फ्रेडरिक रेटजेल¹ ने अपनी पुस्तक “Anthropo Geography” में नगरों का विवेचन भौगोलिक दृष्टि से किया। इस प्रकार नगरीय भूगोल मानव भूगोल की एक प्रमुख उपशाखा के साथ विकसित हुई, जिसमें नगर की स्थिति, आकारिकी, प्रतिरूपों तथा ब्राह्म क्षेत्रिय सम्बन्धों (External areas relations) आदि को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है। नगरीय भूमि उपयोग से तात्पर्य विभिन्न कार्यों के लिए नगरीय भूमि का उपयोग जिसका (Functional morphology) समानार्थी माना जाता है।

राजस्थान में प्रो. पी.आर. व्यास (वर्तमान में मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय में आचार्य पद पर) के निर्देशन में अनेक शोध-प्रबन्ध सम्पन्न हुए। जिनमें नगरीय उपान्त, ग्रामीण नगरीय अन्तर्सम्बन्ध, नगरीय आकारिकी, नगरीकरण के स्तर, हाड़ोती पश्चिमी राजस्थान, दक्षिणी राजस्थान आदि महत्वपूर्ण हैं।

प्रस्तुत शोध कार्य में जनजाति क्षेत्र में नगरों की उत्पत्ति, विस्तार तथा भूमि-उपयोग के सभी पहलुओं की व्याख्या की गई है व विभिन्न काल-खण्डों (Time-span) में भूमि उपयोग में हुए परिवर्तन को स्पष्ट किया गया है।

जनजाती उपयोजना क्षेत्र डुंगरपुर व बांसवाड़ा में नगरीकरण, नगरों के विकास व उनके नियोजित स्वरूप का उचित मूल्यांकन आवश्यक है जिससे इस ऐतिहासिक महत्व वाले क्षेत्र में नगरीकरण के नये आयाम ज्ञात हो सकें। प्रदेश के नगरों के विकास में ऐतिहासिक, भौगोलिक, जनांकिकीय व नियोजित पर्यावरण के सह-सम्बन्धों का अवलोकन कर प्रदेश के नगरीकरण को समझना आवश्यक है। इन आधारों पर नगरों के निवास स्थल, निवास स्थिति, भू-उपयोग, जनसंख्या व अन्य सुविधाओं के आधार पर नगरों में बढ़ती मानवीय गतिविधियों का विश्लेषण किया जा सकेगा। यह शोध-कार्य जनजाती उपयोजना क्षेत्र के नगरीकरण की वर्तमान स्थिति व भावी प्रारूप को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण होगा

2 भौगोलिक दृष्टिकोण (Geographical Perspective)

सामान्यतया अध्ययन प्रदेश में किसी निर्धारित अवधि के अन्तर्गत नगरों में रहने वाली जनसंख्या वृद्धि, प्रदेश की औसत जनसंख्या वृद्धि (Average Population Growth) से अधिक होती है तो नगरीकरण की स्थिति मानी जाती है।

वर्तमान सन्दर्भ में यह परिलक्षित होता है, नगरों की प्रवृत्ति में बदलाव आ रहा है, दक्षिणी क्षेत्र में छा जनजाति नगरों की वृद्धि बाजार केन्द्रों के रूप में विकसित हो रही है जैसे आसपुर, सागवाड़ा, सीमलवाड़ा, कुशलगढ़, तलवाड़ा में त्वरित परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है। इसी प्रकार बांसवाड़ा, डुंगरपुर, आदि केन्द्र प्रशासनिक नगरों के रूप में विकसित हो रहे हैं। नगरीय भूमि-उपयोग में भौगोलिक दृष्टिकोण से नगर की संरचना स्थिति से लेकर नगर के समस्त कार्यात्मक क्षेत्र, जिनमें व्यवसायिक क्षेत्र, आवासीय क्षेत्र, प्रशासनिक क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, शिक्षा क्षेत्र तथा सार्वजनिक भूमि उपयोग क्षेत्र आदि प्रमुख हैं।

नगरों में जनसंख्या वृद्धि होने पर वहाँ व्यापार व द्वितीयक कार्यों में वृद्धि हुई है, जिससे नगर का एक भाग वर्तमान अनियोजित भूमि उपयोग से ग्रसित होकर अनेक समस्याओं के प्रत्यक्षतः दर्शन कर रहा है। एक भूगोलवेत्ता के मन में नगरीय पर्यावरण के संरक्षण को अक्षुण्ण बनाए रखते हुए नगर के भावी नियोजन को बनाने के लिए विचार उत्पन्न होते हैं। उन्हीं विचारों को आधार मानकर हमने शोध के दृष्टिकोण की रूपरेखा तैयार की जाती है। उपयोजना क्षेत्र के मुख्य नगरों — डुंगरपुर, बांसवाड़ा, के आकारिकी का अध्ययन एवं विश्लेषण भौगोलिक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में किया गया है। प्रदेश के मुख्य नगरों के आकारिकी के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं और उनसे सम्बन्धित पहलुओं को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

(i) ऐतिहासिक विकास नगर की उत्पत्ति, विकास और वृद्धि।

- (ii) भौगोलिक कारक निवास स्थल ,भौगोलिक स्थिति एवं ज्यामितिय स्थिति व नाभियता ।
- (iii) आन्तरिक संरचना नगर विन्यास, नियोजित व अनियोजित स्वरूप ।
- (iv) कार्यात्मक संरचना सांस्कृतिक तत्व आर्थिक गतिविधियाँ पर्यटन , शैक्षणिक संस्थाएँ , उद्योग , व्यापारिक गतिविधियाँ ,विनिमय प्रवृत्तियाँ आदि ।
- (v) भूमि उपयोग रिहायशी , व्यापारिक, औद्योगिक , सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी , प्रशासनिक , मनोरंजन , परिसंचरण ।
- (vi) विविध कार्य क्षेत्र (Diversified functions)
- (vii) शैक्षणिक संस्थाओं का क्षेत्र भावी योजना एवं नगर का मास्टर प्लान ।

उपयोजना क्षेत्र में नगरों की अनियन्त्रित आकारिकी के विकास से उत्पन्न नगरीय समस्याओं का अवलोकन कर उनके समाधान के लिए सुझाव प्रस्तुत करना, वर्तमान भूमि उपयोग का विश्लेषण कर उसका भावी नियोजन स्वरूप प्रस्तुत करना भी शोध का प्रमुख उद्देश्य है ।

3 शोध समस्या का कथन (Statement about Research Problems)

राजस्थान के जनजाति क्षेत्र में नगरों की उत्पत्ति एवं विकास में भौगोलिक स्थिति कि दशा एवं दिशा

आदिवासी क्षेत्र में नगरों की उत्पत्ति व विकास मानव सभ्यता के विकास से जुड़ा हुआ है। जहाँ प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में थी वहाँ नगरों की उत्पत्ति हुई। वर्तमान में जनजाति उपयोजना (Tribal Sub Plan) क्षेत्र में नगरों की स्थिति केन्द्रीय स्थान व सेवा केन्द्रों के रूप में विकसित हो रही है। विकास के वर्तमान दौर में गाँवों से आदिवासियों का पलायन नगरों की ओर रोजगार की तलाश में हो रहा है। नगरों में आदिवासियों को विशेष रूप से रोजगार के साथ ही शिक्षा, चिकित्सा, संचार तथा परिवहन सुविधायें उपलब्ध की जाती है। अतः आदिवासी उपयोजना क्षेत्र में नगरीकरण तीव्रता से हो रहा है। प्रस्तुत शोध कार्य में उन सभी भौगोलिक कारकों का विश्लेषण किया गया, जिससे प्रदेश के नगरों का सन्तुलित विकास सम्भव हो सके।

शोध अध्ययन की उपयोगिता में भूमि उपयोग के समस्त पक्षों को ज्ञात कर उनमें आए परिवर्तनों की व्याख्या करना है, क्योंकि विकास सदैव मानव सभ्यता व संस्कृति में आए परिवर्तनों को नया आयाम प्रदान करता है।

4 अध्ययन क्षेत्र का चयन (Selection of Study Area)

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु ऐतिहासिक दृष्टि से प्रसिद्ध आदिवासी जनजाति उपयोजना क्षेत्र का चयन किया गया है, जो प्रशासनिक दृष्टि से उदयपुर संभाग के दो जिल्ले डूंगरपुर, बांसवाड़ा है। जो अध्ययन क्षेत्र राजस्थान के दक्षिणी भाग तथा विश्व की प्राचीनतम पर्वत-श्रृंखला के दक्षिण-पूर्व में विस्तृत है।

डूंगरपुर नगर मध्यकाल से राजपूत शासकों की राजधानी रहा है तथा गुजरात और मेवाड़ प्रदेश के मध्य व्यापार, शिक्षा व शासन की कड़ी के रूप में अपनी भूमिका निभाता आ रहा है। प्रदेश का यह सीमान्त नगर तीव्र गति से विकसित हो रहा है। सम्पूर्ण डूंगरपुर जिला जनजाति बहुल क्षेत्र रहा है जिसमें डूंगरपुर, आसपुर, सागवाड़ा, सीमलवाड़ा तहसीलें स्थित हैं।

बांसवाड़ा नगर : प्रदेश के दक्षिणी भाग वागड़ प्रदेश और वागड़ संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। माही परियोजना के पश्चात् तीव्र गति से उद्योग, कृषि, शिक्षा तथा व्यापारिक केन्द्र के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहा है। इस नगर में बांसवाड़ा, गढ़ी, घाटोल, बागीदौरा एवं कुशीलगढ़ तहसीलें स्थित हैं।

इस प्रकार यह नगर वागड़ प्रदेश और वागड़ संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ माही परियोजना के बाद तीव्र गति से उद्योग, कृषि, शिक्षा तथा व्यापारिक केन्द्र के रूप में विकास हुआ है।

5 साहित्य सर्वेक्षण (Review of Literature)

नगर मानव समाज की एक महत्वपूर्ण कृति है जिसकी ओर अनेक विषय-वेत्ताओं का ध्यान जाना स्वाभाविक है। सभ्यता की उत्पत्ति से लेकर वर्तमान काल तक न जाने कितने भव्य नगर काल के ग्रास में समा गए, जबकि कुछ आज भी इतिहास के कई युगों की गाथाएँ समेटे हुए खड़े हैं।

अतः धरातल पर नगरों की उत्पत्ति एवं विकास को जानने के साथ-साथ उसकी निवास स्थिति, आन्तरिक संरचना, भूमि-उपयोग व आकारिकी कार्य के बारे में भी अनेक विशेषताओं ने अपनी रुचि अनुसार अलग-अलग समय में नगरीय अध्ययन होता रहा है, जिसे हम निम्न स्तरों में विभक्त कर सकते हैं —

- अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर
- राज्य एवं स्थानीय स्तर पर

1.5.1 अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय पर (International and National Level)

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नगरीय भूगोल में नगरों के भूमि उपयोग पर प्रस्तुत किये गये सिद्धान्तों में महत्वपूर्ण योगदान ई.डब्ल्यू. बर्गस का माना जाता है। नगरीय वृद्धि के ऊपर किये गये अध्ययनों में गुप्ता² (2006) ने अध्ययन गुड़गांव क्षेत्र पर भारत की राजधानी क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव। यह पाया गया कि जनसंख्या वृद्धि का तेजी से विकास की प्रवृत्ति का संकेत दिया है। इसके साथ ही बढ़ती महानगरीय जनसंख्या का दबाव से पड़ोसी राज्यों पर प्रभाव। सैनी³ (2007) ने अपने शोध अध्ययन कार्य में पश्चिमी राजस्थान में नगरीकरण के प्रतिरूप पर कार्य किया।

1.5.2 राज्य एवं स्थानीय स्तर पर (State and Local Level)

उपाध्याय ने श्री गंगानगर पर, जोशी आर.एल.⁴ ने भीलवाड़ा जिले के नगरीय केन्द्रों का भूमि उपयोग पर लोढा आर.एम.⁵ ने भीलवाड़ा पर (1971) में और एस.एस. ढाबरिया⁶ ने (1965) में उदयपुर

के नियोजन का अध्ययन कार्य किया। विगत दो दशकों में राजस्थान में सर्वाधिक उल्लेखनीय कार्य पी. आर. व्यास⁷ (1987) ने किया, उन्होंने भीलवाड़ा नगर की आकारिकी व उपान्त क्षेत्र की सीमांकन (1992) में प्रस्तुत किया। व्यास पी.आर.⁸ (1996) ने झाड़ोल कोटड़ा क्षेत्र में जनजातीय क्षेत्रों में शोध परियोजना के अन्तर्गत शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं के वितरण के आधार पर प्रादेशिक विकास का आधार प्रस्तुत किया। विशेष रूप से प्रो. व्यास ने राजस्थान में नगरों के प्रमुख पहलूओं पर शोध निर्देशन प्रस्तुत किया है, उन्होंने अपने शोधार्थियों को राजस्थान के प्रमुख नगरों पर शोध कार्य सम्पन्न करवाया जिनमें प्रमुख है –

व्यास नीमल⁹ ने (2000) चित्तौड़गढ़ स्थित ज़िंक स्मेल्टर का पर्यावरण पर प्रभाव शोध प्रस्तुत किया। हितेश रावल¹⁰ ने (2001) बांसवाड़ा नगर की आकारिकी पर अपने शोध पूर्ण विचार व्यक्त किये। सिधवी नीलम¹¹ ने दक्षिणी राजस्थान में नगरीकरण के स्तर ज्ञात कर विभिन्न कारकों के मध्य अर्न्तसम्बन्ध ज्ञात किये। मनीष रावल¹² (2004) ने पश्चिमी राजस्थान में नगरीय पर्यावरण का स्वरूप शोध किया। प्रिति कुमावत¹³ (2004) ने दक्षिणी राजस्थान के जनजातीय क्षेत्र में जनसंख्या स्थानान्तरण पर, युवराज सिंह¹⁴ (2004) ने हाड़ौती पठारी प्रदेश के नगरीकरण, चांवरिया¹⁵ (2008) ने उदयपुर नगर की कच्ची बस्तियां पर तथा पन्नालाल कटारा¹⁶ (2010) ने वागड़ प्रदेश में मानव अधिवासों के विश्लेषण पर, रंजना आमेटा¹⁷ उदयपुर जिले के नगरीय केन्द्रों में आधारभूत सुविधाओं, सतीश आचार्य¹⁸ मेवाड़ प्रदेश के प्रमुख नगरों की नगरीय आकारिकी का स्वरूप अपना विद्यावाचस्पति की उपाधि हेतु शोध कार्य प्रस्तुत किया है।

इन विद्वानों के अलावा भी अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने प्रस्तुत विषय पर अपना विभिन्न दृष्टिकोण रखते हुए अध्ययन प्रस्तुत किया है, जिसका महत्त जनजाति क्षेत्र में नगरीकरण जैसे शोध विषय को लेकर माना जा सकता है। इन विद्वानों में कतिपय उनके भी सीधे विचार मिलते हैं, जिन्होंने दक्षिणी राजस्थान के जनजाति बहुल क्षेत्र की पारम्परिक आवासीय एवं नगरीय व्यवस्था तथा राष्ट्रीय स्तर पर बदलते परिवेश में बदल रही रहन-सहन व्यवस्था को लेकर बहुत व्यापक रूप में तथा बहुत निकटता से अपने विचार रखे हैं। जो संक्षेपतः उनके विचार यहाँ प्रस्तुत हैं—

जनजाति क्षेत्र में विशेष रूप से नगरीकरण पर किये गये अध्ययनों में अशोक शर्मा (2007–09) “राजस्थान में जनजाति : स्थिति एवं विकासात्मक आयाम” इसमें बताया गया है कि समाज के सभी वर्ग समान रूप से विकास की धारा में अग्रसर नहीं हो पाते हैं कुछ समूह एवं वर्ग विभिन्न कारणों से इस धारा से विमुख हो जाते हैं, जिसमें प्रमुख कारण अधिवास स्थिति है। इस लेख में बताया है कि राजस्थान की जनजातियाँ के पिछड़े-पन का प्रमुख कारण अधिवास स्थिति है। इन्होंने इस लेख में राजस्थान की कुछ प्रमुख जनजाति वर्ग मीणा, गरासिया, डामोर, सहरिया, भील का परिचय दिया है तथा जनजातियों की मुख्य समस्या—अधिवास विस्थापन, औद्योगिकरण, साक्षरता, अन्ध विश्वास, शोषण आदि समस्याओं को प्रस्तुत करते उसके समाधान तथा विकास हेतु सुझाव प्रस्तुत किये हैं। डेवीड सी पॉटर के लेख "Area Planning in Rajasthan" शीर्षक से प्रकाशित हुआ उन्होंने राजस्थान के

जनजाति विकास पद्धति को प्रस्तुत किया गया है इसमें बताया गया है कि भारत में जनजातियों के विकास सम्बन्धि प्रोग्राम में राजस्थान के कई गांवों को सम्मिलित किया गया है इन क्षेत्रों की जनजातियों के विकास के लिए विभिन्न प्रकार के विकसित और वैज्ञानिक तरीके उपयोग में लाये गये हैं जिससे उनके विकास में योगदान दिया जा सके। जनजाति विकास हेतु प्रशासन ने हर जिले में ग्रामीण योजना विकास के लिए विशेष प्रशासनिक इकाइयों स्थापित की है जो इनके विकास में योगदान देती है। समाजशास्त्र में किये गये प्रमुख अध्ययनों में हस्तीमल कोठारी (1986) "जनजाति क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन योजनाएँ : एक समाजशास्त्रीय मूल्यांकन" यह शोध कार्य उदयपुर जिले के खेरवाड़ा व सराड़ा क्षेत्र के लिए था। इसमें जनजाति क्षेत्र में चलने वाली सभी गरीबी उन्मूलन योजनाओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है। इसमें सभी योजनाओं का वितरण क्षेत्र, लाभान्वित व्यक्तियों की संख्या तथा इन योजनाओं की कमियों एवं भावी योजना हेतु सुझाव प्रस्तुत किये हैं।

प्रताप माथुर (1992) "गरीबी उन्मूलन एवं विकास योजनाओं का जनजातियों के जीवन और संस्कृति पर प्रभाव : डूंगरपुर जिले की सीमलवाड़ा पंचायत समिति का सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यांकन" यह शोध कार्य डूंगरपुर जिले की सीमलवाड़ा पंचायत समिति के लिए था इस शोध में जनजातीय क्षेत्र में चलने वाली सभी गरीबी उन्मूलन एवं विकास योजना का मूल्यांकन किया गया है। इसमें गरीबी उन्मूलन योजनाओं से लाभान्वित जनजाति क्षेत्र का वितरण तथा इन योजनाओं से जनजाति व्यक्तियों के जीवन स्तर में हुए परिवर्तन तथा इन योजनाओं की कमियों को प्रस्तुत किया गया है।

दीनबन्धु ठाकोर (Ph.d शोध 017) " आदिवासी विद्यार्थियों की महाविद्यालयीन शिक्षा एवं शासन योजनाएँ, समस्याएँ और समाधान " यह शोध कार्य वागड़ क्षेत्र में आने वाले डूंगरपुर बासवाड़ा जिलों के जनजाति क्षेत्र के लिए था। प्रस्तुत शोध आदिवासी विद्यार्थियों के शिक्षा को ध्यान में रखते हुए महाविद्यालय शिक्षा का अध्ययन किया गया तथा शोध में आदिवासी विद्यार्थियों के लिये जो शासन योजनाएँ हैं उसका अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध में सिर्फ राजस्थान राज्य के वागड़ क्षेत्र में आने वाले महाविद्यालयों को लिया गया है। इस शोध में राजस्थान के वागड़ क्षेत्र में आने वाले महाविद्यालयों में अधिक से अधिक शासन की योजनाओं द्वारा जनजाति क्षेत्र में चलने वाले महाविद्यालय की उच्च शिक्षा को बड़ावा दिया गया है तथा इन योजनाओं के द्वारा लाभान्वित क्षेत्र तथा इन योजनाओं में साक्षरता दर में आये परिवर्तन को प्रस्तुत किया है एवं भविष्यगामी योजनाओं के लिए सुझाव प्रस्तुत किया है।

माणिक्य लाल वर्मा आदिम जाति शोध संस्थान (2002) : "सातवीं पंचवर्षीय योजना में अनुसूचित जनजाति के लाभान्वित बी.पी.एल. परिवारों का मूल्यांकन अध्ययन" यह शोध कार्य राजस्थान के जनजाति उपयोजना क्षेत्र के लिए था जिसमें सातवीं पंचवर्षीय योजना में प्रस्तावित बी.पी.एल. परिवारों के लिए विशेष योजना का मूल्यांकन किया गया है। इसमें इन प्रस्तावित योजनाओं का लाभान्वित क्षेत्र,

व्यय राशि एवं इन योजनाओं से जनजाती लोगों के जीवन स्तर में हुए परिवर्तनों को प्रदर्शित किया गया है एवं सुझाव भी प्रस्तुत किये गये हैं।

1.6 शोध अध्ययन का उद्देश्य (Objectives)

शोध के अन्तर्गत अधोलिखित उद्देश्यों को आधार बनाया गया है –

- (i) जनजाति उपयोजना क्षेत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विवेचना करना।
- (ii) अध्ययन क्षेत्र के भौगोलिक पर्यावरण का विश्लेषण करना।
- (iii) अध्ययन प्रदेश की जनसंख्या की सामाजिक संरचना का अध्ययन करना।
- (iv) प्रदेश में नगरीय केन्द्रों की उत्पत्ति, वृद्धि एवं विकास का वर्णन करना।
- (v) नगरीकरण के स्तर ज्ञात करना एवं नगरों का आकार के आधार पर वितरण प्रणाली की व्याख्या करना।
- (vi) नगरों की आन्तरिक एवं कार्यात्मक संरचना का अध्ययन करना।
- (vii) नगरीकरण को प्रभावित करने वाले कारकों के अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या करना।
- (viii) नगरों के भावी शिक्षा एवं सतत विकास के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

1.7 परिकल्पनाएँ (Hypothesis)

शोध के अन्तर्गत निम्न परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जायेगा –

- (i) यह परिकल्पित किया गया है कि मानव बसाव की उत्पत्ति में प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता प्रमुख आधार रही है। फलस्वरूप नगरीय केन्द्रों की स्थापना मुख्य नदियों के किनारे केन्द्रीय स्थानों के रूप में हुई है।
- (ii) यह भी माना गया (Assumed) कि प्राथमिक व्यवसाय के अन्तर्गत कृषि एवं पशुपालन आदिवासियों का प्रमुख व्यवसाय रहा है, अतः जहाँ कृषि उत्पादन का संग्रहण एवं वितरण प्रारम्भ हुआ वे ही वाणिज्यिक गतिविधियों के केन्द्र के रूप में केन्द्र प्रमुख नगरीय केन्द्र बने। साथ ही नगरीकरण के प्राथमिक व्यवसाय में संलग्न जनसंख्या का ऋणात्मक प्रभाव रहा है।
- (iii) यह भी परिकल्पित किया गया है कि नगरीकरण के साथ द्वितीयक एवं तृतीयक कार्यों में संलग्न जनसंख्या का अनुपात धनात्मक सहसम्बन्ध लिये हुए है, उन केन्द्रों में नगरीय जनसंख्या में वृद्धि दर अधिक रही है।

- (iv) यह भी परिकल्पित किया गया कि जहाँ आदिवासीयों की बहुलता है, नगरीकरण नकारात्मक सहसम्बन्ध को दर्शाता है अर्थात् विपरीत स्वरूप है।

1.8 विधि तंत्र (Methodology)

प्रस्तुत शोध कार्य में विभिन्न तत्वों, कारकों तथा घटकों का विश्लेषण करने के लिये विभिन्न विधियों व मानचित्रीय तकनीक का उपयोग किया जाएगा। यथा –

- (i) **अध्ययन क्षेत्र** : अध्ययन क्षेत्र से प्राप्त भौगोलिक, नगरीय, पर्यावरणीय, जनांकिकी आंकड़ों, प्रभावों, समस्याओं का आलेखी विधियों द्वारा दर्शाने का प्रयास।
- (ii) **स्थितिमान चित्रण** : प्रदेश में नगरों की सामयिक परिवर्तन की स्थिति, नगरीय केन्द्रों के स्थल, स्थिति (Location), भौगोलिक व प्रशासनिक स्थिति हेतु उपयोग में लिया जाएगा।
- (iii) **भूमि उपयोग मानचित्र** का उपयोग नगरों के कार्यात्मक स्वरूप व कार्य- क्षेत्रों के निर्धारण हेतु प्रयुक्त किया जाएगा।
- (iv) **मास्टर प्लान** : सभी नगरों के मास्टर प्लानों का उपयोग भविष्य में विस्तार व भूमि उपयोग के स्वरूप की व्याख्या हेतु काम में लिया जाएगा।
- (v) **प्रतिदर्शन का चयन (Selection of Samples)** : नगरों की आकारिकी के विश्लेषण, प्राथमिक आंकड़ों के एकत्रण हेतु नगरों के विशिष्ट क्षेत्रों का चयन।
- (vi) **क्षेत्रीय अवलोकन (Field Observations)** : विभिन्न चयनित इकाइयों के भौगोलिक अध्ययन के लिए क्षेत्रीय अवलोकन को आधार माना गया है। नगरीय विकास, स्वरूप, आन्तरिक संरचना, आकारिकी हेतु रिहायशी, व्यापारिक, औद्योगिक क्षेत्रों का अवलोकन।
- (vii) नगरीकरण के विभिन्न पहलुओं को ज्ञात करने के लिए सांख्यिकीय विधियों का उपयोग किया गया है

नगरीकरण का मापन (Measurement of Urbanisation)

- (a) **Degree of Urbanisation** : गणना का सूत्र निम्नानुसार है

$$a = \frac{U}{T} \times 100$$

where

a = Degree of Urbanisation , U = Urban Population

T = Total Population

- (b) **नगरीकरण की दर एवं गति की गणना**

$$\text{नगरीकरण की दर } \frac{a_2 - a_1}{a_1} \times 100$$

where

a_1 & a_2 = Degree of Urbanisation at Two Points of time

(c) गुरुत्वाकर्षण का नियम (*Laws of Retail Gravitation*) :

$$\text{Distance between A \& B} = \sqrt{\frac{\text{Size of A}}{\text{Size of B}}}$$

(d) लॉरेन्ज कर्व एवं गिनी कॉएफिसियेंट की गणना (*Lorenz Curve and Gini*

$$\text{Concentration Ratio) : } G = \left(\sum_{i=1}^n x_i y_i + 1 \right) - \left(\sum_{i=1}^n x_i + 1 \cdot y_i \right)$$

where

G = Gini Concentration Ratio , X_i = Cumulative Proportion of Population ,

Y_i = Cumulative Proportion of Cities , N = Number of Class Intervals.

1.9 आंकड़ों के स्रोत (Source of Data)

नगरीकरण की प्रवृत्तियाँ नगरों का विकास, जनसंख्या वृद्धि, नगरीय आधार की व पर्यावरणीय विशेषताओं से सम्बन्धित आंकड़ों का संकलन किया जाएगा। अध्ययन एवं शोध कार्य में दो प्रकार के आंकड़ों का प्रयोग किया जाएगा।

1.9.1 प्राथमिक आंकड़े (Primary Data)

अध्ययन क्षेत्र से प्रारम्भिक क्षेत्रीय जानकारी प्राप्त करने के लिये प्राथमिक आंकड़ों का संकलन, जिसमें विशेष रूप से साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली तथा प्रत्यक्ष अवलोकन को आधार प्रदान करने का प्रयास रहेगा। निर्देशन विधि का प्रयोग कर कुछ नगरीय क्षेत्रों को नगर प्रतिनिधि इकाई के रूप में चयनित किया गया है।

1.9.2 द्वितीय आंकड़ों का संकलन

इन आंकड़ों का संकलन विभिन्न राजकीय विभाग, संस्थाओं, अर्द्ध सरकारी विभागों, विभिन्न प्रशासनिक विभागों व नगरीय गतिविधियों से सम्बन्धित संस्थाओं से किया गया।

(i) नगर पालिका डूंगरपुर, सागवाड़ा, बांसवाड़ा, कुशलगढ़ आदि।

- (ii) पंचायत समितियाँ डूंगरपुर, बांसवाड़ा, बिछीवाड़ा, सीमलवाड़ा, सागवाड़ा, कुशलगढ़, आसपुर, घाटोल, आनन्दपुरी, सलुम्बर, खेरवाड़ा, कोटड़ा, झाड़ोल, गिर्वा, सराड़ा, धरियावद, आबू रोड, अरनोद, प्रतापगढ़ आदि।
- (iii) भारत की जनगणना— सम्बन्धित जिलों की जिला गणना पुस्तिका (District Census Handbook 2001) के प्रारम्भिक आंकड़ों का उपयोग।
- (iv) विभिन्न संस्थाओं के पुस्तकालय— मुख्यतः जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के भूगोल विभाग, केन्द्रीय पुस्तकालय एवं मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, सरस्वती पुस्तकालय, उदयपुर, राजकीय एवं निजी महाविद्यालय, बांसवाड़ा एवं डूंगरपुर के पुस्तकालय आदि में उपलब्ध साहित्य का अध्ययन कर संकल्पना को समझने का प्रयास किया गया।
- (vi) राजकीय पुरातत्व विभाग उदयपुर, बांसवाड़ा, अर्थूना, छीछ, डूंगरपुर, देव सोमनाथ, राजमहल आदि के छात्राचित्र प्राप्त करने का प्रयास। उदयपुर एवं अन्य नगरों के सेटेलाइट मानचित्र (Satellite Imageries), Google Earth, भारतीय सर्वेक्षण विभाग, जयपुर से नगरीय भूमि-उपयोग मानचित्रों का संकलन।

1.10 शोध की सार्थकता (Significance of the Study)

राजस्थान के जनजातिय उपयोजना क्षेत्र की शिक्षा, ऐतिहासिक विरासत, विशिष्ट सांस्कृतिक स्वरूप एवं भौगोलिक विभिन्नताओं का अनूठा संगम प्रस्तुत करती हैं। सभ्यता के विकास की दृष्टि से प्रदेश के नगरीकरण को सामयिक परिवर्तन के आधार पर प्राचीन सभ्यता के नगर वर्तमान डूंगरपुर, अर्थूना, बांसवाड़ा, जैसे बड़े नगरों तक पहुँचाया। समय की इस सुदीर्घ यात्रा के अवशेष आज भी नगरों की आकारिकी में दृष्टिगत होते हैं।

इस शोध के माध्यम से नगरीकरण व उसके सभी पहलुओं में आये परिवर्तनों का सही आंकलन करने में महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। अध्ययन में प्रदेश के नगरों के कार्यात्मक स्वरूप में आए परिवर्तन की व्याख्या व विश्लेषण का प्रयास होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1. Vyas, P.R. (1996) : Planning Strategies for Tribal Area Development, Agrotech Publications, Udaipur.
2. Vyas, Neelam (2000) : Lead and Zinc Smelting and Mining Rampura, Agucha and Chanderia : A Study in Environmental Geography. Unpublished Ph.D. Thesis, J.R.N. Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur.

3. Hitesh, Rawal (2000) : Morphology of Banswara City, Unpublished M.A. Dissertation, J.R.N. Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur.
4. Singhvi Neelam (2002) : Trends of Urbanisation in Southern Rajasthan. Unpublished Ph.D. Thesis, J.R.N. Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur.
5. Kumawat, Preeti (2004) : Trends of Population Migration in Tribal-sub Plan Area of Southern Rajasthan : A Geographical Analysis in Population Geography, Unpublished Ph.D. Thesis, J.R.N. Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur.
6. Ameta, Ranjana (2013) : उदयपुर जिले के नगरीय केन्द्रों में आधारभूत सुविधाओं के विकास : एक भौगोलिक विश्लेषण, Unpublished Ph.D. Thesis, J.R.N. Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur.
7. Acharya, Satish (2013) : Status of Urban Morphology of Major Urban Centres of Mewar Region : A Geographical Analysis, Unpublished Ph.D. Thesis, J.R.N. Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur.
8. जैन, ए.के. (1997) 'डूंगरपुर जिले की अनुसूचित जनजाति में साक्षरता कार्यक्रम का मूल्यांकन' माणिक्यलाल वर्मा आदिम जाति शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान, जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग, राजस्थान (उदयपुर)
9. कोठारी, एस.एच. (1986) "जनजाति क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन योजनाएँ : एक समाजशास्त्रीय मूल्यांकन" माणिक्यलाल वर्मा आदिम जाति शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान, जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग, राजस्थान (उदयपुर)
10. माथुर, पी. (1992) "गरीबी उन्मूलन एवं विकास योजनाओं का जनजातियों के जीवन और संस्कृति पर प्रभाव : डूंगरपुर जिले की सीमलवाड़ा पंचायत समिति का सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यांकन "सामाजिक नीति शोध संस्थान, जयपुर।
11. माणिक्यलाल वर्मा आदिम जाति शोध संस्थान, उदयपुर (2002) "सातवीं पंचवर्षीय योजना में अनुसूचित जनजाति के लाभान्वित बी.पी.एल. परिवारों का मूल्यांकन अध्ययन" माणिक्यलाल वर्मा आदिम जाति शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान, जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग, राजस्थान (उदयपुर)।
12. दीनबन्धु ठाकुर (2017) आदिवासी विद्यार्थियों की महाविद्यालयीन शिक्षा एवं शासन योजनाएँ, समस्याएँ और समाधान (शोध Ph.D.) कवि कुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय रामटेक नागपुर (महाराष्ट्र)

दक्षिण राजस्थान के राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालय के छात्राओ में आत्मक्षमता एवं स्वायत्त अधिगम के प्रभाव का अध्ययन।

डॉ. दीपक पण्ड्या

प्रिन्सीपल

स्वामी विवेकानन्द कॉलेज, सागवाडा

सार संगृहण :-

इस अध्ययन का उद्देश्य था कि माध्यमिक स्तर के छात्रों में आत्म क्षमता का स्वायत्त अधिगम से सम्बन्ध को ज्ञात करना इस उद्देश्य के लिए डुंगरपुर जिले के 3 राजकीय एवं 3 निजी माध्यमिक विद्यालयों तथा उनमें भी कक्षा VIII (आठ) के छात्राओं का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि किया इसमें न्याय दर्श के रूप में 60 छात्राओ का चयन किया गया। इसमें उपकरण के रूप में स्वनिर्मित एवं मानकीकृत उपकरण का चयन किया गया। प्रायोगिक अभिक्रिया से पूर्व एवं पश्च परिक्षण द्वारा तथ्यों का संकलन किया परिणाम स्वरूप पाया गया कि माध्यमिक स्तर की छात्राओ में आत्म क्षमता का स्वयत्ता अधिगम से सम्बन्ध कर पूर्व एवं पश्य परिक्षण में सार्थक अन्तर पाया गया।

परिचय :- अधिगम किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया है।

प्रत्येक प्राणी हर दिन अपने जीवन में नए – नए अनुभव एकत्र करता है।

इन नए अनुभवों से व्यक्ति कें व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन होता है। ये अनुभव तथा इनका उपयोग ही सीखना या अधिगम करना कहलाता है।

बुड वर्थ ने भी कहा है। कि नवीन ज्ञान और नवीन प्रक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया सीखने की प्रक्रिया है।

“The process of acquiring new knowledge and new responses is the process of learning”

स्किनर ने लिख है। कि सीखना व्यवहार में उत्तरोत्तर सांमजस्य की प्रक्रिया है।

“learning is a process of progressive behaviour adaption.”

क्रो – क्रो सीखना – आदतो ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।

“learning is the acquisition of habits, knowledge and attitudes.”

कक्षा कक्ष में प्रत्येक छात्र समान तरीके से समान विषय वस्तु एक ही समय में सिखने के लिए विवश होते हैं। बालक अनुभवों को किस तरह ग्रहण करते हैं। इनके सिखने का प्रभावी तरीका क्या है। क्षमता कितनी है। वर्तमान समय में अधिगम करता स्वतंत्र होकर कैसे अधिगम करता है। यह स्वायत्त अधिगम है। स्वायत्त अधिगम स्वयं निर्देशित होता है। छात्रों में अनुभव जन्म जन्य होता है। आत्म क्षमता का स्वायत्त अधिगम के क्षेत्र में अनुसंधान महत्वपूर्ण है।

शोधकर्ता बताते हैं कि स्वायत्त अधिगम का अध्ययन एवं उपयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के तत्कालिक एवं दीर्घकालिक परिणामों को समृद्ध करने में सहायक होगा।

शिक्षक के प्रयासों का महत्वपूर्ण भाग छात्रों की अधिगम विशिष्टता को पहचानना शैक्षिक क्रियाओं को उसके अनुरूप ढालना है।

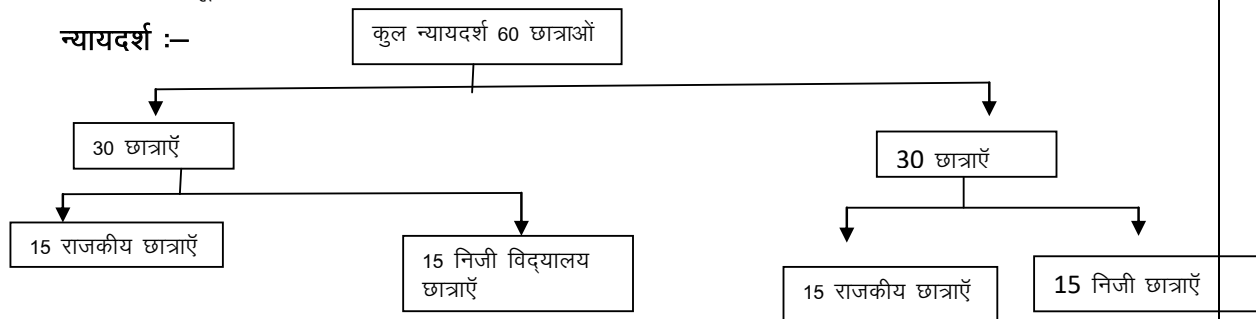
उपयुक्त वस्तु स्थितियों के संदर्भ में जब हम गहराई से स्वायत्त अधिगम आत्मक्षमता के बारे में विचार करते हैं। तो अनेक प्रश्न हमारे मस्तिष्क में उभरते हैं।

- क्या प्रत्येक छात्र की आत्मक्षमता को पहचाना जा सके।
- क्या प्रत्येक छात्र अपने स्वयं का मूल्यांकन करता है।
- क्या प्रत्येक छात्र में अधिगम करने की क्षमता स्वतः विकसित होती है।
- क्या प्रत्येक छात्र में स्वायत्त अधिगम का विकास हो सके।
- क्या प्रत्येक छात्र में स्वायत्त अधिगम का आत्म क्षमता से सम्बन्ध है।

अतः आत्म क्षमता का स्वायत्त अधिगम के बारे में विचार चिन्तन को जानने के लिए शोध कर्ता ने इस शोध अनुसंधान में दक्षिण राजस्थान के राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालय के छात्रों आत्मक्षमता एवं स्वायत्त अधिगम के परीक्षण के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना:- राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालय के छात्रों में आत्मक्षमता एवं स्वायत्त अधिगम का परीक्षण पूर्व प्रभाव का कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

न्यायदर्श :-



प्रायोगिक अभिक्रिया हेतु न्याय दर्श के रूप में दक्षिण राजस्थान के डुंगरपुर जिले के 6 माध्यमिक विद्यालयों का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से किया गया। प्रत्येक विद्यालय से कक्षा VIII के 10 छात्रों का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से किया गया। इस प्रकार कुल 60 छात्रों का चयन किया गया

चर :-

1. स्वतंत्र चर — आत्मक्षमता
2. आश्रित चर — स्वायत्त अधिगम

उपकरण :-

1. स्वनिर्मित उपकरण :- स्वायत्त अधिगम के घटकों पर आधारित अव्यूह

2. मानकी कृत उपकरण :- डॉ. जी. पी. माथुर एवं राजकुमारी भटनागर द्वारा निर्मित आत्मक्षमता मापनी

परिणाम :- तथ्यों का संकलन करने के पश्चात उनका विश्लेषण सांख्यिकीय विधि से किया गया टी. परीक्षण

सारणी संख्या 1.1 :-

राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालय के छात्राओं का आत्मक्षमता स्तर का पूर्व एवं पश्च परीक्षण में तुलनात्मक अन्तर

क्र. सं.	आत्मक्षमता के घटक	पूर्व परीक्षण			पश्च परीक्षण				
		MEAN	S.D.	N	MEAN	S.D.	N	Mean diff	T value
1.	आत्मगतिशीलता कौशल	राज. 4.63	1.49	30	6.17	1.70	30	1.46	3.98*
		निजी 6.10	1.34	30	7.79	1.62	30	1.80	4.18*
2.	आत्म प्रभाव	राज. 6.93	1.83	30	9.23	2.06	30	2.43	5.36*
		निजी 9.37	1.67	30	12.17	1.73	30	3.13	6.37*
3.	आत्म विश्वास	राज. 6.93	1.83	30	9.23	2.06	30	2.70	6.12*
		निजी 9.63	1.56	30	12.37	1.73	30	3.13	6.37*
4.	आत्म मूल्यांकन	राज. 6.	3.16	30	9.20	3.51	30	2.50	3.39*
		90	3.50	30	12.20	2.91	30	3.00	3.59*
5.	आत्म सम्मान	निजी 9.							
		40							
6.	आत्म संज्ञान	राज. 4.	1.49	30	6.17	1.62	30	1.63	4.61*
		63	1.23	30	8.13	1.38	30	1.96	5.05*
7.	समाजिक उपलब्धि	निजी 6.							
		27							
8.	समाजिक उपलब्धि	राज. 6.	2.36	30	9.23	2.56	30	2.60	4.67*
		93	1.92	30	12.30	2.10	30	3.06	5.05*
9.	समाजिक उपलब्धि	निजी 9.							
		53							
10.	समाजिक उपलब्धि	राज. 7.	1.83	30	9.40	1.96	30	2.20	4.84*
		07	1.68	30	12.07	2.62	30	1.66	

		निजी 9. 27							5.10*
	कुल योग	राज. 51. 20 निजी 69. 23	11.70 9.72	30 30	68.20 89.67	12.96 11.54	30 30	18.03 21.46	6.49* 6.77*

* $1-p < 0.01$ अर्थात् 0.01 स्तर पर सार्थकता है।

निष्कर्ष :- राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालयों के छात्र-छात्राओं के पूर्व एवं पश्च परिक्षण के समको को आधार बनाकर यदि देखा जाये तो हम पाते हैं कि आत्मक्षमता के घटकों का स्वायत्त अधिगम के घटकों में सार्थक अन्तर पाया गया अर्थात् सार्थक सम्बन्ध है। लेकिन यह राजकीय माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं की अपेक्षा निजी माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं में अधिक पाया गया।

सुझाव :- प्रस्तुत शोध-अध्ययन के माध्यम से शिक्षकों विद्यार्थियों पाठ्यक्रम निर्माताओं को एक नवीन दिशा का ज्ञान होगा। इससे भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम-शिक्षण विधियों का निर्माण किया जा सके एवं नवीन शिक्षण आव्यूहन का निर्माण किया जा सके इससे छात्र नवीन उपागमों को अपनाकर अधिगम कर सकेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

- 1- cotterll, s(2000) prometing learner autonomy through the curriculum principles for designing language courses ELT journals.
- 2- Defei. D (2007) An exploration of the relationship between learner autonomy and English proficiency asian EFL 1-23
3. गैरट हेलरी ई. स्टेटिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन न्युयार्क लॉग मैन्स ग्रीन एण्ड क. गुड कार्टर वी. एण्ड डग्लस ई. स्केट्स मैथइस ऑफ रिसर्च जी. लेस्टर ऐण्डर्सन शिक्षा का स्वरूप प्रणालियाँ हिन्दी संस्करण 1965
4. डॉ माथुर एस. एस. 2007 शिक्षा मनोविज्ञान भटनाकर ए. बी. तथा मीनाक्षी 2003 मनोविज्ञान एवं शिक्षा के मापन

चित्रा मुद्गल की कहानियों में नारी जीवन संघर्ष

गुणमाला पाटीदार

शोध छात्रा

मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

“वास्तव में नारी समाज का आधा हिस्सा और समाज की उन्नति अवनति का मापदंड है। वह साहित्य, संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है।” वह उच्च मानवीय गुणों और आदर्शों का अजस्र स्रोत है। वह पुरुष की प्रेरणा, साथी, मार्गदर्शक, संरक्षक है। उसके बिना सृष्टि सभ्यता, संस्कृति और पुरुष के जीवन में वह स्थान नहीं दिया जाता। जिसकी वह हकदार है। पुरुष प्रधान सनातनी समाज व्यवस्था नारी को सदैव उसके अधिकारों से वंचित रखकर उसे मात्र भोग का साधन बनाती है।”

आज भारत वर्ष में नारी को भोगवादी वस्तु के रूप में देखना सामाजिक बदलाव की ओर इंगित करता है। भारत को आजाद हुये सात दशक बीत चुके हैं। वर्तमान परिवेश में जो सुखानुभूति से वंचित है वह है स्त्री।

चित्रा मुद्गल की कहानियों में पात्रों द्वारा जनित मनोविज्ञान आकर्षण का केन्द्र बिन्दु है। “उत्पीड़न, प्रताड़नाओं और अवहेलनाओं के कटीले तारों से बीधता स्त्री जीवन का यह अध्याय तब तक समाप्त नहीं हो सकता जब तक शोषणकर्ता अपनी संवेदनहीनता को त्याग न दें। इसका सीधा सा रास्ता ही महिलाओं पर चोट करना है ऐसा नहीं कि सभी पुरुष शोषणकर्ता हैं क्योंकि अगर ऐसा होता तो उच्च पदों पर आसीन महिलाएँ नहीं होती। क्या विश्व का कोई भी पुरुष पूर्ण विश्वास से यह कह सकता है कि स्त्री के ममत्व और स्नेह के बिना अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया।” स्त्रियों को दैहिक इस्तेमाल बॉस द्वारा होने की सूचना मिलती ही रहती है। ‘ट्रेन छूटने तक’ कहानी में कुछ महिलाओं के बीच की बात-चीत देखिए— “लोग कहते हैं, बूढ़े ने विभाग की किसी भी औरत को नहीं छोड़ा”।

चित्रा जी ने नारी के भाव बोध, अस्तित्वबोध, वेदना, कुण्ठा, आशा और निराशा, संयोग-वियोग को भी चित्रित किया है। ‘दरमियान’ कहानी की नायिका आकांक्षा अखबार के दफ्तर में काम करती है और दफ्तरवालों की मानसिकता से भी वह ऊब चुकी होती है। यथा— “वे चाहे दुनिया के किसी कोने में मिल जाएं और चाहे जिस विषय में बातचीत आरंभ करें, घूम-फिरकर सुई वहीं अटक जाती है। अबकी बोनस कितने प्रतिशत मिल रहा है? पालेकर एवार्ड का फैसला हो ही नहीं रहा। हो गया तो समझो लॉटरी खुल गई। नयों को कितना फायदा होगा, पुरानों को कितनी रकम एकमुश्त मिलेगी, कौन-सी लड़की किससे ‘प्लर्ट’ कर रही है। फलाने संपादक ने तो हद ही कर रखी है, सरेआम केबिन का दरवाजा बंद कर लेता है। ऐन मौके पर अचानक कोई मिलने जाए तो पी.ए. थपलियाल केबिन के बाहर से ही उसे टरका देता है, साहब जरूरी कामों में बिजी हैं। पिच्छू आव.....।”

‘सौदा’ नामक काहनी में मंगला लड़की ने अभी तक की अपनी पूरी दास्तान पेश की। नौकरी देने का बहाना कर दलालों के हाथ में बिकने के लिए तैयार होने वाले ड्राइवर के बारे में गेंदा ने कहा। वह इन दलालों के हाथ में किसी न किसी प्रकार बचकर इधर मंगला के घर भग आई है, “इहा लाके लालू दलाल के हाथ हमसे धंधा करवाने का मार-कुटाई करने लगा। हम हाथ-गोड़ जोड़ते रहे, हमका छांडि दे, हमसे नहीं होगा, आज सुबह बहुत जबरई किया, खिड़कियां से कूदि के भागे...गेंदा के धैर्य का बांध टिका नहीं रह पाया।” गेंदा जानती नहीं कि प्राणों की रक्षा हेतु वह जिस घर के दरवाजे आसरे के लिए खटखटा रही है, संयोग से उसी अहेरी का है, जिसने अपने जाल में फंसाकर उसकी बर्बादी की नींव खोदी।

के. वनजा ने ‘दरमियान’ कहानी पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुआ कहा है कि— ‘दरमियान’ कहानी में चित्राजी ने स्त्री संबंधी विभिन्न समस्याओं एवं आकांक्षा जैसी नारी इसका सामना कैसे करती है, इसको बहुत संजीदगी से चित्रित किया है। इस कहानी को पढ़ते वक्त हमें यह अहसास होता है कि नारी होने के कारण नारी जीवन के पल-प्रतिपल घटित होनेवाले सूक्ष्म कार्यों का भी वे यथातथ्य चित्रण करने में कामयाब हुई है।” स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय परिवेश अत्यन्त तीव्रता से बदला है, जिस कारण जीवन-मूल्यों और चिन्तन के आयामों में भी व्यापक परिवर्तन हुआ है। विदेशों में होने वाले नारी मुक्ति आन्दोलन का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। नारी की अस्मिता की पहचान की कोशिश की गई। नारी के प्रति दिन-रात बढ़ते अन्यायों ने नारी चेतना को झिंझोड़ा है। विज्ञापन ने औरतों की अभिनय क्षमता सुन्दरता दिखाने का मौका दिया है लेकिन उसकी सुन्दरता शरीर के उभारों पर टिकी हो तो वह सोच आलोचना का विषय बनती है। शून्य नामक कहानी में कॉलेज में काम करनेवाली सरला आर्थिक स्वावलंबन अनुभव करती है। यहाँ उसे जीने को हिम्मत दे रहा है। पति के अभाव में उसके जीवन में जो शून्यता बनी है, वह आज उसका बेटा भर देता है, लेकिन राकेश और बेला के जीवन में संतान के अभाव में जो शून्यता पैदा हुई, उसे भरने के लिए राकेश सरला से अपने बेटे को छीन लेना चाहता है। सरला सोचती है, “बरसों से एक शून्य उसकी जिंदगी का हमसफर रहा। अब बेला को भी उसी अंधेरी घुटन-भरी खोह से गुजरना होगा। दीपू को नहीं पा सकती वह। हरगिज नहीं। राकेश और बेला से अब वह कोर्ट में ही मिलेगी और देखेगी कि दुनिया का कौन-सा कानून, कौन-सी ताकत उससे उसका बच्चा छीनकर बेला की गोद भर सकती है, चाहे उसे सुप्रीम कोर्ट तक क्यों न लड़ना पड़े।”

एक निम्न जातीय नारी को केंद्र में रखकर लिखित कहानी है ‘लेन’। छोटी जाति के, छोटा काम करनेवाले लोग लाख अभावों और मुसीबतों में रहकर भी अपनी इज्जत, अपने स्वाभिमान और ईमानदारी के साथ जीते हैं। यह इस कहानी के महेंदरी नामक जमादारिन के चरित्र से समझाया गया है। पाखाना साफ करने का काम करनेवाली है महेंदरी, पर अचानक उस पर कष्टों का बोझ आ पड़ा है। उसका पति दत्त गुंडों से किसी का बीच-बचाव करते हुए

घायल हो जाता है। चाकू का घाव इतना गहरा होता है कि उसे एक माह तक अस्पताल में भर्ती रहना पड़ता है। इधर काम पर न जाने के कारण मालिक उससे नाराज हो जाते हैं। उधर पकड़े हुए गुंडों के बारे में जानने कि लिए उसे बार-बार थाना बुलाया जाता है। फिर भी महेंदरी हिम्मत से काम लेती है। अस बीच तीसरा गुंडा भी पकड़ा जाता है, जिस पर पुलिसवाले 302 की धारा लगाकर फांसी की सजा दिलवाने की बात करते हैं। महेंदरी की पहचान ही सबसे बड़े सबूत का काम करेगी। जेल में बंद गुंडों के साथी महेंदरी के पास मिलने के लिए आते हैं और पांच हजार रुपये देते हुए कहते हैं कि वह थाने में जाकर उसे न पहचाने। महेंदरी उनकी इस हरकत पर क्रुद्ध होकर नोटों की गड़्डी उनके मुंह पर मार देती है और कहती है, “मजाक उड़ाने आए मजबूर माणस का। अरे कोई कितना भी गिर जाएगा, अपने मरद की जाण की कीमत खाएगा।”

आज स्त्री की स्वायत्त अस्मिता को पुर्ल्लिंगी समाज से मान्यता दिलवाने में जहाँ कृषि समाज के पहले औद्योगिक और बाद में सूचना समाज में रूपान्तरण ने मदद की है वहीं मीडिया की भूमिका भी अतिशय उल्लेखनीय रही है। पत्र-पत्रिकाएँ स्त्री मुक्ति के पक्ष-विपक्ष में बहस चलाती रही हैं। मीडिया के इस सम्बल ने स्त्री को भरपूर आत्मविश्वासी एवं लक्ष्य प्राप्ति के लिए जुझारू बनाया है। आज परिवारों में बेटियाँ भी उस सुविधा को पाने में असमर्थ रहती है। बड़े और छोटे शहर, शहर और गाँव तथा शिक्षा और धन के आधार पर बनी वर्ग भिन्नताएँ आज भी स्त्री आजादी को किस तरह नियंत्रित करती हैं, यह सर्वविदित है। आज मीडिया का उद्देश्य स्त्री का इस्तेमाल एक मनुष्य के रूप में नहीं एक जींस के रूप में कर रहा है। अब स्त्री की बौद्धिक क्रियात्मकता अथवा अन्य क्षेत्रों में प्रदर्शित उत्कृष्टता मीडिया के लिए उतना महत्व नहीं रखती जितना सेक्स के क्षेत्र में उसके द्वारा किए गए एडवेंचर रखते हैं।

नारी भावना की मूर्ति है, करुणा का सागर। प्रेम, दया, क्षमा उसके आभूषण होते हैं। आकांक्षा अपनी डेढ़ साल की बेटि मिनी को छोड़कर दफ्तर जाती है। वस्तुतः नौकरपेशा महिलाओं को अपने बच्चों को जब शिशु भवन में मजबूरन छोड़ना पड़ता तो उसके लिए यह बहुत दुःखत स्थिति होती है। आकांक्षा का पति कपिल मिनी को सुबह छोड़कर जाते वक्त कहता है— “छोड़ो भी यह नौकरी फौकरी का चक्कर, घर बैठे, जैसे भी चलेगा, चलाएंगे, सच। इस गुड़िया को यूँ छोड़कर जाना अखरता है।” चित्रा जी के कथा साहित्य में महिलाओं को उनके जीवन की दर्द भरी दास्तान के साथ साथ मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय जीवन की त्रासदियों एवं संघर्ष की चेतना को भी स्थान मिला है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया आज स्त्री जीवन पर नकारात्मक एवं सकारात्मक प्रभाव डाल रही है। टी.वी. और बाजारीकरण की प्रक्रिया ने महिला के रूप और स्वरूप दोनों को बदल दिया है। गिलिगडु उपन्यास में निम्नवर्गीय एवं विधवा नारी जीवन की त्रासदियों का चित्रण देखने को मिलता है। ‘एक जमीन अपनी’ में स्त्री के शोषण का वर्णन देखने को मिलता है। सुधांशु स्त्री को निम्न स्तर का मानते हुए कहता है— “तुम मामूली औरत, क्या है तुममें? सिवा तराशी हुई देह के? और मैं सिर्फ तराशे

शरीरके के साथ नहीं रह सकता, पुरुष को इससे आगे भी कुछ चाहिए होता है। महज शरीर पाने के लिए उसे घर में औरत पालने की जरूरत नहीं होती।।”

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि चित्रा जी ने अपनी कहानियों में नारी जीवन के विविध सन्दर्भों को उद्घाटित किया है। उनके पात्र काल्पनिक नहीं हैं वह यथार्थवादी धरातल पर खड़े होकर समाज और उसमें निहित जीवन के विविध पक्षों और उनकी मानसिकता को उद्घाटित कर रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. डॉ0 रामस्वरूप खरे, सं0 शोधार्णव, अंक अप्रैल-जून 2014, पूर्णांक 32, पृ0 20
2. शोधायन भाग 1, सं0 डॉ प्रवीण कुमार सक्सेना, पवनपुत्र पब्लिकेशन शारदा नगर लखनऊ, सं2010, पृ0 70
3. चित्रा मुद्गल, आदि अनादि भाग 1, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 2009, पृ0 42
4. चित्रा मुद्गल, आदि अनादि भाग 2, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 2009, पृ0 175
5. चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि – 2, पृ. 232
6. के. वनजा, चित्रा मुद्गल एक मूल्यांकन, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, सं0 2011, पृ0 148
7. चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि – 1, पृ0 211,
8. चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि – 2, पृ. 148
9. चित्रा मुद्गल, आदि अनादि भाग 2, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 2009, पृ0 181
10. के. वनजा, चित्रा मुद्गल एक मूल्यांकन, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, सं0 2011, पृ0

चित्रा मुद्गल की कहानियों में आधुनिकीकरण का प्रभाव

गुणमाला पाटीदार

शोध छात्रा

मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

भारतीय समाज में स्त्रियों की प्रमुख समस्या उनका यौन-शोषण एवम् उत्पीड़न है। यह यौन शोषण छेड़छाड़ से लेकर वेश्यावृत्ति तक के रूप में व्याप्त है। आज विज्ञापनों में अर्द्धनग्न स्त्रियों को इस प्रकार से दिखाया जाता है, जैसे उनकी देह कोई प्रदर्शन की वस्तु हो। अश्लील साहित्य बस अड़्डों, रेलवे स्टेशनों तथा बुक स्टालों पर खुलेआम बिकता है और इनके खरीददार बिना किसी संकोच से खरीद लेते हैं। यह साहित्य आज पुरुष ही नहीं महिलाएं भी खरीद रही हैं। चलचित्रों में भी यौन-शोषण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कैबरे डाँस केवल चलचित्रों में नहीं दिखाए जाते, अपितु अनेक पंचसितारा होटलों में इनका प्रचलन दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

आज की महिला जागरूक हो चुकी है, शिक्षित हो रही है, स्वावलम्बी हो रही है, वह अपने स्व एवं अस्मिता की तलाश में है। और उनके जुझारू व्यक्तित्व, आक्रामक तेवर, और अनंत की जिजीविषा को उजागर करने का सफल प्रयास चित्रा जी ने अपनी कहानियों में किया है—“आज स्त्री ने स्त्री के व्यक्तित्व को नवीन परिप्रेक्ष्य में उभारने का प्रयास किया है। यही प्रयत्न स्त्री विमर्श की नवीन दृष्टि व प्रोत्साहन होता है साथ ही स्त्री विमर्श के विकास की नवीन सम्भावनाओं का एवं भविष्य का भी संकेत कराता है।” ‘दरमियान’ कहानी में नौकरी पेशा स्त्रियों को परिवार को, छोटे बच्चों को अपने से अलग रखने का अपराधबोध, दफ्तरों में काम करते हुए, लगातार वहां के माहौल और किस्से कहानियों को झेलने से जो खीझ, पीड़ा तथा अपमान होता है, उसका बारीक चित्रण इसमें हुआ है। आकांक्षा अखबार के दफ्तर में काम करती है। लड़कियों के मामले में उसका कार्यालय कुछ अधिक ही बदनाम है। लड़कियां भी कम त्रस्त नहीं। कुछ कन्याओं ने पत्रकारिता को बतौर फैशन अपनाया है और मिजाज निर्धारित किया है—बोल्डनेस। उनके और संपादकों के बीच में क्या चल रहा है या कौन संपादक कैसा है, किसको लिपट देता है, किसको उपेक्षित करता है, इन तमाम बातों को विस्तार से उसी भाषा में कहा गया है। दफ्तरवालों की मानसिकता से वह बहुत ऊब चुकी हैं, “वे चाहे दुनिया के किसी कोने में मिल जाएं और चाहे जिस विषय में बातचीत आरंभ करें, घूम-फिरकर सुई वहीं अटक जाती है। अबकी बोनस कितने प्रतिशत मिल रहा है? पालेकर एवार्ड का फैसला हो ही नहीं रहा। हो गया तो समझो लॉटरी खुल गई। नयों को कितना फायदा होगा, पुरानों को कितनी रकम एकमुश्त मिलेगी, कौन-सी लड़की किससे ‘फ्लर्ट’ कर रही है। फलाने संपादक ने तो हद ही कर रखी है, सरेआम केबिन का दरवाजा बंद कर लेता है। ऐन मौके पर अचानक कोई

मिलने पहुंच जाए तो पी.ए. थपलियाल केबिन के बाहर से ही उसे टरका देता, साहब जरूरी कामों में बिजी हैं। पिच्छू आव...'

सामाजिक जीवन में बहुमुखी यथार्थ और नारी समस्याओं को संस्पर्श किया है, साथ ही व्यक्ति एवं उसके अन्तर्मन को केन्द्र बनाकर जीवन की सूक्ष्म संवेदनशीलता उसके अन्तर्द्वन्द्वों, कृण्ठाओं एवं विकृतियों का निरूपण किया है। स्त्री को आगे भी अपने अधीन बनाए रखने के सामंती इरादों को वह इन हथकंडों से सिद्ध कर रहा है। स्त्री का अब भी इस्तेमाल हो रहा है और तथाकथित भद्र, संपन्न, महत्वाकांक्षी, आधुनिकता कहलाने का शौकीन शिक्षित स्त्री-वर्ग नीता की तरह इन परिभाषाओं को आत्मसात कर पुरुषों से बराबरी का दंभ कर रहा है। अंकिता के वक्तव्य से यह स्पष्ट हो उठता है कि आज का अधिकांश पढ़ा-लिखा विचारशील होने का दावा करता हुआ स्त्री-समाज, स्वतंत्र्य, स्त्री समानता और अधिकारों की लड़ाई लड़ता हुआ भी नहीं जानता कि वे अधिकार वस्तुतः क्या हैं, कैसे होने चाहिए, किस रूप में होने चाहिए। महिलाओं को शिक्षित किए बिना उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना सम्भव नहीं महिलाओं को जागृत और सचेत बनाने की प्रक्रिया में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस प्रक्रिया में उनकी कहानियों में विभिन्न प्रकार के नारी पात्र परिकल्पित हुए हैं— सामान्य नारी, उत्पीड़ित नारी, समाज सुधारक नारी, युग परिवेश के प्रति जागरूक नारी, पारिवारिक एवं दाम्पत्य सम्बन्धों के मध्य विभिन्न रूपों में नारी और सम्पन्न है वह दूसरों की तरफ देखना ही नहीं चाहता। प्रतियोगिता की भावना, व्यवस्था, दोष, कोमल भावनाओं का ह्रास, स्वार्थ आदि समाज के दूषित करने के प्रमुख हेतु हैं। आधुनिकता की परिभाषा नीता द्वारा दी जाती है उसकी असलियत का खुलासा अंकू करती है। उसके अनुसार वह परिभाषा अधिकार, आधुनिकता और स्वतंत्रता के नाम पर पुरुषों द्वारा ही अखबारों, पत्रिकाओं, विज्ञापनों, फिल्मों, पोस्टरों, स्लाइड्सों के माध्यम से स्त्री की सौंपी जा रही है। जैसे-जैसे शिक्षा की रोशनी फैलेगी उतनी ही तेजी से महिलाएँ जागरूक ही नहीं बल्कि सक्रिय भी होती जायेंगी। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि आजादी के इतने वर्षों पश्चात् भी भारत की महिलाओं को संविधान सम्मत शिक्षा की समानता का अधिकार प्राप्त नहीं है। पुरुषों की यह एकाधिकारवादी सोच महिलाओं को समान दर्जा दिलाने में बाधक सिद्ध होती है। इस दिशा में प्रयास के लिए सभी को अपनी सोच सकारात्मक रखनी होगी और अपने अधिकारों की लड़ाई 'शिक्षा, दक्षता, 'ज्ञान, 'कौशल' के साथ जीतनी होगी। तभी परिणाम सुखद हो सकेंगे, अन्यथा स्थिति यथावत रहेगी।

चित्रा मुद्गल जी ने समाज में शहरी सभ्यता के अनेक रूपों को उद्घाटित किया है। इसी वातावरण में शहरी महिलाओं को अपने बच्चों को पालना-पोशना पड़ता है। और महिलाओं को अपने बच्चों को जब शिशु भवन में मजबूरन छोड़ना पड़ता तो उसके लिए यह बहुत दुःखत स्थिति होती है। आकांक्षा का पति कपिल मिनी को सुबह छोड़कर जाते वक्त कहता है— "छोड़ो भी यह नौकरी फौकरी का चक्कर, घर बैठे, जैसे भी चलेगा, चलाएंगे, सच। इस गुड़िया को यूं

छोड़कर जाना अखरता है।” किन्तु आर्थिक स्थिति से जूझते हुए भी महिलाएं चाहते हुए भी नौकरी को नहीं छोड़ सकती है। घर में काम करनेवाली औरतों में विमलाएं होती हैं, यह जाहिर करना है ‘जब तक विमलाएं हैं’ कहानी का मकसद। यह कहानी असल में संस्मरणात्मक शैली में लिखित है। इसमें आत्मांश भी हैं। लेखिका से सामाजिक संस्था ‘उत्तर प्रदेशीय महिला मंद’ की रीढ़ कही जाने वाली ऋचा जोशी चाहती है कि वे निम्न वर्ग की किसी ऐसी कर्मठ संघर्षशील, चेतना संपन्न महिला के नाम की संस्तुति करके भेजें, जिसका सम्मान किया जा सके। तब लेखिका को विमला याद आती है। वह घर का काम करने के सिलसिले में उनसे मिलने आई थी। पति गमकू पियक्कड़ था। अपने कर्तव्य को पालने के लिए वह तैयार नहीं था। अंत में वह घर छोड़कर चला जाता है। विमला अपनी मेहनत के बल पर तीनों बच्चों का पालन-पोषण करती है और पढ़ाती है। ये सब अपने बलबूते पर खड़े होकर दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ वह करती है। विमला नाम भी लेखिका ने उसके गुणों एवं कर्तव्य कुशलताओं के कारण दिया है। लेखिका उसे बहुत समझाती है कि यह सम्मान लेने के लिए सहमति दे दे, क्योंकि वह सम्मान स्त्री चेतना का सम्मान है। कारण वह हजारों उत्पीड़ित महिलाओं के लिए मिसाल बन जाती है, लेकिन वह तैयार नहीं होती, ‘कैसी बात कह रही हैं दीदी। इनाम ले लूं। शाल ओढ़ लूं? अपने जाने हमने ऐसी कोई बहादुरी नहीं की! टाप बोलों, कारगिल जा के हमने पाकिस्तानी दुश्मनों को पछाड़ा है? जमुना में डूबती किसी की औलाद को डूबने से बचाया है? हमने ऐसा कुछ नहीं किया, दीदी! ऊकोई बड़ा काम नहीं किया। अपनी मासूम औलाद के संग हुई नाइन्साफी की खिलाफत तो मां-बाप का फर्ज ठहरा। खुशी इस बात की ठहरी कि बरस-भर बाद ही सही, सत्यानासी राक्षस पुलिस के हत्थे तो चढ़ा! कुकर्मि न धरा जाता तो आगे....” हस्ताक्षेप कहानी में कला और अश्लीलता पर भी अंकित अपने विचार प्रकट करती है, “वह सब अश्लील होता है, जिसे देखकर मन में अश्लीन प्रक्रिया उपजे। इरादे को कलात्मकता की आड़ में छिपा जाना कठिन है। अभिव्यक्ति बड़ी पारदर्शी होती है। तलछटी का रोम-रोम सतह-सा आंखों की सीमा में पसर आता है, चाहे जितनी अवधारणाएं रचते, परोसते रहो..”

बड़े-बड़े नगरों में अपार्टमेंट्स में काम करनेवाली बाइयों को लेकर नौकरीपेशा नारियों के मन में जो शक एवं थोड़ा ईर्ष्याभाव उत्पन्न होता है, इसका जीता-जागता बयान ‘स्टेपिनी’ नामक कहानी में है। आभा नौकरीपेशा नारी है, उसका पति भी काम करता है। इसलिए, अपनी छोटी बच्ची को क्रेश में दिन भर छोड़ देती है। घर के काम में सहायता देने के लिए बाई बताशा भी है। यहां कहानीकार इस पर प्रकाश डालना चाहती हैं कि स्त्री को बच्चों के पालन और पति के खयाल करने के साथ नौकरी भी करना बहुत कठिन कार्य है। सफलता के साथ सभी कामों को आगे बढ़ाना मुश्किल है। आभा सोचती है, “विनोद को सब चाहिए एक साथ। कहीं कुछ कमी रह गई या असमर्थता तो फौरन मुंह फाड़ बैठे दूसरी ओर.....नहीं सोचते कि

नौकरी और गृहस्थी के बीच पोर-पोर पिसती हुई देह कहां से इतनी सामर्थ्य लाए कि प्रतिदिन उन्हें संतुष्ट कर सके।”

संदर्भ:

1. डॉ० रामस्वरूप खरे, सं० शोधार्णव, अंक अप्रैल-जून 2014, पूर्णांक 32, पृ० 21
 2. चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि – 2, पृ. 157
 3. चित्रा मुद्गल, आदि अनादि भाग 2, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं० 2009, पृ० 181
 4. चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि-3, पृ. 264-265
 5. चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि-2, पृ. 245,
 6. चित्रा मुद्गल, आदि-अनादि-3, पृ० 61
-

GOODS AND SERVICE TAX : CHALLENGES AND IMPACTS ON INDIAN ECONOMY

Dr.Nisha Bansal

Assistant Professor,SPU PG College Falna

Yashunisha8814@gmail.com

ABSTRACT

Tax policies play a important role in the economy. A good tax system should keep in view the various issues of the economy. Indian economy marching towards the progress with the lightning speed. After the demonetization the GST Bill is one the most biggest tax reforms in India since the independence. According to the GST Bill , all the complex and multiple indirect taxes were replaced by on ultimate tax which is GST. GST created a buzz in the Indian economic market. Introduction of GST is considered to be a significant step in the reform of indirect taxation in India. This paper will through light on features, effects, advantage and challenges of GST on Indian economy.

INTRODUCTION

India's biggest tax reforms is now a reality. A comprehensive dual Goods and Service Tax (GST) has replaced the complex multiple indirect tax structure from 1 July 2017.

The concept of GST was visualized for the first time in 1999. On 8 August 2016, the constitutional amendment bill for roll out of GST was passed by the parliament. Introduction of GST is considered to be a significant step in the reform of indirect taxation in India. Amalgamating several central and state taxes into a single tax would help mitigate the double taxation, leading to a common national market. GST replace all indirect taxes levied on goods and services by the Indian Central and State Governments. Though GST is considered to be a historical tax reform in India, it also has some demerits. In this research paper we would look into GST taxation and deal with its benefits and challenges.

KEY WORDS : Goods and Service Tax, Impact of GST, Demerits, Indian Economy.

WHAT IS THE GST ?

Goods and Service Tax (GST) is a comprehensive tax levy on manufacture, sale and consumption of goods and service at a national level. In simple terms, GST may be defined as a tax on goods and services, which is liveable at each point of sale or provision of service, in which at the time of sale of goods or providing the services the seller or service

provider may claim the input credit of tax which he has paid while purchasing the goods or procuring the services. It is basically a tax on final consumption.

Under the GST regime, both the Centre and the State would have the powers to tax the supply of goods and services right from their primary stage to final consumption. At the centre's level, introduction of GST will mean that it takes the place of central excise duty, service tax and additional customs duties. At the state level, the GST will take the place of State VAT.

LITERATURE REVIEW :

- Pro. Pooja S. Kawle and Pro.Yogesh L. Aher 2017 in their study 'Importance and Significance Role of GST in Indian Economy' they clear that the new system of taxation is considered to be more improved system over the preexisting central excise duty at the national level and sales tax system at the state level. GST will be significant break through and a logical step towards a comprehensive indirect tax reforms in the country.
- Poonam 2017, in the study she has tried to attempt to spot the concept of GST and its importance in Indian economy. The author has tried to give information about GST. She had cleared that GST would be a very important step in the field of indirect taxation.
- Indirect tax committee of institute of Chartered accountant of India 2015 submitted a ppt naming GST which stated in brief details of the GST and its impact on economic and various stakeholders.
- Dr.R. Vasantgopal 2011, has proposed that GST is a big leap in the indirect taxation system. The author assess positive impact of GST on various development areas of the country viz. agriculture, manufacturing industry, MSME, housing, poverty reduction, employment, price level, Exim trade, GDP, Government revenue ect. Author concluded that the positive impacts are dependent on a neutral and rational design of the GST.
- Akansha Khurana and Aastha Sharma 2016, 'Goods and Service Tax in India: A positive reform for indirect tax system' in the paper they tried to introduced GST. The author concluded that the implementation of GST required concentrated efforts of Central and State Government, Trade and Industries. Efficient formulation of GST will lead to resources and revenue gain for the government.

- Girish Garg 2014, is analyse the impact of GST on Indian tax scenario. Author discuss in the paper background, silent features and impact of GST in the present tax scenario in India.

OBJECTIVES OF THE STUDY:

- To understand the concept of GST
- To analyze the main impact of GST on Indian economy.
- To analyze the challenges and demerits of GST.

RESEARCH METHODOLOGY :

The study focuses on study of secondary data collected from various books, national and international journals, government reports and publications, focused on various aspects and impacts of GST.

STATEMENT OF PROBLEM

The fundamental idea behind the concept of GST is to eliminate various forms of indirect taxes that are levied and collected at different points of consumption and to overcome the short comings of the existing indirect tax system. This study analyses how GST bill would impact economy of our country and benefit various sectors and what is the main challenges.

BENEFITS OF GST

- **Easier Tax Compliance :-** Instead of having to deal with many different taxation laws and spending a lot of time in legal advice and compliance businesses will now need to pay GST only. This is a big relief and it creates simplicity and predictability in business. The GST being introduced to create a common market across states, not only to avoid enfeebled effect of indirect tax but also to improve tax compliance.
- **Simplified And Cost Saving :-** This is a cost saving system as procedural cost reduces due to uniform accounting for all types of taxes. Only three accounts: CGST, SGST, IGST have to be maintained. GST is structured to simplify the current indirect tax system. It is a long term strategy leading to a higher output, more employment opportunities and economic boom.
- **Beneficial For Economy And Corporation :-** GST is beneficial for both economy and corporation. The reduce tax burden on companies will reduce production cost making export more competitive.

- **Helpful In Removing Economic Distortions :-** GST will be levied only at the final destination of consumption based on VAT principle and not at various point. This will help in removing economic distortions and bring about development of a common National market.
- **Transparent And Corruption Free :-** It is help to build a transparent and corruption free tax administration before implementation of GST, the tax is levied on when a finish product moves out from a factory, which is paid by the manufacturer and it is again levied at the retail outlet when sold. It can bring more transparency and better compliance. Number of departments is reduce which in turn may lead to less corruption.
- **Export Oriented :-** It is good for export oriented business. Because it is not applied for goods and services which are exported out of India.
- **More Effective In Long Run :-** In the long run, the lower tax burden could translate into lower prices on goods for consumers. It is increased demand and consumption of goods, due to fall in prices of consumer goods.
- **Reduced Tax Evasion :-** No one can evade tax by forgoing PAN cards as the government imposed the rule to link PAN and Aadhar Card in order to submit tax and acquire tax benefits.
- **Increase In State Revenue :-** GST is expand the tax base and thereby lead to increase in the revenue available at the states and the centre's disposal. This is help in increasing the resources of the poorer states.
- **Improvement In Tax Governance :-** GST improve tax governance in two ways. One it is related to self policing incentive inherent to a value added tax that can work very powerfully in the GST. The second relates to the dual monitoring structure of GST, one by the states and the other by the centre.
- **Uniform Rates Across States :-** Transforming the market by simpler rates of 0%, 5%, 12%, 18%, and 28% across each state in India makes it easy for doing business.
- **Boon For SMES:-** Small and medium enterprises whose annual income does not exceed over 20 lakhs are exempted from paying any taxes. This will provide better growth in business and push the dream of startup India ahead.

DISADVANTAGE AND CHALLENGES

- **Online Procedure :-** GST compliance return filing and payments all have to be done online many small businesses are not tech-savvy and do not have the

resources for fully computerized compliance. Even as the rest of nation gets ready to go digital, business in small cities across India face a huge technology problem.

- **Increase In Operating Cost :-** Most of small businesses in India do not employ tax professionals and have traditionally preferred to pay taxes and file returns on their own to save costs. However, they will require professional assistance to become GST compliant as it is a completely a new system. While this will benefit the professionals, the small businesses will have to bear the additional cost of hiring experts. Also business will need to trained their employees in GST compliance, further increasing their overhead expenses.
- **Increase In Cost Of Petroleum Products :-** The Government has left petroleum out of GST. Industries that require petroleum products for manufacturing cannot input for tax credits which will increase the final price.
- **Professional Assistance :-** New startup and small businesses who lack knowledge of GST may require hiring professionals for managing their taxes.
- **Luxury Items To Get Costly :-** Drinking tea, coffee at branded cafes, staying in hotels, electronic devices like T.V. washing machine, bikes, movie tickets etc. will be costlier with GST bill.
- **Unstable Economy :-** After implementation demonetization bill and GST bill India's economy will take approximately 1-2 years to become stable.
- GST would impact negatively on the real estate market. It would add up to 8 percent to the cost of new homes and reduce demand by about 12 percent.
- The CGST (Central GST) and SGST (State GST) are nothing but new names for central excise/ service tax, VAT and CST . Hence, there is no major reduction in the number of tax layers.

CONCLUSION

As per the study it is clear that implementation of GST has both challenges and benefits for the economy of the country. GST will integrate the Indian market and stimulate economic activities, potentially leading to an increase in GDP growth. GST is a uniform tax rate for both goods and services. It will lead to reduction in multiplicity of taxes along with mitigation of cascading/ double taxation and help in development of common national market. With the implementation of GST, India would eliminate all the tax levied by different states and come under the category of "one nation, one tax" although there is lot of confusion in its application. The bank, finance professionals, traders and the industries

seems to be not fully prepared to accept the changes of implementing the GST. There will be fall in prices of some commodities but on other hand prices of some other goods and services will rise. There is threat of inflation too and some economic sectors may face reduction in their financial resources. But overall it will be a great change.

REFERENCES

1. Vasanthagopal, Dr.R 2011, GST in India :A Big Leap in the Indirect Taxation System, International Journal
2. Rev. Dr. Daniel Fernandes, S.J. Goods and Service Tax (GST) Seminar Compendium 2015
3. First Discussion Paper On GST In India, Nov. 10, 2009. State Finance Commission.
4. Garggirish 2014, Basic Concept and Features of Goods and Service Tax in India, International Journal
5. An Insight of GST in India, Vol. 1, Oct.2015, The Institute of Cost accounts of India.
6. Alamelu.L.and Sharon David 2015 The Impact Of Goods and Service tax on End Consumers of Manufacturing, International Journal.
7. Arun Raj. R, Swetha. N,Robin Samuel, 2015, GST and Its Provisions-An Overview, International Journal.
8. <https://www.google.co.in/search>
9. www.deskera.in/gst-benefits-and-impact-on-indian-economy/
10. <http://m.economictimes.com/markets/stocks/news/how-gst-will-impact-sectors/goods-services-tax>
11. <https://cleartax.in/s/gst-analysis-and-opinions>
12. <https://myinvestmentideas.com/2017/06/what-is-gst-and-how-does-it-affect-common-man-in-india/>

Novel Findings for differently Annealed Non-stoichiometric Cadmium Oxides

Krishan Chandra Verma

Department of Physics,

Veerbhumi Govt. P.G. College, Mahoba-210427, U.P., India

ABSTRACT

Conventional 4-probe and van der Pauw measurements on differently annealed cadmium oxide, CdO, show, for the first time, large variation of electrical conductivity after heat treatments at different temperatures. It is novel that 800° C firing turns this most ionic 11-VI semiconductor as conducting, at 300 K, as various HTSC. Further characterization of the compositions by Rutherford Back Scattering (RBS) and resonant scattering, of the Structures by XRD and of the electronic and defect states by positron annihilation lifetime point towards non-stoichiometry and new phases in Cd-O. The presently found conducting form should be important also in the technological applications of CdO.

Key Words:- *van der Pauw measurment, annealed cadmium oxide, electrical conductivity, Rutherford Back Scattering, XRD*

INTRODUCTION

Although different colours for cadmium oxide (CdO) are known to chemists for decades, our recent work ^[1] appears to be the only known effort to characterize the different forms. With modern techniques. Here van der Pauw (vdP) 4-probe electrical resistivity measurements ^[2] have been made on different CdO pellets fired for 36 hours at different temperatures up to 800° C. This has been a follow-up of hints from our earlier and conventional 4-probe measurements of huge reductions in resistivity on firings at 400° C and 800° C. Present finding (Table 1) of the lowered room temperature resistivity of 2.15 m-ohm-cm for the black CdO, obtained after 800° C firing, with respect to 17.9 m-ohm-cm for the brown-coloured (practically unfired) CdO, and a peaking of the resistivity (~ 26.4 m-ohm-cm) for firing at around 275° C temperature, convinced us that CdO system must be novel with respect to physics and applications. Ni-Cd battery is one such potential application. So a detailed probing of this potential novel material has been started in the present work using X-Ray Diffraction (XRD), Positron Annihilation Lifetime (PAL) and Rutherford Back Scattering (RBS) techniques. It must be added that low sensitivity of RBS with accelerated alpha-particles, for oxygen estimation has been overcome here by utilizing resonant scattering of 3.05 MeV alpha-particles by Oxygen atoms. Its potential for non-destructive oxygen estimation in oxides could be established. An unification of the findings from these varied experiments has been attempted and the intriguing observations in differently heat treated CdO have been partly understood.

EXPERIMENTAL OUTLINE

Electrical resistance measurement with the presently used Keithley 182 nanovoltmeter set-up or its equivalent easily achieves a high accuracy. That can be lost in resistivity determination by conventional 4-probe method, as the errors in measuring the separation of the voltage leads and sample width can be rather large. This difficulty ^[1] has been overcome in the present vdP method that "measures" these distances electrically by interchanging the four vdP leads made on the periphery of a planar sample. Pellets of 15 mm diameter, made (under 10 ton) from extra pure CdO powder from E. Marck (India), were used in the present work.

Fig.1 on the next page shows the result of RBS with 3.05 MeV alphas from the pelletron at IOP, Bhubaneswar. In contrast to the RBS step for Cd, a resonance peak can be seen for oxygen due to our choice of the energy. RBS step for light atoms like oxygen is generally insignificant.

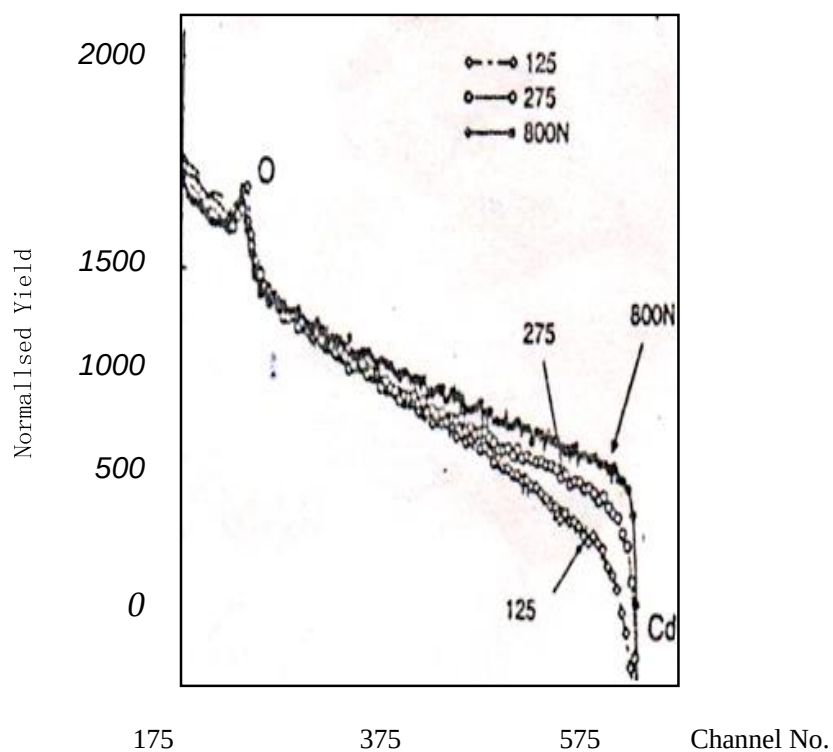


Fig.1 RBS spectrum for 3.05 MeV alphas on CdO

Table 1 : Electrical & PAL Results for CdO

Firing temp. "°C"	125	275	350	550	800
Resistivity (m.ohm.cm)	17.9	26.4	22.9	16.0	2.15
^t r _B (in ps)	205.4	173.9	172.7	147.7	135.8
^t r _{av} (in ps)	231.5	203.1	204.5	167.1	152.5
componentr2 (in ps)	326.7	328.9	311.2	320.0	325.3
I2 (%)	41.1	32.0	38.6	18.3	13.7

Positron lifetime spectrum taken in our Na (22)-based set-up ^[3] consisted of mainly two components. From these, r_B meaning bulk lifetime as well as r_a meaning the average lifetime, have been estimated in Table 1. Also shown are I₂, the intensity (in %) of the component as r₂ and r₂ itself. Noted that the longer life ^[4] r₂ is known from simple trapping model to result from annihilation of trapped positrons. In contrast, is the lifetime of positrons annihilating in the bulk of the solid. XRD did not show any drastic change in the present samples due to the heat treatments.

RESULTS AND DISCUSSION

Earlier study [1] on similar pellets made from CdO powder (GR grade) supplied by Loba Chemie (India) showed lowest resistivity for 800°C firing as in Table 1 here. The Loba CdO however, showed a much higher starting resistivity, implying that the E. Marck CdO has undergone more heat treatments during its manufacture. This does not affect our result as the pattern of Here we take the resistivity of the 125°C fired sample as the baseline to avoid environmental 'effects (like moisture absorption) possible for the unfired or as supplied samples. Reduction of this 8.3 on heat treatment at 800°C is most interesting and important for some applications. Neither this aspect nor the 47.5% increase of resistivity on sintering at 275°C has been reported by any other group. These intriguing results from the higher accuracy vdP method arc supported by conventional measurements also.

The step (in Fig. 1) due alphas backscattered (through 150° in this case) from Cd in our thick CdO samples can be seen to be of higher heights for firings at higher temperatures. The area under the 0-peak has been estimated to be less for firings at higher temperatures. Both observations imply

more loss of oxygen for firing at higher temperatures. We presume that the starting material (the unfired or 125° C fired sample in Table 1) has excess oxygen. Firing at temperatures between 275° C and 350° C must be resulting in stoichiometric or 1:1 CdO that has highest resistivity. Further loss of oxygen on firing at higher temperatures results in excess of Cd. Excess Cd can contribute electron carriers to the solid. In fact, excess of oxygen as well as excess of Cd can lead, due to charge balance requirement, to creation of charge-carriers and hence better conductivity. Next we observe PAL results in the Table to support this model. Component r_2 must be resulting from annihilation of positrons trapped at negatively charged oxygen sites. Comparable values of r_2 indicate that the same trapping centre is involved in all the samples. Clearly observed fall, of 1_2 with increase of the firing temperature indicates loss of more and oxygen due to heat treatment at progressively higher temperatures. This is in line with more oxygen loss for firing at higher temperatures as observed in RBS experiment and needed in the above mentioned model explaining the resistivity variation.

CONCLUSION

Positron annihilation, electrical and RBS measurements show that stoichiometric defects in CdO can lead to reduction of its electrical resistivity by a factor of 12 or more. Its association to the corresponding changes of colour and other properties will be probed in future.

REFERENCE

- [1] Udayan De et al., J. of Phys. & Chem. of Solids 61 (2000) 1955; De et al., Ind. J. of Phys. A 71-k (1997) 273.
- [2] .K. Pal, U. De & P. Sen, Phys. Stat. Sol. 27a (1975) K1; L. J. van der Pauw, Philips Res. Report 13 (1958) 1.
- [3] a Sanyal, D. Banerjee and Udayan De, Phys. Rev. B58 (1998) 15226.
- [4] S. Tarafdar, T. R. Middya, A. Banerjee, D. Sanyal, D. Banerjee, K. C. Verma, U. De, Solid State Ionics 152-153 (2002) 235-239
- [5] K. C. Verma, U. De, Ind. J. Phys. 79 (9), 1075-1078 (2005).
- [6] U. De. K. C. Verma, P. Karmakar, A. Sarkar, Soma De, Sikha Verma, Nucl. Instr. And Meth. In Phys. Res. B 212 (2003) 505-509
- [7] K. C. Verma, Minakhi Maitra, Sujata Tarafdar, Tapas Ranjan Middya, U.De, Ind. J. Phys. 79(7), 769-772 (2005).
- [8] W. K. Chu, J. W. Mayer, M. A. Nicolet, Backscattering Spectrometry, Academic Press, Orlando, 1978
- [9] A. Sanyal, K. C. Verma, A. Sarkar, U. De, International Workshop on defects in Correlated Electron Systems, Dresden, Germany, 21-26 July 2001.

Water Management: Law and Policy in India

Hemant Kumar

Lecturer in Law
Govt. Law College, Alwar

Introduction:-

Water is the most precious gift of the nature and very essential not only to the mankind but flora and fauna also. All living creatures on the mother earth have a right to environmental in order to survive them. In any organized society, right to live, as meeting does not ensure a human being only the animal needs of men. It is secured only when he is assured of all facilities to develop him and is freed from restrictions, which in hit his growth. All human rights are designed to achieve this subject. There is an inseparable relationship between man and environment. It is, therefore our bounden duty to protect our environment for the peaceful survival of the mankind and nature. In order to protect the environment Indian government has also taken several legislative and executive frameworks, in addition to the Constitutional amendments to protect and preserve the environment. The Indian scenario with regards to the availability of water is paradox. The country accounts for 2.5 percent of the total land area and 4 percent of the water resources of the world. Newertheless water is a scarce national resource withs demands on it increasing on account of a growing population of over one billion. Since water is a scant resource, its sharing and distribution require a regulatory framework, which is brought about through not only written laws but also traditional and customary practices. In terms of statutory development irrigation laws constitute historically the most development part of Water law.

Water Resources of India

Water is the elixir of life, a precious gift of nature to mankind and millions of other species living on the earth. It is fast becoming a scarce commodity in most part of the world. Water resource comprising of surface water (river and lakes), ground water and marine and coastal water, support all living thing including human beings. India occupies only 3.29 km³ geographical area, which form 2.4% of the world's land area, it supports over 15% of the world population. The total utilizable water resource of the country are assessed as 1086 km³. Recently the National Commission for Integrated water Resources Development estimates the basim-wise average annual flow in Indian river systems as 1953 km³. The utilizable annual surface water of the country is 690 km³. There is considerable scope for increasing the utilization of water in the Ganga- Brahmaputra basins by construction of storage at suitable locations in neighbouring countries. The annual potential for ground water recharge from rainfall in India is about 343.43 km³, which is 8.56% of

the total annual rainfall of the country the annual potential ground water recharge augmentation from canal irrigation system is about 89.46 km³. Thus, total replenish able ground water resource of the country is assessed as 431.89%.

Water Policies In India

This section first focuses on the steps taken prior to 1987 until the first National Water Policy was introduced. Then it examines the existing policies that govern different types of water source in India. The umbrella body for the management of water in the country was constituted. It was chaired by the prime minister of India and called the National Water Council (NWRC). The council was supported by National Water Board. In 1987, the council finalized the National Water Policy. This document was a comprehensive statement of various policy issues considering the opinion of the states. As state governments also represented NWRC, it was agreed that the state would also support the national water policy. Accordingly, operational and procedural change etc were finalized through the NWRC.

A chronology of events in the evolution of the Government Water Policies in India is given below:

1866 The government is given the main role in the irrigation and development

1935 Central government transferred irrigation to the states governments.

1950 Beginning of the planned development

1972 Second irrigation commission report

1980 The Rashtriya Barh Ayog (National Commission on Floods) submitted its report.

1986 Formulation of NWRC

1987 National Water Policy(1987) finalized in the first meeting of NWRC.

1994 Modified draft of National Water Policy Allocation among states, circulated to the states.

1998 Water sector review by the GOI and World Bank.

1999 Second meeting of NWRC considered water allocation and river basin authorizes

1999 Report of the National Commission on integrated water development

2000 National water Policy (2002)

2004 CPSP India studies by ICID-IAH

The National Water Policy 2012

Ministry of Water Resources has evolved the Draft National Water Policy (2012) to meet the present challenges in the water sector. The salient features of the Draft National Water Policy (2012) are at Annexure I. State Governments have been actively involved while drafting the Policy.

The National Water Board comprising of Chief Secretaries of all the States and Secretaries of related Union Ministries considered the draft National Water Policy (2012) at its meeting held on 7th June 2012. Thereafter, the National Water Resources Council with Chief Ministers of all States as members is to consider and adopt the draft National Water Policy (2012) arrived at as per deliberational in the National Water Board. There is no proposal at present for a separate interlinking River Policy. However, the draft National Water Policy (2012) stipulates that inter basin transfers of water should be considered on the basis of merits of each case after evaluating the environmental, economic and social impacts of such transfers. The Supreme Court in its order dated 27-02-2012 has directed the Union of India and particularly the Ministry of Water Resources to forth with constitute a committee to be called 'Special Committee for Inter-Linking of Rivers'. Accordingly the Government is constituting the High Power Committee for interlinking of rivers as per the direction of the Supreme Court. The nomination from the States involved in the inter-linking of rivers have been called for. The draft National Water Policy (2012) is to be considered by the National Water Resources Council (NWRC) for adoption. Thereafter, the National Water Policy would be recommended to all States for implementation.

Annexure –I

SALIENT FEATURES OF REVISED DRAFT NATIONAL WATER POLICY (2012)

1. Emphasis on the need for a national water framework law. Comprehensive legislation for optimum development of inter-State rivers and river valleys, amendment of irrigation Acts. Indian Easements Act, 1882, etc.
2. Water, after meeting the pre-emptive needs for safe drinking water and sanitation, achieving food security. Supporting poor people dependent on agriculture for their livelihood and high priority allocation for minimum eco-system needs, be treated as economic good so as to promote its conservation and efficient use.
3. Ecological needs of the river should be determined recognizing that river flows are characterized by low or no flows, small floods(freshets), large floods and flow variability and should accommodate development needs. A portion of river flows should be kept aside to meet ecological needs ensuring that the proportional low and high flow releases correspond in time closely to the natural flow regime.
4. Adaptation strategies in view of climate change for designing and management of water resources structures and review of acceptability criteria has been emphasized.
5. A system to evolve benchmarks for water uses for different purposes, i.e., water footprints, and water auditing be developed to ensure efficient use of water. Project financing has been suggested as a tool to incentivize efficient & economic use of water.

6. Setting up of water Regulatory Authority has been recommended. Incentivization of recycle and reuse has been recommended.
7. Water Users Associations should be given statutory powers to collect and retain a portion of water charges, manage the volumetric quantum of water allotted to them and maintain the distribution system in their jurisdiction.
8. Removal of large disparity in stipulations for water supply in urban areas and in rural areas has been recommended.
9. Water resources projects and services should be managed with community participation. Wherever the State Governments or local governing bodies so decide, the private sector can be encouraged to become a service provider in public private partnership model to meet agreed terms of service delivery, including penalties for failure.
10. Adequate grants to the States to update technology, design practices, planning and management practices, preparation of annual water balances and accounts for the site and basin, preparation of hydrologic balances for water systems and benchmarking and performance evaluation.

Water Law Framework

Existing water law is made up of a number of different instruments. This is the case at the international level where only certain aspects of water law have been developed and where no international water law treaty exists. This is also the case within India where it remains difficult to identify a coherent body of comprehensive law concerning water. This is related to the fact that distinct concerns have been addressed in different enactments.

- (i) International Framework – International water law includes a number of instruments. They may not all apply directly in India but contribute in various ways to the development of water law at the International as well as national levels. The UN 1997 Convention Provides a framework for cooperation among states on international water course concerning the use of their water apart from navigational aspects. The adoption of the convention was in itself a landmark development since it took UN member states many years to agree on this text. Besides the UN 1997 Convention, there exist a number of International treaties that are directly or indirectly concerned with water. The UNECE Convention on impact assessment applies, for instance in the case of dams and other water related infrastructure projects. The Convention on wetlands of International importance(Ramsar Convention) is intrinsically concerned with water. Besides treaties focusing on water

or having a water dimension, there are a multitude of non-binding instruments concerning water. There include instruments not directly concern with water like the Declaration on the Rights of Indigenous Peoples that specifically recognizes. The prior informed consent of indigenous people is necessary for any project affecting their water resources.

(ii) Legal Framework in India – National water law is more developed than international water law. Nevertheless, India lacks an umbrella framework to regulate freshwater in all its dimensions. The existing water law framework in India is characterized by the co-existence of a number different principles, rules and acts adopted over many decades.

(A) Legislative framework :- The existing legal institutional and decision making framework for water law in India, both at the National and state level is embodied in the nine major Acts at the National and state level. The National legislations is applicable to water are –

- Water Prevention and Control of Pollution Act 1974 : The main objectives of the Water Act are to provide for prevention, control and abatement of water pollution and the maintenance or restoration of the wholesomeness of water. It is designed to assess pollution levels and punish polluters. The Central Government and state govt. have set up PCB to monitor water pollution. The Water Act, 1974, with certain amendments in 1978, is an extensive legislation with more than sixty sections for the prevention and control of water pollution.
- Air Prevention and Control of Pollution Act 1981 : The govt. has passed this Act in 1981 to clean up our air by controlling pollution. It states that sources of air pollution such as industry, vehicles, powerplants, etc; are not permitted to release particulate matter, lead, carbon monoxide; sulfur dioxide, nitrogen oxide, volatile organic compounds or other toxic substances beyond a prescribed level. To ensure this PCB have been set up by govt. to measure pollution levels in the atmosphere and at certain source by testing the air. This act is created to take appropriate steps for the preservation of the natural resources of the Earth which among other things includes the preservation of high quality air and ensures controlling the level of air pollution.
- Environment Protection Act 1986 : The EPA 1986 came into force soon after the Bhopal Gas Tragedy and is considered an umbrella legislation as it fills

many gaps in the existing laws. The Purpose of the Act is to implement the decisions of the UN Conference on the Human Environments they relate to the protection and improvement of the human environment and the prevention of hazards to human beings, other living creatures, plants and property. The objective of EPA is to provide the protection and improvement of environment. In EPA, article 48A, specify that the state shall protect and improve the environment. EPA is applicable to whole India, including J&K.

- The Forest Conservation Act 1980 : - This act has enacted in Parliament, to check further deforestation and conserve forest and to provide for matters connected therewith or ancillary or incidental thereto. This Act has five sections which deal with conservation of forests. The act was enacted with the twin objectives under section 2 of restricting the use of forest land for non-forest purposes, and preventing the direservation of forest that have been reserved under the Indian Forest Act 1927. However, in 1988 the Act evas further amended to include two new provisions under section 2 where it sought to restrict leasing of forest land to private authority.
 - The Public Liability Insurance Act 1991 : - This act was enacted in Parliament to provide for immediate relief to the persons affected by accidents accuring while handling any hazardous substance. this act is related to immediate relief and not compensation. The victims have a right to clean compensation under any other law in face. The act relates to the handling of hazardous substance.
 - Environment Impact Assessment of Development Projects 1994 :- As with most countries , India now seeks a form of sustainable development which will allow it to develop whilst maintaining an acceptable quality of environment and a stock of natural resources on which its future growth depends. Thus the Government of India published the Handbook of Environmental Procedure and Guideline, in 1994 to preserve the environment and ensure the efficient use of available resources. The use of EIA to ensure that environmental considerations are built into the process of developmental project appraisal and clearance has been increasing in India.
- (B) Constitutional Provisions :- The Constitution defines the allocation of functions relating to water resource development between the centre and state governments. Water is designated as a state subject to the central intervention

to regulate the development of interstate rivers and for settlement of interstate disputes on water. The River Boards Act and the Interstate Water Disputes Act are made under these provisions. The central government can also intervene in the interest of protecting environment and forest, and under provisions regarding national planning for development. Under the Constitution of India which came into force in 1950 water is primarily a state subject. Entry 17 list II i.e. State List 7th Schedule of the Constitution States “water that is to say water supplies. Irrigation and canal. Drainage and embankments. Water storage and water power subject to the provisions of entry 56 to the List I”. States are thus free to enact the water law and frame policies in accordance with this provision. Entry 56 of List I (Union List) refers to above states “regulation and development of interstate rivers and river valleys to the extent to which such regulation and development under the control of the union. Is declared by parliament by law to be expedient in the public interest.”

4.3.1 Under Article 262 of the Constitution, Parliament may by law

(1) Provide for the adjudication on any dispute or complaint with respect to the use, distribution or control of the waters of, or in any interstate river or river valley.”

And

(2) Neither the Supreme Court or any other Court shall exercise jurisdiction in respect of any dispute or complaint referred to in (1)

ACCOUNTABLE INSTITUTIONS

At present, the roles of various institutions in the matter of the evolution of water policies by the Union government are as follows :

The National Water Resources Council :- The council performs the function of approving water-related policies through the evolution of a consensus.

The National Water Board :- The Board assists the National Water Resources Council.

The Ministry of water Resources :- It has the crucial role of drafting the agenda of the national Water Resources Council. The other important function is of giving effect to the decisions.

The Central Water Commission:- The Commission acts as the secretariat to the National Water Board. Prepares the basic documents and drafts about water policies. Advising and assisting the ministry.

The Central Ground Water Board:- Its main function is to assess groundwater through geo-hydrological surveys and studies. And through the drilling of exploratory tube wells to facilitate such studies. Banks variously use the groundwater assessment information created by the Central Ground Water Board in deciding the credibility of proposals for obtaining loans in regard to the construction of wells and tube wells.

The National Committees:- These committees participated in the deliberations on various specialized subjects such as hydrology. Irrigation and drainage. Hydraulic research, etc. for deciding research areas as also in evolving a consensus at the professional level. About the problems and possible solutions.

The Specialized National Institutes:- Within the ministry of water resources these institutes carry out research on problem areas including issues like the role of forests in hydrology. The quantum of return flows from irrigation, etc. which have a bearing on policies.

Various River Basin Institutes:- The Ministry such as the Brahmaputra Board, the Betwa Board, the Upper Yamuna River Board, the Narmada Control Authority, etc. over sees the implementation of the various agreements, tribunal awards, etc.

Various Water Dispute Tribunals

To adjudicate on the water disputes in accordance with the terms of reference fixed by the government to formulate the awards. The case law so evolved and the spirit of the award itself has important implications on future evolution of water policies.

Non-Governmental Organizations

The NGOs act as watchdogs to pressurize the state governments and the Central Government in regard to various executive decisions and policy evolution. Although, at times, the involvement of the NGOs seems to delay or negate the process of water development, their involvement sometimes leads to better actions. Better policies in regard to rehabilitation and resettlement of reservoir affected persons; better standards for drinking water quality, improved decisions about design of structures (for example, the Ottu weir on the Ghaggar River), etc. are some achievements of actions by the NGOs.

The Judiciary

The decisions of the water dispute tribunal cannot be revised through appeals to the courts. However, before a tribunal is set up. The aggrieved states can and do approach the judiciary for a remedy. For example, the states of Andhra Pradesh and Maharashtra approached the Supreme Court for restraining the state of Karnataka in regard to the construction of the Alamatti reservoir. NGOs or individuals can also approach the courts for giving suitable directions to the government. For example, individuals approached the Supreme Court for intervention regarding water quantity and

water quality problems of the Yamuna river in Delhi. Similarly, NGOs approached the Supreme Court for directions to discontinue the raising of the Narmada dam. The case law evolved through the process affects water policies. Interventions as highlighted by the studies were documented.

Inadequacy in the existing legal framework

Constitutionally water is a state subject. In the absence of uniform law and policy, water management in India remains by and large uncoordinated. Various states have varied legal positions on water ownership. It is felt that water being a common natural heritage has to be governed by different set of laws which are essentially not jus civile. Water is a natural heritage to be protected and not a commercial property for absolute private use and exploitation it has to be governed by different set of laws which meet the requirement of the contemporary society. The Supreme Court of India in various judgments on water related issues has laid emphasis on the principle of jusgentium or doctrine of Public Trust can be appropriately utilized for attaining good ecological status for water resources. India is a federation of states. Therefore to lay down uniform law and policy it is essential to identify and incorporate those tenets, which are common and applicable to all the states. There are serious questions in relation to the state's authority in regulating the use of water and the manner in which this authority is to be exercised. Government, both central and state, claim the right of eminent domain over water and absolute right. Another lacuna is the lack of clearly defined criteria for determining the entitlements of different claimants to the common pool resources in a river basin. Thus, central legislation does not specify the basis for deciding the entitlement of riparian states.

Water Sector Reforms in India

In the last few years there have been many innovative policy interventions and programs in the water sector. Some of the important ones are mentioned as follows :

- In the Irrigation Sector – The accelerated irrigation benefit programme (AIBP) was taken up for early completion of ongoing projects. Which were in an advanced stage of completion, by pumping in additional funds. Over the years, this programme has been modified and in the process, the main objectives have become diluted. Delays have also been experienced in the process of transferring the funds from the finance department of the state to the project, depending on the 'ways and means' position of the state. This innovative programme has therefore been only a partial success. The programme perhaps needs to be revamped by specifying stricter criteria for the selection of the projects and by making it easier to operate in regard to direct availability of the funds to the project there is enough scope for using banking institutions for regulating the flow of funds.

- In the Hydropower Sector – The new policy for hydropower has been an important policy intervention. Again, this has been partial success, and only a couple of hydropower projects in the private sector have materialized as a result of the policy. Most hydropower developments continue to be in the public sector, and the public sector corporations are implementing such projects on the basis of loans from Indian or international financing institutions. At present, most hydropower projects under implementation are of the ‘run-of-the-river’ type. For effectively meeting the peak demands, in the largely thermal-based grid, storage projects are essential. It appears that at present the policy does not adequately address the problems of political risks. Delays in land acquisition and in the resettlement of people, and delays caused by consequent litigations in an adequate way. A further revision of the hydropower policy appears necessary.
- In Regard to Domestic Water Supply – An important policy intervention consisted specifying that in each irrigation project, a provision for water supply to the adjoining areas, to utilize about 10% of the additional supplies, be made. This seems to have worked well and this provision is being generally adhered to. A post-evaluation, however, may be useful.
- In Regard to Conjunctive Use of Surface and Groundwater – The Policy intervention requires that all irrigation projects provide for such a use. for facilitating this process, detailed guidelines on conjunctive use have been finalized (INCID and CWC)(INCID:1994). The feasibility reports of all major and medium projects are supposed to provide for detailed conjunctive use plans, in the experience of the author, these plans are never adequately detailed, and often the costs and benefits of the conjunctive use are not included in the project. The institutional modalities for implementing the plan and the necessary changes in the state policies also are left uncertain. This intervention can therefore be considered only a partial success.
- In Regard to Urban Water Supply and Sanitation – Reforms have been undertaken for encouraging decentralization by shifting responsibilities to the municipal governments, changing the role of the government from service providers to regulator, commercialization of existing units, financial reforms for providing market access to service providers etc. the beginning has already been made in respect of private sector participation in urban water supply utilities. For example, in Chennai, Bangalore, Delhi, etc. However, the interfacing of the private sector participation proposals with the protection of water rights of the upstream and downstream users requires careful consideration. The experience regarding the use of the waters of the Sheonath river through private participation indicates that if these details are not considered, serious criticism about the sellout of natural waters can result.

- In Regard to Rural Water Supply and Sanitation – Sectoral reforms have started for empowerment of the community in decision making. This would include decisions about the planning and implementation of schemes and eventually, about the control and management. Partial capital cost sharing and full sharing of the O&M requirements is also provided.
- In Regard to Rural Water Supply for Problem Communities – The Rajiv Gandhi National Drinking Water Mission (RGNDWM) is an important programme intervention. This has been fairly successful. Although supply to communities in areas with endemic groundwater quality problems has not been successful. Sub missions have been constituted to deal with preventive and remedial measures to address problems like arsenic, brackishness, and iron.

Conclusion –

Water is one of the most essential natural resources for sustaining life and it is likely to become critically scarce in the coming decades, due to continuous increase in its demand, rapid increase in population and expanding economy of the country. Water law is made of a number of formal and informal laws, rules and principles. It has evolved over time in a relatively uncoordinated and adhoc manner. This started to change with progressive realisation that existing laws were inappropriate to ensure access to water to all human needs. While water law reforms are more than welcome given existing problems with water, it is unlikely that law reforms based on the reforms principles put forward in the water sector reforms constitute an appropriate response. Ongoing water law reforms may contribute to enhancing water management. Hence there is a need to for future work in water law to devise an alternative sociolegal discourse and practice where the concerned authorities use organic knowledge of water resource management as seriously as the scientific knowledge, and work a consideration of people of people's struggle for water resource management as pursuit of human rights.

References :-

- (1) National Water Policy, Ministry of Water Resources, New Delhi, 2012.
- (2) Lal M., Climate change – Implications for India's Water resources. J. India Water Res. Soc. 2001, 21, 101-119.
- (3) Phillippe Cullet & Sujith Koonan. 'Water Law in India : An Introduction to Legal Instruments' Oxford University press, 2011.
- (4) Gardner, A, Bartlett, R & Gray, J, 'Water Resources Law', Lexis Nexis Butterworths 2010.
- (5) Iyer Ramaswamy R, 'Water & The Laws in India', Sage Publications Pvt. Ltd, 2009.
- (6) Justice T.S. Doabia 'Environmental and Pollution Law in India', Lexis Nexis India; 2nd Edition 2010.

HEALTH AWARENESS ROLE OF NEWSPAPER AMONG ELDERLY POPULATION OF DURG CITY

Rajshree Chandrakar

Assistant Professor

Department of Home Science

Bhilai Mahila Mahavidyalaya

Dr. A. R. Joglekar

Professor of Home Science

Govt. D.B.P.G. Girls College

Raipur

Abstract:

Demographic population of elderly in India is rapidly increasing. It will impose a great burden for the country. Elderly people face various health and communication problems. It is challenge to prevent them from these problems and keep them healthy. Present study has been conducted to examine the awareness role of newspaper regarding health aspects. A total of 100 samples (50 male and 50 female) were selected between 60 to 70 years from four zone of Durg City. A self designed questionnaire was distributed to collect the data. The Results showed that 87% elderly were reading newspaper daily or weekly. The preference of awareness role of newspaper in various health issues was yoga and exercise (32%), Diet (26%), disease (25%), patanjali product advertisement (25%), prevention of Diseases (23%) and Hygiene (21%). Study found that a very less difference in awareness exist between male and female elderly about health. Study recommended education and counseling need for better health perspective.

Keywords: Newspaper, Elderly, Awareness, education

Introduction:

Aging is a universal phenomenon. It is a physiological, psychological as well as social journey. The United Nation refers people with 60 years and above as elderly population.¹ Government of India has approved minimum age of 60years for elderly person. The demographic transition has changed rapidly from 1991 to 2011, the percentage of elderly population has increased from 6 to 8% and it is estimated to be 19.1% in 2050.²

During aging elderly people were facing various physiological problems such as diabetes, blood pressure, arthritis, hypertension, asthma, joint pain, constipation etc. The degenerative changes affect hearing, loss of vision, cognitive decline and memory loss. Along with this elderly were also facing communication, awareness, and education problems regarding health.

Due to modernization, urbanization and nuclearization in our society nobody has time to spend to help and aware the elderly people. In order to make elderly population healthy, elderly people need to develop awareness regarding health through news paper.

Newspaper is important powerful print media for shaping opinion, attitude and belief₃ and has the ability to develop awareness. It gives information and enriches people's knowledge. It is a tangible, portable, less expensive, easy to read and a popular media which reaches door to door. It is a reliable and effective media covered with enormous variety of content regarding health and encourages for better health practices and also gives opportunity to gather in the public place thus connecting and sharing opinion. For solving the health problems faced by elderly, it is important to examine the awareness role of newspaper regarding health aspects

Methodology: The present study was conducted in the Durg City of Chhattisgarh to assess the awareness role of newspaper regarding various health aspects. A total 100 sample (50 male and 50 female) were randomly selected at the age group of (60-70) years from four zone of Durg City. A self designed questionnaire was administered to collect the data on different health issues.

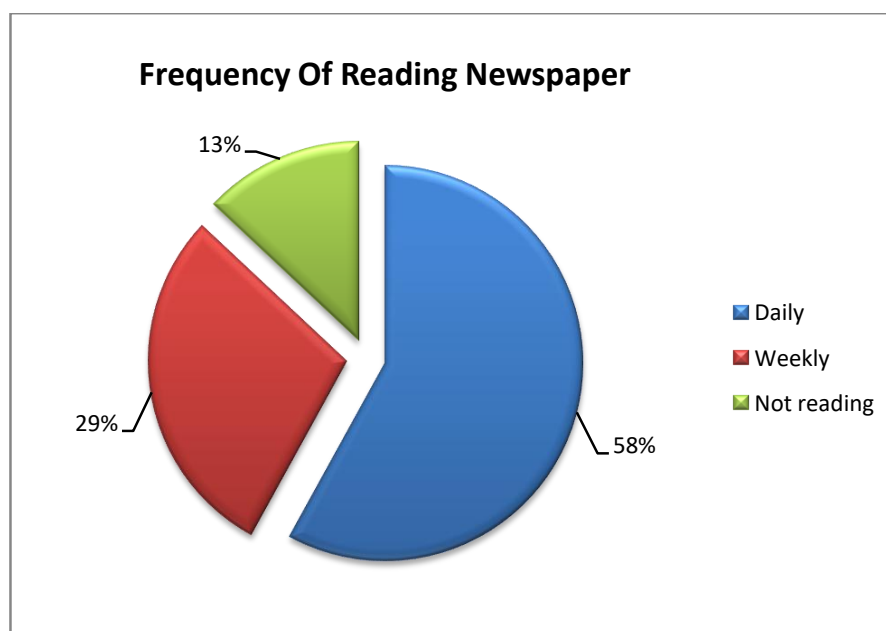
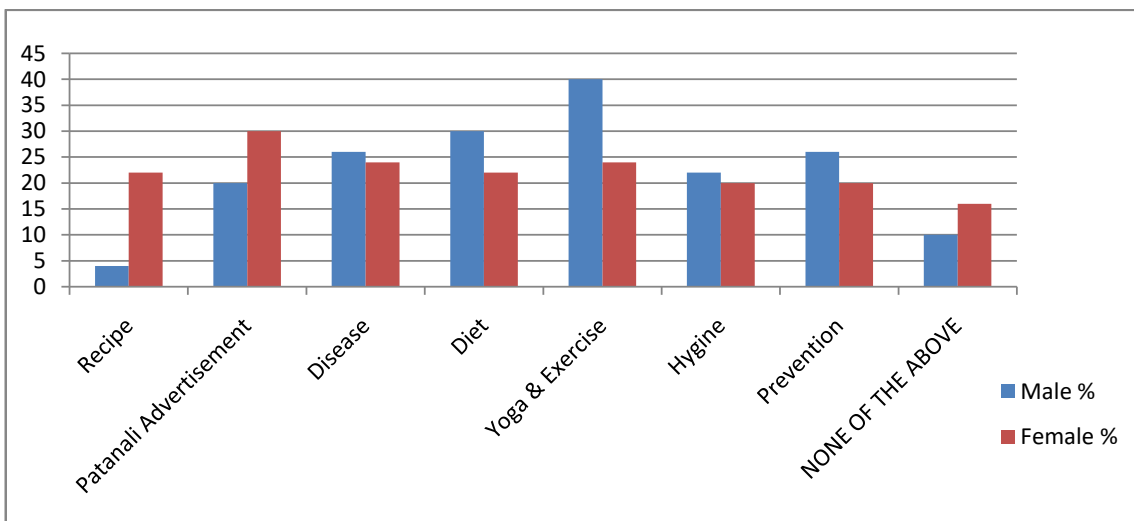
Result and Discussion:

Table 1: Distribution of Newspaper

Newspaper	Total (N=100)				
	MALE(N=50)	(%)	FEMALE(N=50)	(%)	TOTAL %
Navbharat	16	32	15	30	31
Dainik Bhaskar	12	24	11	22	23
Patrika	9	18	9	18	18
Nai Dunia	8	16	6	12	14
Hitwad	1	2	0	0	1
None	4	8	9	18	13

Table 2: Health aspects article preferred by elderly

Type	MALE(N=50)	(%)	FEMALE(N=50)	(%)	TOTAL %
Recipe	2	4	11	22	13
Patanjali product Advertisement	10	20	15	30	25
Disease	13	26	12	24	25
Diet	15	30	11	22	26
Yoga & Exercise	20	40	12	24	32
Hygiene	11	22	10	20	21
Prevention	13	26	10	20	23
None	5	10	8	16	13



1. It can be seen that out of 100 responses ,87% of elderly population were of Durg city reading news paper and most preferred newspaper was Navbharat (with 32% male and 30% female)

2. The Result showed that newspaper play a vital role to develop awareness in various health aspects i.e. yoga and exercise (32%), diet (26%), disease and Patanjali advertisement (25%) prevention and care (23%), Hygiene (21%) recipe (13%) Deidong, A.L. (2013) also reported newspaper play a critical role in awareness and education about medical care and prevention in Ghana.

3. Study observed that male elderly were slightly more aware about health aspect than female elderly.

4. Study found that most preferable health article on newspaper was yoga and exercise (32%), in which males prefer (40%) which was followed by 24% females.

5. Study shows that elderly were reading newspaper with recurrence interval of daily (58%) and weekly (29%) to find news associated with health or disability while 13% does not read newspaper because of eye problems or literacy.

Conclusion:

Newspaper is an effective and powerful print media. With rapid growth of elderly population, it helps to aware as well as to educate the elderly by shaping their attitude and belief regarding various health aspects such as exercise, disease, product advertisement, prevention, and hygiene. It was observed that many news paper distributed in the Durg city publishes various Health article. 87% of elderly population read, realize and discuss their problem after reading the article and get aware about their solution, while 13% were not interested to read. Study recommended that education and counseling was needed among women for health prospective.

Reference

- 1 WHO//2009).who.int/healthinfo/survey/agingdefnolder/en/in
2. Census India (2011) provisional population totals www.censusindia.gov.in/2011_provisionalresult.
3. Moyer, A.(1995) Accuracy of health research report in the popular press breast cancer and memography, health communication, 7(2) : 147-161.
4. Deidong A.L. (2013) Covering Health issues Role of newspaper in Ghana International Journal of Humanities and Social Science volume 3(12).

STUDY OF SUITABILITY OF SCHOOL UNIFORM FOR ADOLESCENT GIRL STUDENTS OF DURG, BHILAI CITY

Mrs. Sarita Nitin Joshi

Bhilai Mahila Mahavidyalaya
Home Science Department, Bhilai

Dr. Shipra Banerjee

Home Science Department
D.B.Girls P.G. College, Raipur

Abstract

This study investigated suitability of school uniform of school going adolescent girls of Durg & Bhilai City. To collect data self made questionnaire was distributed among girl students. As 378 out of 445 have responded affirmative related to school uniform comfortable for the climate conditions thus observed of 85%. 18% students were having problem related fabric of uniform, 33% girls were not satisfied with pattern of uniform, 37% are not satisfied with design of uniform and 12% are dissatisfied with colour of uniform. The P value denoted by exact Fig. (1-tailed) is 0, which is lower than significant level, thus there is no sufficient evidence to accept the null hypothesis as the chance is small than 5%. 85% of the adolescent girls are comfortable with school uniform.

Introduction:

A school uniform is a uniform worn by students primarily for a school or otherwise educational institution. According to scholars such as Nathan Joseph, clothing can only be considered a uniform when-

1. it serves as a group emblem,
2. Certifies institutions legitimacy by revealing inidandals relative positions
3. Suppresses individuality.

An example of a uniform would be requiring white button-downs and ties for boys and pleated skirts for girls, with both wearing blazers in winter.

Schools uniforms are part of the dress code of a school of these are still the rule in many schools around the country as well as in many other nations across the globe. There are 5 materials which are commonly used in school dresses.

Nylon- this is a synthetic fiber which was produced for the first time as early as in 1935.

Dacron- It is a synthetic fiber which was created during the 40's by a chemical firm. It is associated to polyester very closely. This is made up from terephthalic acid and ethylene glycol.

Polyester-It is most commonly used for school uniform, because it has many appropriate qualities for school uniform.

Wool-It is frequently combined with other fabrics such as polyester for the manufacturing of school jackets or jumpers however; school sweaters in most parts of the world are made with the help of this fabric.

Cotton-Cotton is obviously the most commonly used fabric in the production of outfits for school going boys & girls. Woven cotton is highly breathable and can keep the body temperature of students cool. Often cotton is combined with some amount of polyester in order to prevent problems of creating of shrinking. Ideally 2% polyester is mixed with 98% cotton to minimize the issues of wrinkle development.

Importance of school uniform for adolescent girls.

Fabric of school uniform, pattern of school uniform is very important for adolescent girls. It should be suitable with whether of particular place because students have to stay long time in school. Therefore to know the comfort from school uniform at Durg Bhilai study has been taken. There are approximately 165 to 200 schools in Durg Bhilai. Some are run by Government some are private and some are public schools.

Climatic conditions of Durg Bhilai.

Climatic conditions of Durg Bhilai are extreme in May only. July to September are rainy season. Minimum temperature may be 25° and highest may be 34° . October also little hot. November to January are winter minimum 10° to 17° and maximum may be 32° , February March are moderate not colder not very hot. April is again minimum 23° and highest 44° . Schools are generally running in April at Durg Bhilai.

Colours in school uniform

School uniform needs to be affordable, comfortable and practical. Generally basic colours are popular in school uniform-Blue, Green, Orange, Red, White, Yellow etc. some mixtures of colours also popular like gray, pink, light blue, light green, light yellow etc. Colours should be suitable to climatic conditions.

Objectives :

1. To know the suitability of school uniform to adolescent girls from Durg & Bhilai city.
2. To know is there any need to change a pattern of school uniform.

Hypothesis :

Ho : There is no need to change a school uniform of Durg Bhilai city it is according of climatic conditions of city.

H₁ : There is a need to change a fabric or pattern of uniform it is not suitable, comfortable.

Sample : For the present study purposive random sampling has been chosen for which the sample is collected from school going adolescent girls of age group 15 to 18 of Bhilai and Durg city. Total 450 samples were taken for study purpose.

Tool used : Self designed questionnaire was distributed to 100 samples.

Result & Discussion

Your school uniform is comfortable for the climatic conditions of Bhilai-Durg

Binomial Test

	Category	N	Observed Prop.	Test Prop.	Exact Sig. (2-tailed)
Your school uniform is comfortable for the climatic conditions of Bhilai-Durg	Group 1	1.0	378	.85	.50 .000
	Group 2	2.0	67	.15	
	Total	445	1.00		

Reason for Uncomfortable	Frequency	Proportion
Fabric	15	18%
Pattern of Uniform	19	33%
Design Of Uniform	24	37%
Color of Uniform	7	12%

As 378 out of 445 have responded affirmative related to school uniform comfortable for the climatic condition thus observed proportion of 85%. The p value, denoted by **Exact Sig. (1-tailed)** is .000, which is lower than significant level, thus there is no sufficient evidence to accept the null hypothesis as the chance is smaller than 5% ($p < .05$). We conclude that the 85% of the adolescent girls are comfortable with school uniform for the climatic condition of Bhilai-Durg.

Out of total, the 15% who feels that their uniform is not comfortable have the reason of fabric (18%), pattern of uniform (33%), Design (37%) and 12% feel color as uncomfortable.

Conclusion

A school uniform is a uniform worn by students primarily for a school or educational institution. School uniforms of adolescent girls play an important role. Its comfort, colour, fabric quality are very important factors. Generally Nylon, Dacron, Polyester, Cotton and Wool fabrics are used to prepare school uniforms. Primary and secondary colours are common in school uniform.

To study comfort and suitability of school uniform of adolescent girls of Bhilai, Durg City of Chhattisgarh survey has been taken. After analysis 84% schools going adolescent girls are comfortable with their school uniform. According to them their school uniform is suitable to climatic conditions of Durg Bhilai City. Only 12% are dissatisfied with colour and pattern of school uniform.

Reference:

1. Mashable.com>2013.08/247school-uniform.
2. [https://en.m.wikipedia.org>wiki>schooluniform](https://en.m.wikipedia.org/wiki/schooluniform).
3. www.alibaba.com
4. [https://www.linkedin.com>pulse>5materials](https://www.linkedin.com/pulse/5materials)
5. www.independent.co.uk/extras
6. Cowan Marry L-Introduction to Textiles

“Impact of Brand on Consumer Buying Decision”

Dr. KalpanaVerma

Lecturer (Commerce)

Govt. Girls College, Ajmer (Rajasthan)

Introduction

In this research I have Survey the impact of brand on consumer buying behavior of two famous brand of chocolates – Cadbury and Nestle. During this research I have Interacted with people of AJMER. Afterthis research I came to Know how people perceives these products on the variables like price, quality, advertisement, Satisfaction, taste, packaging, BRAND, Loyalty etc. In this research I have Surveyed that how frequently and how much chocolates they consume, whether they buy small or big family pack. Trend of ongoing changes in there likings has been shown in the report. In this report I have tried to explain the entire research and facts productwise.

Preference (Consumer)

All marketing starts with the consumer. As consumer, we play a very vital role in the health of the economy local, national or international. The decision we make concerning our consumption behavior affect the demand for the basic raw materials, for the transportation, for the banking, for the production, they effect the employment of workers and development of resources and success of some industries and failures of others.

Preference(or ‘taste’) is a concept, used n the social sciences particularly economics it assumes a real or imagined ‘choice’ between alternative and the possibility of rank ordering of these alternatives based on happiness, satisfaction, gratification, enjoyment, utility they provide. More generally it can be seen as sources of motivation.

Objective

- To know about the customer satisfaction level associated with the product and the customer preference level.
- To know impact of brand on consumer buying decision.
- To increase customer satisfaction and recapture the market share by fulfilling the customer needs.
- To study the factors affecting the consumption pattern.

An Overview of Chocolate (Industry) in India:

In the present World, Chocolate is the only word that transcends the barrier of age and intriguing alike from kids to theregrand parents. It is one which is consumed and liked by almost everyone. The consumption level of chocolate is surged during festival season like Rakshabandhan, Diwali etc. chocolate market in India is estimated are around 1500 crores

growing at 18 – 20 % per annum. There are a small number of large firms in the chocolate industry - Cadbury, Nestle and Amul being the most well known. The chocolate industry in India as it stands today is dominated by two Companies, Both multinational.

1. CADBURY (The market leader)
2. NESTLE.

Research Methodology

Research Methodology is a systematic way to solve the research problems; it refers to search for knowledge, a scientific and systematic search for information. This research is base on information collected from primary sources. After the detailed study, an attempt has been made to present comprehensive analysis of consumption of Cadbury and Nestle Chocolates consumed by the people, and the impact of brand on the consumer buying decision. I went to the residents of Ajmer and collected the Data.

Hypothesis developed:

Null hypothesis (the brand does not matter in buyin decision.)

Survey design:

The study is a cross sectional study because the data were collected at a point of time. For the purpose of present study a related sample of population was selected on the basis of convenience.

Sample size and Design:

A sample of 50 people was taken on the basis of convenience. The actual consumers were contacted on the basis of random sampling.

Sample frame:

All the customer who buy Cadbury Chocolates and Nestle Chocolates.

Research Instrument:

This work is carried out through self-administrated questionnaires. The questions offered as multiple choices.

Data collection:

The data, which is collected for the purpose of study, is divided into two basis:

- ❖ Primary Source: The primary data comprises information survey of “Comparative study of consumer behavior towards Cadbury Chocolates and Nestle Chocolates”. The data has been collected directly from respondents with the help of structured questionnaires.
- ❖ Secondary Source: the secondary data was collected from internet, References from library. Extensive use of secondary information in the form of magazines/Journals/newspapers clippings etc.

The Design of questionnaire was as follows:

- a) Types of questions: Multiple choice questions were used.
- b) Order of the questions: General questions were included first followed by specific question.
- c) Number of question: The questionnaire consisted of 10 questions.
- d) Mode of data collection: Data collection mode is personal visit and filling up the Questionnaire.
- e) Target population: The selected population consisted of diversified age group from Ajmer.
- f) Data analysis: The data is analyzed on the basis of suitable table by using mathematical techniques.

Data Analysis

Q. 1 Do you eat Chocolates?

Liking for the chocolate	Yes	No
Number of respondents	50	10

Q. 2 Which Brand of Chocolate do you prefer?

Brands	Number of respondents
Cadbury	37
Nestle	13

Q. 3 Which promotional offers attract you most?

Promotional offers	Number of respondents
Free Gifts	25
Price offer	20
Any other	05

Q. 4 Which of these factors affect your purchase?

Factors	Number of respondents
Advertisement	20
Suggestion from friends and relatives	08
Attractive Display	10
Doctors Advice	00
Brand Ambassadors	05
Ingredients	07

Q. 5 Which media of Advertisement influence your purchase?

Media of Advertisement	Number of respondents
Television	35
News Paper	05
Brochures	01
Hoardings	02
Display	07

Q. 6 Do you prefer gifting chocolates?

Gifting the chocolates	Yes	No
Number of Respondents	38	12

Q. 7 Does packaging attract you to buy chocolate?

Particulars	Number of respondents
Agree	30
Can't Say	12
Disagree	08

Q. 8 Does you purchase of chocolates depends on brand?

Particulars	Number of respondents
Agree	15
Can't Say	10
Disagree	25

Q.9 If your preferred brand is not available for repeat purchases then what will you do?

Brand Loyalty actions	Number of respondents
Postpone your purchase	10
Switch over to another brand	12
Go to other shop for search of preferred brand	28

Q.10 If another brand of the same product appears in the market will you prefer to stop buying this brand and switch to new one?

Brand Loyalty actions	Number of respondents
No, Not at all	19
No, Shall not	08
Can't say	08
May Consider	15

Conclusion

Confectionary companies are constantly finding new way to gain attention of the consumers on their products, trying to improve the quality availability of the product, making the product more appealing. Hence the general idea that brand name or flavor does not matter is not appear able and needs to be revised as the prevailing trends show an upsurge in the demand for the wide range varieties with specifications.

A survey of the people has been conducted to know the liking patterns of the two products Cadbury and Nestle. It is observed that overall people like to eat Cadbury brand rather than Nestle due to its flavor/taste, quality and image and due to its hard form. Some people often like to have a chocolate with good flavor, quality and crunchiness so they are going towards Nestle chocolates due to its taste and crunchiness.

It is thus concluded from the facts collected that mostly people refer to buy small pack of their favorite chocolate, and sometimes some of them go for big and family pack.

Bibliography

Websites:

- ✓ <http://www.caburyindia.com>
- ✓ <http://www.nestle.com>
- ✓ <http://www.google.com>
- ✓ <http://www.packaging-technology.com/cadbury4.html>
- ✓ <http://www.chocolatereview.co.uk>
- ✓ http://www.business_standerd.com
- ✓ <http://en Wikipedia.org/wiki/preference>

Books:

1. Marketing management –Philip Kotler
2. Research Methodology –C. R. Kothari

WOMEN ENTREPRENEURS IN INDIA: CHALLENGES AND ISSUES

Dr. REKHA CHOUHAN

Lecturer

Jai Narain Vyas University, Jodhpur (Rajasthan)

ABSTRACT:

A “Women entrepreneur” is any women who organises and manages any enterprise, esp. a business, usually with considerable initiative and risk. According to a **New National Federation of independent Business (NFIB)** study Published in a recent Forbes article, over half of all new small business jobs created in the next five years will come from business started by women. Women entrepreneurs are key players in any developing country Particularly in terms of their contribution to economic development. Women entrepreneurs can not only contribute to the GDP, but can also play a key role in addressing societal challenges. However, the number of women entrepreneurs in india remains relatively low.

The Planning commission as well as the indian government recognises the need for women to be part of the mainstream of economic progress. The impact of globalization and its subsequent riches are being indulged in as competitively as the menfolk in the country. And woman entrepreneurs in India are being recognized and appreciated not just nationally but globally in the international sphere. The primary objective of this paper is to find out the status of women entrepreneurs and challenges faced by them in India.

KEYWORDS: Entrepreneurs, planning commission, globalization, challenges.

INTRODUCTION:

Entrepreneurship is the process of identifying opportunities in the market place, arranging resources required to exploit the opportunities for long-term gains. Entrepreneurs shape the economy by creating new wealth and new jobs and by inventing new products and services. Women entrepreneurship is gaining importance in India in the wake of economic liberalization and globalization.

An entrepreneur is someone who is risk take and is ready to face challenges. Women Entrepreneur means as a woman or group of women who initiate, organize and run a business enterprise.

Govt of India (GOI) has defined “women entrepreneurs as owning and controlling an enterprise with a woman having a minimum financial interest of 51% of the capital and giving atleast 51% of the employment generated in the enterprise to women.”

According to Mishra (2000) women entrepreneurship in India is increasing at a significant rate. Today, women constituted of 10% of the total entrepreneurs and are also making significant efforts to achieve economic growth in the country.

OBJECTIVES OF THE STUDY:

1. To study the socio-economic status of the women entrepreneurs.
2. To find out the factors which encourage women to become entrepreneurs.
3. To analyse the major challenges faced by women entrepreneurs to promote the entrepreneurship.
4. To analyse and study the support given by the government to women entrepreneurs.
5. To examine the obstacles face by women entrepreneurs.
6. To draw conclusions and offer suggestions.

RESEARCH METHODOLOGY:

The conceptual paper give emphasis on the issues problems and challenges faced by women entrepreneurs especially in India and the remedies to overcome them in the-light of Indian government scheme for women entrepreneurs. The paper is based on secondary data. The material is collected from various sources i.e. journals, books, articles, magazines, periodicals conference paper, websites etc.

WOMEN ENTREPRENEURSHIP IN INDIA:-

Women entrepreneurs may be define as the women or a group of women who commence and operate a business venture. Like a male entrepreneurs a women entrepreneurs women entrepreneurs play the vital role particularly in terms of their contribution to the economic development. By establishing their new venture women entrepreneurs generate new jobs for themselves and others and also provide society with different solutions to management, organization and business problems.

The days have gone when women always passed her whole life within the boundaries of house, now women are found indulged in every line of business.

Women enter entrepreneurship due to economic factors which pushed them to be on their own urge them to do something independently. Women prefer to work from their own work residence, difficulty in getting suitable jobs and desire for social recognition motivate them towards self-employment. We see a lot of women professionals in engineering, medical law etc. They are also setting up hospitals, training centres etc.

As per the Human development report, India ranks 96th on the gender related development Index of 137 nations.

The gender empowerment measures, which estimates the extent of women participation in the country's economic and political activities, as 110th of the 166 nations.

In the emerging complex social scenario, women have a pivotal role to Play. **According to the International Labour organisation's Global Employment Trends 2013:** report. India is placed at 120th of 131 countries in women's labour force participation.

Women are generally perceived as home makers with little to do with economy or commerce. But this picture is changing. In modern India, more and more women are taking up entrepreneurial activity especially in medium and small scale enterprises. Even as women are receiving education, they face the prospect of unemployment. In this background, self-employment is regarded as a cure to generate income.

The planning commission as well as the indian government recognizes the need for women to be part of the mainstream of economic development. Women entrepreneurship is seen as an effective strategy to solve the problems of rural and urban poverty.

Women entrepreneurs in India are handicapped in the matter of organizing and running business on account of their generally low levels of skills and for want of support system. The transition from homemaker to sophisticated business woman is not that easy.

But the trend is changing. Women across India are showing an interest to be economically independent. Women are coming forth to the business arena with ideas to start small and medium enterprises.

They are willing to be inspired by role models-the experience other women in the business arena.

The role of women entrepreneurs is especially relevant in the situation of large scale unemployment that the country faces. The modern large scale industry cannot absorb much of labour as it is capital intensive. The small scale industry plays an important role absorbing around 80% of the employment.

The myth that women cannot engage in productive employment needs to be dispelled. They can be encouraged to set up small and medium scale industries on their own initiative. Entrepreneurship development for women is an important factor in economic development of India.

CHALLENGES AND OBSTACLES FACED BY WOMEN ENTREPRENEURS IN INDIA:-

Women entrepreneur is a person who accepts challenging role to meet her personal needs and become economically independent. A strong desire to do something positive is an inbuilt quality of entrepreneurial women, who is capable of contributing values in both family and social life.

The challenges and opportunities provided to the women of digital era are growing rapidly that the job seekers are training into job creators. They are flourishing as designers, interior decorators, exporters, publishers, garment manufacturers and still exploring new avenues of economic participation. Women entrepreneurs face a series of problems right from the beginning till the enterprise function. In the process to start their own work, women entrepreneurs face a number of challenges that can get in the way of their growth. They counter various issues of acceptance not only from the family and society but also in the corporate world where they go through prodigious hurdles, Their various problems are as follows:-

1. **LACK OF FINANCE:** - Finance is regarded as life blood for any enterprise be in big or small. Access to finance is one of the most common challenges that entrepreneurs face and this is especially true for women who are further impeded by lack of personal for their husband's countersignature on many documents. Obtaining the support of bankers, managing the working capital, lack of credit resources are the problems which still remain in the males domain. Women are yet to make significant mark in quantitative terms. The complicated procedure of bank loans also creates lot of problems in getting the required finance. Marketing and financial problems are such obstacles where even training doesn't significantly help the women.

2. **LACK OF SELF CONFIDENCE AND FAITH:** - Women entrepreneurs because of their inherent nature, lack of self-confidence which is essentially a motivating factor in running an enterprise successfully. In India women have lack of self-confidence in their strength and ability. The family members and the society are unwilling to stand beside their organizational growth.

3. **FAMILY CONFLICTS:** - Women entrepreneur also face the conflict of performing of home role as they are not available to spend enough time with their families. Women in India are very emotionally attached to their families. They are supposed to attend to all the domestic work, to look after the child and other members of the family. They are over burden with family responsibilities like extra attention to husband, children and in laws which take away a lots of their time and energy. In such situation, it will be very difficult to concentrate and run the enterprise successfully.

4. **MALE DOMINATED SOCIETY:** - The constitution of India speaks of equality between sexes. But in practice women are looked upon as abla i.e. weak in all respects. In male dominated Indian society, women are not treated equal to men. This turn serves as a barrier to women entry into business.

5. **LACK OF EDUCATION:** - In India around 60% of women are still illiterate. Illiteracy is the root cause of socio-economic problem. Due to the lack of education women entrepreneurs remain in dark about the new technology, new methods of production, and market knowledge.

6. **MARKET-ORIENTED RISKS:** - Women entrepreneurs also find it difficult to capture the market and make their products popular. The middlemen exploit the women entrepreneurs. A lack of sales and marketing skills was the most commonly reported problem faced by female entrepreneurs.

7. **THOUGH COMPETITION:** - Usually women entrepreneurs employ low technology in the process of production. In a market where the competition is too high, they have to fight hard to survive in the market against the organized sector and their male counterpart who have vast experience and capacity to adopt advanced technology in managing enterprises.

8. **LEGAL FORMALITIES:** - Fulfilling the legal formalities required for running an enterprise becomes an upheaval task on the part of a woman entrepreneur because of the prevalence of corrupt practices in government offices and procedural delays for various licenses, electricity water and shed allotments. In such situations women entrepreneurs find it hard to concentrate on the smooth working of the enterprise.

9. **TRAINING PROGRAMMES:** - Depending upon the needs, duration, skill and the purpose of entrepreneur there are various workshops and training programmes available for social and welfare association.

10. **LACK OF ENTREPRENEURIAL APTITUDE:** - Lack of entrepreneurial aptitude is a matter of concern for women entrepreneurs. They have no entrepreneurial bent of mind. Even after attending various training programmes on entrepreneurship, they fail to tide over the risks and troubles that may come up in an organizational working.

11. **LOW RISK-BEARING CAPACITY:** - Women in India are by nature weak, shy and Mild. They cannot bear the amount risk which is essential for running an enterprise.

Women in India lead a protected life. They are less educated and economically not self-dependent. All these reduce their ability to bear risk involved in running an enterprise. Risk-bearing is an essential requisite of a successful entrepreneur.

12. **SCARCITY OF RAW MATERIAL:** - Most of the women enterprises are plagued by the scarcity of raw material and necessary inputs. Added to this are the high prices of raw material, on the one hand, and getting raw material at the minimum of discount, on the other, The failure of many women co-operatives in 1971 engaged in basket-making is an example how the scarcity of raw material sounds the death-knell of enterprises run by women (Gupta and Srinivasan 2009).

SUCCESSFUL LEADING WOMEN ENTREPRENEURS IN INDIA:

Gone are the days when women were considered no match for all powerful men in this world. The male dominated world was always reluctant to even acknowledge the fact that women were as good as men on parameters of hard work, intelligence quotient (IQ) and leadership traits.

The new generation women across the world have overcome all negative notions and have proved themselves beyond doubt in all spheres of life including the most intricate and cumbersome world of entrepreneurship.

Yes, there is a section among women who believe in shorts-cuts but at the same time there is no dearth of women who are confident, believe in themselves and have enormous fire in their bellies to take on the best in the business and beat them at their own game.

India too has its own pool of such bold and fearless women who have made a mark for themselves both within the country as well as overseas.

Here are some talented female entrepreneurs of India:-

1. IndraNooyi, CFO-Pepsico
2. Nainalalkidwai, General Manager and country Head-HSBC, India
3. KiranMazumdar Shaw, CMD-BIOCON
4. ChandaKochar, MD & CEO-ICICI BANK
5. SalujjaFirodiaMotwani, Joint Managing Director (JMD), Kinetic Motors
6. Priya Paul, Chairperson, Apeejay Park Hotels
7. MallikaSrinivasan, Director-TAFE (Tractor and Farm Equipment)
8. Shrada Sharma, founder and chief Editor of Yourstory.
9. Sabina Chopra, Co-founder-Yatra. Com
10. EktaKapoor, Joint Managing Director (JMD) and creative Director- Balaji Telefilms
11. Ritu Kumar-Fashion Designer
12. ShahnazHussain, CEO, - Shahnaz Herbals Inc.
13. JyotiNaik- President ShriMahilaGrhaUdyog, LijjatPapad.
14. Ravina Raj Kohli- founder and executive Director, Jobcrop
15. RashmiSinha-Co-founder-Slideshare

WOMEN EMPOWERMENT AND PLANNING PROCESS IN INDIA:

The all round development of women has been one of the focal point of planning process in India.

1. The first five-year Plan (1951-56) envisaged a number of welfare measures for women. Establishment of the central social welfare Board, organization of MahilaMandals, and the community Development Programmes were a few steps in this direction.

2. In the Second five-year Plan (1956-61), the empowerment of women was closely linked with the overall approach of intensive agricultural development programmes.
3. The Third and Fourth-five Year Plan (1961-66 and 1969-74) supported female education as a major welfare measure.
4. The fifth five-Year Plan (1974-79), emphasized training of women, who were in need of income and protection. This Plan coincided with international womens Decade and the submission of report of the committee on the status of women in India. In 1976, women's welfare and Development Bureau was set up under the Ministry of Social Welfare.
5. The sixth five Year Plan (1980-85) saw a definite shift from welfare to development. It recognized women's lack of access to resources as a critical factor impeding their growth.
6. The Seventh Five-Year Plan (1985-90) emphasized the need for gender equality and empowerment. For the first time emphasis was placed upon qualitative aspects such as inculcation of confidence, generation of awareness with regards, to rights and training in skills for better employment.
7. The Eight Five-Year Plan (1992-97) focused on empowering women, especially at the grass root level, through Panchayati Raj Institutions.
8. The Ninth Five-Year Plan (1997-2002) adopted a strategy of women Component Plan, under which not less than 30 percent of funds/ benefit were earmarked for women-specific programmes.
9. The Tenth Five-Year Plan (2002-07) aims at empowering women through translating the recently adopted National Policy for Empowerment of women (2001) into action and ensuring survival protection and Development of women and children through rights based approach.
10. The Eleventh Five-Year Plan lays down six monitor able targets:
 1. Raise the sex ratio for age group 0-6 from 927 in 2001 to 935 by 2011-12 and to 950 by 2016-17
 2. Ensure that at least 33% of the direct and indirect beneficiaries of all government schemes are women and girl children.
 3. Reduce IMR from 57 to 28 and MMR from 3.01 to one per 1000 live births;
 4. Reduce malnutrition among children of age group 0-3 to half its present level;
 5. Reduce anaemia among women and girls by 50% by the end of the Eleventh Plan, and
 6. Reduce dropout rate for primary and secondary schooling by 10% for both girls as well as boys.

At present, the Government of India has over 27 schemes for women, some of these are:-

Indira MahilaYojana

Integrated Rural Development Programme (IRDP)

Khadi and Village Industries Commission (KVIC)

Women's Development Corporations (WDCs)

MahilaVikasNidhi

MahilaSamitiYojana

NGOs Credit schemes

NABARD-KFW-SEWA Bank Project

SIDBISMahilaUdyamNidhi

SIDBI's Shree Shakti Scheme

Prime Ministers RojgarYojana (PMRY)

Working Women's Forum

Training of Rural Youth for self-employment (TRYSEM)

Rajiv Gandhi MahilaVikasPariyojana (RGMVP)

Trade Related Entrepreneurship Assistance and Development (TREAD)

RashriyaMahilaKosh

Micro and small Enterprises Cluster Development Programmes (MSE-CDP)

Micro Credit scheme

National Banks for Agriculture and Rural Development's Schemes

Assistance to Rural Women in Non-Farm Development (ARWIND) Schemes

Entrepreneurial Development Programme (EDPs)

Management Development Programmes

Priyadarshini Project – A programme for Rural Women Empowerment and Livelihood in Mid Gangetic Plains

SUGGESTIONS FOR THE GROWTH OF WOMEN ENTREPRENEURS:-

Right efforts from all areas are required in the development women entrepreneurs and their greater participation in the entrepreneurial activities. The following measures are suggested to empower the women to seize various opportunities and face challenges in business.

1. Gender specific training is more essential to suit socio-economic demographic conditions.
2. Infrastructure set up plays a vital role for any enterprise. Govt can set some priorities for women entrepreneurs for allocation of Industrial plots, sheds and other amenities. However, precautionary measures should be undertaken to avoid the misuse of such facility by the men in the name of the women.

3. Creating awareness in families and local communities about the importance of women entrepreneurship is equally crucial. This will prepare them to support women's attempts to start business.
4. There should be a continuous attempt to inspire, encourage, motivate and co-operate women entrepreneurs.
5. Vocation training to be extended to women community that enables them to understand the production process and production management.
6. Women in business should be offered soft loans and subsidies for encouraging them into industrial activities. The financial institutions should provide more working capital assistance both for small scale venture and large scale ventures.
7. The educational and awareness programmes should be arranged to change the negative social attitudes towards women.
8. Training and development programmes play a very essential role for the development of entrepreneurship. Special training schemes should be so designed that women can get full advantages.
9. Marketing Products one of the main problems for women entrepreneurs. Here, women co-operative societies can be started to procure the products from women entrepreneurs. They will help them in selling their products at a reasonable price.
10. To establish all India forums to discuss the problems, grievances, issues, and filling complaints against constraints or shortcomings toward the economic progress path of women entrepreneurs and giving suitable decision.
11. The weaker section could raise funds through various schemes and incentives provided by the government to develop entrepreneurs in the state e.g. the Prime Minister's Rozgar Yojna, The Khadi and Rural village industries scheme. etc.

CONCLUSION:

The Study has helped us to understand the innumerable constraints which the women entrepreneurs of our research area have faced.

Even though we have many successful women entrepreneurs in our country, still the situation is disappointing one. At this juncture, effective steps are needed to provide entrepreneurial awareness, orientation and special skill development programmes to women.

Women entrepreneurship in India faces many challenges and requires a radical change in attitudes and mindsets of society. Therefore, programmes should be designed to address changes in attitude and mind set of the people.

India is a male dominated society and women are assumed to be economically as well as socially dependent on male members. Women entrepreneurs faced lot of problems like lack of education, social barriers, legal formalities, high cost of production, male dominated society, lack of self-confidence etc.

Since 1980, the government of India has shown increasing concern for women issues through a variety of legislations promoting the education and political participation of women. There should also be efforts from all sectors to encourage the economic participation of women. Along with adequate training, institutional and financial support as a composite package needs to be encouraged. It can be said that today we are in a better position wherein women participation in the field of entrepreneurship is increasing at considerable rate, efforts are being taken at the economy as well as global level to enhance woman's involvement in the enterprise sector. This is mainly because of attitude change, diverted conservative mindset of society to modern one daring and risk-taking abilities of women, support and cooperation by society members, changes and relaxations in government policies, granting various upliftment schemes to women entrepreneurs etc.

REFERENCES:

1. Ramesh Bhandari (2010), "Entrepreneurship and women Empowerment", Alfa Publications, bearing ISBN-978-93-80096-72-8
2. Ramchandran K. "Entrepreneurship Development- Indian cases on change Agents", Tata McGraw-Hill Publication Company Ltd.
3. Gordon E & Natarajan K (2007), "Entrepreneurship Development"- Himalaya Publication house, second revised edition
4. Singh Kamala (1992), "Women entrepreneurship", Ashish publishing house, New Delhi
- 5- Damwad, (2007), "Women Entrepreneurship-A Nordic Perspective", August 2007, Nordic Innovation Centre
6. Ravi D.I. (1996), "Women Entrepreneurs", New Delhi, APH Publishing House.
7. Bhatia Anju (2000), "women Development and NGOs", Rawat Publication, New Delhi.
8. Soundarapandian M. (2008), "Women entrepreneurship-Issues and strategies", published by Kanishka Publishers distributors, ISBN 978-81-7391-314-5
9. David H. Holt (2003), "Entrepreneurship New Venture", Creation Prentice Hall India.
10. Ram Naresh Thakur (2009), "Rural Women Empowerment in India", in Empowerment of Rural women in India Kanishka Publishers, New Delhi.
11. Kumari, S. (2012), "Challenges and Opportunities for women Entrepreneurship in India under Globalisation". IOSR Journal of Business and management (IOSR-JBM), ISSN 2278-487X. Volume 5, Issue 2, pp. 29-35. iosrjournals.org/iosrgbm/papers/vol5-issue2/EO522935.pdf
12. Sanjay Tiwari and Anshuja Tiwari (2007), "Women Entrepreneurship and economic Development". 1st Edition published by Sarup and Sons, New Delhi
13. Rao, M.K. (2005), "Empowerment of women in India", New Delhi: Discovery Publishing House.
14. Singh A.K., Suguna K. and Reddy RVM (2012), "women Entrepreneurship Emerging issues, challenges and strategies (2 vols.)"

15. Mishra S.P. (2000), "Factors affecting women Entrepreneurship in small and cottage Industries in India (online). Available from: [http://www.ilo.org/ Public/english/ asro/ bangkok/ paper/fac-indhtm# Introduction](http://www.ilo.org/Public/english/asro/bangkok/paper/fac-indhtm#Introduction) (Accessed on 10th feb 2010)
16. [http://times of india.indiatimes.com/city/women-entrepreneurs not banking-onloans/articleshow/ 567339.cms](http://times of india.indiatimes.com/city/women-entrepreneurs-not-banking-onloans/articleshow/567339.cms)
17. Vijaykumar, A. and Jaychitra. " Women entrepreneurship in India-Emerging issues and challenges", International Journal of science Technology and Management, Volume 3 April 2013.
18. Rad, B.S. "Women Empowerment & Planning Process" <http://www.contentwriter.in/articles/others/women-empowerment.htm>
19. Murugesan G. "Problems and prospects of women Entrepreneurship in India" Blue Oscean Research Journals, Volume 3 November 2014.
20. Ramya, N "Problems of women entrepreneur", Third concept, Indo Journal of commerce and Economics August 2006 p.39

WEBSITES:

www.smallindustryindia.com

www.dcmsme.gov.in/schemes

www.newsweek.com

<http://www.prj.co.in>

[http://www.preservearticles.com/201101153366/problems-faced by women-entrepreneur.html](http://www.preservearticles.com/201101153366/problems-faced-by-women-entrepreneur.html)

Fluoride Contamination in groundwater of Alwar, district Rajasthan

Manju Meena

Lecturer in Botany

R.R. College, Alwar

26manjumeena@gmail.com

Abstract :-

Groundwater is renewable resource, yet the world's supply of groundwater is steadily decreasing. Groundwater quality deterioration and supply of safe drinking water is a major concern throughout the country. Several studies have demonstrated that areas with fluoride contamination in groundwater is mostly characterized by the presence of fluoride containing crystalline basement rocks. Since the groundwater is the only source of drinking water in the Alwar district, proper strategies are required as the quality deterioration poses serious threat to human health.

Introduction :-

The crucial role of groundwater plays as a decentralized source of drinking water for millions rural and urban families cannot be overstated. According to some estimates, it accounts for nearly 80 percent of the rural domestic water needs, and 50 percent of the urban water needs in India. Groundwater is generally less susceptible to contamination and pollution when compared to surface water bodies. Also the natural impurities in rain water, which replenish ground water system, get removed while infiltration and industrial purpose, a variety of land and water based human activities are causing pollution of this precious resource.

Fluoride is the anionic form of most electronegative element form of fluorine. Fluorine is the most abundant element of halogen group having atomic number – 9 and molecular weight - 19, available in the earth's crust. As a result it is highly reactive and has strong affinity to combine with other elements to produce compounds known as fluorides. Fluoride contamination in drinking water is a public health problem in many areas of our country.

Source of Fluoride Exposure :-

The amount of fluoride occurring naturally in groundwater depends principally on climatic conditions, composition of **host** rocks and hydrogeology usually the surface water does not contain high fluoride whereas groundwater may be contaminated with high fluoride content because the usual source of fluoride is fluoride rich rocks. When water percolates through rocks it leaches out the fluoride from these rocks. Fluorspar/sedimentary rocks like lime stones, sandstones cryolite (Igneous rocks like granite) and fluoro - apalite are the main rocks which are in fluorides. Fluorides are released in the air as gaseous hydrogen fluoride (HF) and volatile fluorides like cryolites and silicon fluoride. These pollutants results from aluminium factories, brickkiln pottery industries, ferro - enamel works, stacks of factories processing - ore and oil. Fluoride contamination occurs

through a natural process in which fluoride bearing rocks crumble and breakdown but the process can be speeded up if the chemistry of the aquifer is disturbed.

Fluoride Contamination in Rajasthan and in Alwar :-

Rajasthan is the largest state, which covers 10% of the country area by receives only 1/100 of the total rains. In Rajasthan groundwater is deeper and contains high mineral concentrated chemicals which makes the water unfit to drink. Rajasthan is indebt heavily on ground water for drinking and for agriculture purpose. Unfortunately, the groundwater quality in a large number of districts is not according prescribed standards. Rajasthan is the only state where almost all the districts are affected by high fluoride. In 23 districts the fluorosis problem can be visualized at various intensity level such as Dental fluorosis, and skeletal fluorosis. Geologically these is a left underneath Aravali range, beginning from Pranch Mahal, Gujrat to Gurgaon and passing through southeast Rajasthan that is rich in fluorspar, cryolite and fluoroapatite. Alwar lies in the eastern plains of Rajasthan state, Fluoride contamination is a major health hazard in many part of the Alwar district. A few symptoms of fluorosis types could be seen by naked eye and need not so many investigations. The Ramgarh tehsil have high fluoride concentration in water. Concentration of fluoride in ground water has been found vary from 0.672 mg/l at Tapukara, Tijara block to 3.42 mg/l at Ramgarh. It is found to be permissible limit of 1.5 mg/l in major part of the district. However Neemrana, Ramgarh and Kathumar blocks have excess fluoride. Fluoride contamination in ground water has also been reported from parts of Kotkasim, Mundawar, Behror, Bansur, Thanagazi, Rajgarh, Reni, Umrain, Laxmangarh and Kishangarh Bass blocks.

Fluoride Standards :-

According to UNICEF studies fluoride has no beneficial health effects. World Health Organization gave a guideline value of 1.5 mg/l as the maximum permissible level for fluoride in drinking water. In tropical countries such as Indis people drinks more water hence consume more fluoride. Also many food items have high concentration of fluoride. The Bureau of Indian Standards (BIS) has specified drinking water quality standards in India to provide safe drinking water to the people. Apart from BIS specification for drinking water, there is one more guideline for water quality, brought out by Ministry of Water Resources, Government of India in 2005. This is known as Uniform Protocol for Water Quality Monitoring. A need has arisen to have a separate uniform protocol for Drinking Water Quality Monitoring in view of increasing risk of geogenic and anthropogenic contamination. The Drinking Water Quality Monitoring Protocol describes specific requirements for monitoring drinking water quality with a view to ensure provision of safe drinking water to the consumers.

Fluoride Analysis :-

Selective ion meter was ion concentration. Calorimeter method has been used for determination of fluoride content in water samples. In the determination of fluoride content of water the, reverse Beer's Law is found valid. A decreasing optical density of the solution implied a corresponding higher fluoride contents in the groundwater.

Source of Fluoride exposure in Humans :-

Major sources of fluoride for human exposure are water food, air, cosmetics and medicament. Fluoride is widely distributed in the lithosphere. Fluoride contaminated ground water when used in irrigation, the grown vegetable also incorporates the fluoride. Even at fairly low concentrations, fluoride can cause a number of physiological and biochemical changes in plants without visible signs of injury. The toxic effect of fluoride on pigments like chlorophyll and some secondary metabolites. Some plants have high amount of fluoride. Fluoride rich food items are also a source of fluoride for human consumption, some of these are tea, fluoridated toothpaste, plants and vegetables grown in soil rich in fluoride, like carrot, corn, potato, soybeans, cabbage etc. The use of fluorides in industries can after lead to occupational exposure e.g. inorganic fluoride compounds are used in the production of aluminium and phosphate fertilizers. The crop plant grown in high fluoride soils in agricultural and non-industrial area had fluoride content as high as 300 ppm.

WHO states that people affected by fluorosis are often exposed to multiple sources of fluoride such as food, water, air excessive use of toothpaste etc. Recent studies indicate that the serum fluoride level increase many fold among the children using fluoridated toothpaste containing 900mg/l of fluoride one a day. High intake of fluoride causes both short term and long term effects. Acute high level exposure to fluoride causes immediate abdominal pain, excessive salivation, nausea and vomiting. High fluoride intake causes skeletal fluorosis and sometimes an abnormality in bone density which may lead to spondylosis and osteoporosis. Excess fluoride binds with calcium in body and form calcium fluoride which accumulates in kidneys and form stones causing eventual renal failure. Gastrointestinal system also gets affected by excess fluoride. Dental fluorosis is the appearance of faint white lines or streaks on the teeth that only occurs when younger children consume too much fluoride from any source. Due to high calcium content teeth easily take up fluoride. Mottling of teeth is one of the earliest sign in most recognizable features. Teeth become rough, opaque and chalky white.

Skeletal Fluorosis manifests initially at the beginning of adulthood and is progressive if persons continue to consume fluoride rich water. Maximum ill effects of fluoride are detected in the neck, spine, pelvic and shoulder joints. Skeletal fluorosis usually becomes crippling in people in the endemic regions.

Allergic Manifestations Fluoride causes very painful skin rashes, or spots on the skin and clears up within a week.

Gastrointestinal Manifestations are generally the first symptoms that a person will experience is the damage of gastric mucosa.

Male fertility - The fluoride exposure particularly from high concentration topical fluoride gels must be considered as one of the potential major factors. Fluoride adversely affects the male sterility in humans.

Mitigation Strategy of Fluoride :-

The simplest strategy for fluoride mitigation is to provide the population with fluoride free water. The Fluorosis Control cell established by the Mission at All India Institute of Medical Science, New Delhi, generated very valuable data on the prevalence of excess fluoride in water and Fluorosis.

Prevention and Mitigation of Fluorosis - Dental fluorosis is irreversible in nature and its treatment requires complex and expensive procedures. In case of skeletal fluorosis there is no specific treatment. Therefore due to lack of sustainable treatment measures for any form of fluorosis prevention and control through interventions is said to be the best approach interventions is said to be the best approach to mitigate fluorosis. There are two interventions to practice for the management of the disease. Fluorosis can be totally prevented and individual can lead a normal healthy life. The intervention to practice are : Provision of safe drinking water and Nutritional intervention also.

Defluoridation of Water - Desirable features of defluoridation process is cost effectiveness, easy to handle for rural people. It is the conventional and widely tested method for supplying safe water to the fluorosis affected communities. Some commonly used defluoridation process are such as Reverse Osmosis, Activated Alumina Process and KRASS Process etc.

Activated Alumina Process - Reactivation of filter material is cumbersome and it can be done only with trained persons. In this process activated alumina has been used for defluoridation of water, prepared by low temperature dehydration of aluminium hydroxides. The advantage of this process is low cost for treatment as only a limited volume of water is required.

Reverse Osmosis (RO) - Reverse Osmosis is a process to get rid of all the impurities in drinking water including deadly ions and organisms and pesticides or fertilizer residues. Under RO systems, water is made to pass through membranes. Only 5-10 percent of the ions are able to slip across the membrane, which is well within acceptable levels as per all standards including WHO, BIS etc. RO systems are suitable for removing several of the toxic substances present in water in dissolved form including fluoride, and fertilizer residues.

Nutritional Interventions - Fluorosis mitigation is mainly addressed through defluoridation of water in most of the cases. But nutritional supplement can also be used as a part of curative measure. Nutritional intervention should focus on adequate intake of food rich in calcium, vitamins C and E and antioxidants, along with consuming safe drinking water.

Fluorosis Mitigation Programs :-

(1) Vision 21 for India - The UN water supply and sanitation collaborative council with all the constituents from the grassroots level and up to the national government and international agencies prepared the vision 21 documents for the sector and presented to the Hague second World Water Forum in March 2000. I am especially happy to mention here that both Sri Digvijay and Sri C.P. Thakur were there to provide the required leadership and encouragement to the large Indian delegation in the forum. The Forum warmly endorsed the vision and also identified the high priority to be given to the much neglected area of Sanitation and Hygiene. The vision principles are equally applicable to tackle the issues related to fluoride. The mission should consider tie up with Industries Department for the right grade of activated alumina supply for defluoridation of water. Once the raw material of good quality is available in plenty, the activated alumina filters for defluoridation of water will be in the market at affordable price.

(2) Project Sarita (Dungarpur, Rajasthan) - A pilot project (Fluorosis mitigation Programme by defluoridation using Nalgonda based drum sets and activated alumina filters along with community awareness activities) was launched by Sarits in four villages of Dungarpur district of Rajasthan under the sponsorship of UNICEF.

Conclusions :-

It is difficult to draw any conclusion for this multifaceted problem of fluorosis or to purpose a universally accepted strategy, which would be good for all. Fluorosis continues to be an endemic problem. More and more area are being discovered regularly that affected by fluorosis in different parts of the country. It is evident from studies by several researchers worldwide that fluoride in groundwater has been a potential problem to human society. To remediate the groundwater with high fluoride defluoridation techniques are adopted. But ultimate solution for this fluoride menace remains to be the principal of 'precaution is better than cure.'

References :-

1. Beena Rani, "Fluoride & Fluorosis in Rajasthan: An Overview, A Project Report (IGNOU), ND, DNHE, 2006.
2. Gupta S.K., Gupta R.C., Seth A.K., Gupta A "A Reversal of Fluorosis in Children", Acta Paediatrica Japonica, 1996.
3. Fluorine and Fluorides (Environmental Health Criteria - 36). WHO Geneva 1984.
4. Maheshwari R., Rani B., Gupta N., "Fluoride Toxicity: Everything About Water." 2007.

5. Shivshankara A.R., Shivraj Sharnkar Y.M., Hanumanth Roa S., and Gopalkrishna B.P., "Fluoride" 2000.
 6. Siddiqui A.H., "Fluorides and Human Health" WHO Geneva 1970.
 7. WHO : Fluorine and Fluoride. Environmental Health Criteria, Volume - 36, Geneva 1984.
-

Economic Development and Poverty reduction in Rajasthan:**(An Economic analysis)****Dr.Paras Jain**

Head, Department of Economics,

J.R.N.Rajasthan Vidyapeeth (Deemed to be University), Udaipur, Rajasthan

Abstract:

Poverty is a crucial stage where an individual or a group of society is deprived from the basic requirements of the good life where as one another group lives with prosperity. One group faces scanty while other with prosperity. Poverty is a curse which has to be destroyed. If the god makes the destiny of poor's than it is the moral duty of the another god on this eternal earth (men) to change this destiny of poor's by such policies which will make them better where they can enjoy all the fruits of life such as rich and prosperous peoples.

Present paper tries to analyze the role of Economic development in Partly reduction in Rajasthan. A good mathematical relationship has been established here between the poverty and its determinants.

Introduction :

Poverty is a very common subject of talking between policymakers during the past six decades. Poverty eradication is one of the main objectives of the all five year plans of the country. Poverty is the main obstacle of economic development of India. The vicious circle of poverty operates in India and it makes India poor from last five and six decades.

It is a crucial issue of socio-economic policies today. Poverty is a state where a part of the society is unable to fulfill even the basic needs of the human life. There are various views on the estimation of poverty but we can conclude these in three ways, as absolute, relative and human poverty. Absolute means the inability to meet the basic needs and relative means distance from the community norms or economic inequalities while human poverty relates to the deprivation from a normal quality of life. If a person lives with less than 1.25 \$ per day than he is not living a normal life.

Various efforts have been made by Indian government to eradicate poverty from India. Some economist believed that the trickle down impact of development would automatically go on reducing poverty in the country. But it was not felt that this works in India till the U.P.A. government. The failure of this approach initiate for the special area program to alleviate poverty in the country. These program has been designed in such a way that it can make a direct attack on poverty.

Present study throws the light on the state of Rajasthan. It is a backward state of the country and largest in India. 61 percent part of the state is desert where the only source of livelihood is agriculture and allied activities. A huge part of the population lies under B.P.L. Therefore it is very important to trace out the study of poverty alleviation program in the state is very essential. Present study tries to fill this gape.

Various economists had studied the extent of poverty in India and Rajasthan. Most of the researcher follows the calories intake of 2250 per capita per day. Prof. V.M. Dandekar, NinianthRath, B.S. Minhas, Suresh Tendulkar, PranabBardhan, Montek Singh Ahluwatia and many other economist expressed their views on poverty. Present study on the poverty of Rajasthan has been done on the basis of following **objectives**.

- (i) To present the extent and conditions of poverty in Rajasthan.
- (ii) To present the all poverty alleviation programmes of Rajasthan in brief.
- (iii) To find out the relationship between the poverty and level of development.

Following methodology has been adopted in the present research

Selection of the study area:

For the sake of present study the state of Rajasthan has been purposively selected for its eratic nature. A huge part of it's population lives in villages and directly or indirectly depends on the agriculture for their livelihood. Normal rainfall in the state is always less than the average rainfall which makes the conditions of drought. In such conditions it is very necessary to find out the relationship between the development and the eradication of poverty.

(ii) Data collection and statistical analysis of data :

Present study is based on the secondary data which has been collected from various government or non government publications.

Different statistical measures like ratios, percentage, averages, variation, simple and rank correlation and simple regression analysis has been used to find out the relationship between the development and the extent of poverty.

The study has been divided into three parts. First section deals with the extent of poverty in Rajasthan, second section deals with the poverty alleviation programmes in Rajasthan and third section presents the development of hypothesis and model building and correlation between different development indices and poverty.

Section I :

The head count of the poors has done on the basis of consumption expenditure data of N.S.S.O. Here we have present the proporation of the poors of the poor peoples in the state with India. Here we present a comparative analysis of extent of poverty in India and Rajasthan.

Following table shows these data :

Table 1.1 Poverty ratios for rural and urban areas of Rajasthan and India.

	Rural			Urban			Total		
	2004-05	2009-10	2011-12	2004-05	2009-10	2011-12	2004-05	2009-10	2011-12
Rajasthan	35.80	26.40	16.10	29.70	19.990	10.70	34.40	24.80	14.70
India	42.00	33.80	25.70	25.70	20.90	13.70	37.20	29.80	21.90

Source :Agriculture statistics at a glance, 2012, Economic survey 2012-13.

It is clear from the table that rural poverty in India was 42 percent in 2004-05. It has decreased to 25.70 percent in 2011-12. It was 35.80 percent in Rajasthan in 2004-05 which decreased to 16.10 percent in 2011-12.

Urban poverty was 25.50 in India and it decreased to 13.70 percent in 2011-12. It was 29.70 percent in the state in 2004-05 which decreased to 10.70 percent in 2011-12.

It we see the over all situation thanwe find that the total poverty was 34.40 percent in 2004-05 in Rajasthan. It has declined to 14.70 percent in 2011-12. In India it was 37.20 percent in 2004-05. It has declined to 21.90 in 2011-12.

It has been concluded that there has been sharp decline in poverty in Rajasthna during the period of lost seven years. It is also important to note that poor peoples were mostly from small and marginal farmers, agricultural labourers, rural artisans, S.C. and S.T. people, bonded labours, disabled people and resource less farmers.

The ratio of poverty in S.C. and S.T. classes inrural areas of Rajasthan and India has been presented in following table :

	S.C.		S.T.	
	1993-94	1999-2000	1993-94	1999-2000
Rajasthan	26.40	23.70	28.80	36.50
India	27.60	27.30	14.80	17.50

Source : Hand book of poverty in India 2005

Table indicates that the poverty ratio of S.T. in 1999-2000 for both Rajasthan and India has been increased with time. The ratio poverty for S.C. people has been decline during this period. It can be concluded that S.T. peoples are the worst sufferers from the clutches of poverty.

Section : II –Development programmes for poverty eradication.

Various programmes such as desert Development programmes, drought-prone-area programmes, tribal development programmes, hill development programmes, minimum needs programme, Twenty Point programme, etc., had their impact on poverty-alleviation to some extent. But we shall discuss here some special anti-poverty programmes like Integrated Rural Development Programme (IRDP), DWCRA, TRYSEM and employment –generation programmes of the past (NREP & RLEGP) and the previous rural employment programmes (JawaharRozgarYojana, Swarnajayanti Gram SwarozgarYojana (SGSY), SampoornaGrameenRozgarYojana (SGRY), etc. because they had direct impact on poverty-alleviation in the state. Now, Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Programme, popularly known as ‘MAREGA’ has become popular in rural areas to tackle, to some extent, the twin problems of poverty and unemployment in the countryside.

1. **Integrated Rural Development Programme (IRDP)**

It was started in 1978-79 as a centrally-sponsored scheme (CSS). The outlay on it was distributed equally between the centre and the states. It was a subsidized programme for generating self-employment opportunities for the people. The selected poor families were given milch cattle (cow, buffalo, sheep, goat), bullock-cart, sewing machine, handlooms etc. The Government gave subsidy to the poor families and arranged bank loans for them. Thus, some asset was given to the poor families so that their incomes could go up and they could cross the poverty-line.

2. **Development of Women and Children in Rural Areas (DWCRA) :**

This was a sub-scheme of Integrated Rural Development programme, which was meant for the development of rural women so as to ensure their better participation in the developmental activities. In the Eighth Plan, the coverage of this programme was to be extended from 14 districts in 1991-92 to all the districts in the state, 4440 women-groups were to be formed in the Eighth Plan.

DWCRA programme was expected to cover 144 blocks in 31 districts by 1994-95, and thereafter, the remaining 93 blocks were to be covered in a phased manner. From 1st April, 1999 IRDP, TRYSEM, DWCRA, SITRA, GKY and MWS were merged into Swarnajayanti Gram SwarozgarYojana (SGSY).

3. **TRYSEM :**

This scheme of training rural youth for self-employment was started in 1979. It was conducted under IRDP. Persons in the age-group of 18 years to 35 years were trained under it, and they tried to get self-employment in these broad fields of agriculture and allied activities, industries, services and business activities. There was a target of spending Rs. 14 Crore under TRYSEM in

1995-96. Including IRDP, the total outlay was fixed at Rs. 75.50 Crore, out of which half was to be the share of the state.

4. **National Rural Employment Programme (NREP) :**

It was started in October 1980 and merged in JawaharRozgarYojana in 1989-90. It used to provide wage-employment to rural people in public works like rural roads construction, wells, school-buildings, minor irrigation, solid conservation, etc. 'Food for work' facility was also given under it. The Centre and the State had 50:50 share in it. In 1988-89 with an outlay of Rs. 36.90 Crore, employment was created for 2.27 crore mandays only.

5. **Rural Landless Employment Guarantee Programme (RLEGP) :**

It was started in August 1983 and merged with JRY in 1989-90. Its entire expenditure was borne by the centre. It was designed to provide work to at least one person from a landless labour family for 100 days in a year. Works under it were similar to that of NREP, such as construction of roads, panchayat and school buildings etc. In 1988-89, a sum of Rs. 24.70 crore was spent and employment-generated was 1.25 crore mandays only.

6. **JawaharRozgarYojana (JRY) :**

It was started in 1989-90, when NREP & RLEGP were merged with it. The centre state share was 80:20 under it.

The Main Points of JRY are :

1. From rural poor families at least one person could be given employment for at least 100 days in a year.
2. Its work was conducted through village panchayats so that state Government may not interfere in it.
3. There was reservation for rural women up to 30 per cent in it.
4. Funds were allotted for different levels on the basis of the number of poor people, index of backwardness and population. At the state level, the basis was the number of poor; at district level it was index of backwardness and at village level it was population only.
5. At district level 6 percent of total allocation was to be used for Indira AwasYojana for SC/ST people. Funds were used for social forestry, construction of roads and buildings on the basis of local requirements.

7. **Twenty Point Programme (TPP) :**

This programme was launched by the former Prime Minister Smt. Indira Gandhi on July 1, 1975 with a view to initiate a concerted attack on poverty, malnutrition and diseases and to bring improvement in the quality of life of the weaker sections of society. It was revised in 1982, and

again reviewed and restructured in 1986. State was ranked 1st in TPP among other states in the country during 1997-98.

8. District Poverty Initiative Project (DPIP) :

This project was initiated in July 2000 with the financial assistance of the world Bank in seven districts of Rajasthan : Such as Baran, Churu, Dausa, Dholpur, Jhalawar, Rajsamand and Tonk. It has benefited rural poor in 7039 villages. Total cost of the project would be Rs. 643.63 crore, in which the share of the world Bank would be 80 per cent. Under this project works relating to community infrastructure, land-based social services and income-generation are undertaken.

9. Recent Programmes that assist in Poverty-Alleviation in the state :

1. **SwaranJayanti Gam SwarojgarYojana (SGSY) :** It was started from 1st April 1999 by amalgamating 6 programmes, such as IRDP, TRYSEM, DWCRA, SITRA, GKY and MWS. The shares of centre and Rajasthan were kept as 75:25. Through the formation of self-help Groups, the poor people are helped to increase their income by working in. Subsidy is given to such people.
2. **Mahatma Gandhi Rural Employment Guarantee Scheme (MNREGS) :**
This scheme was started from 2 February 2006. From April 2006 to 10th December, 2010, a total sum of Rs. 16624 crore has been spent for various programmes such as road construction, renewal of water-sources, drought-proofing, water-conservation, etc.
3. **Mitigating Poverty in Western Rajasthan (MPOWER) :** This programme was started by Rajasthan government for agricultural development with the help of International Fund and Sir Ratan Tata Trust in each block, selected from 6 families would be specially benefited, and there would be women-empowerment of poor families. Self-help-groups would be constituted and youths would be trained for the job of security guards for using sewing machines, spinning and weaving, working on computers, etc. Help of NGOs would also be solicited for this programme.

Section : III Statistical Analysis :

Researcher has made some hypothesis on the basis of the previous studies already done on poverty and development and find out the interrelation between both the variables : Following hypothesis has been framed here :

1. Agriculture and allied sector :

Since agriculture is the main occupation of the state and about two third part of the population depends on these sectors for their livelihood. Here we assume that if new techniques like

H.Y.V seeds, irrigation, fertilizers etc increases the agricultural production of the messes and reduces the poverty. In contrary the reduction in agriculture production increases the poverty.

2. **Per capita Income**

Per capita income is directly related with the quality of life. There is negative correlation between per capita income and poverty.

3. **Government expenditure :**

It is very important tool of fiscal policy to make the remote and less developed areas and the deprived part of the society better off to make the better of these people or areas reduces the poverty and vice versa.

4. **Capital formation :**

Capital formation means the increase in investment. Investment increases the employment, per capita income and quality of life and thus reduces the poverty and vice versa.

5. **Health :**

Good helth is associated with the working capacity. There is direct relationship between good health and per capita income and vice versa.

6. **Education :**

Here we assume the positive correlation between the level of education and per capita income and reduces the poverty.

Table 1.3 Indicators of poverty and economic development of Rajasthan.

Year	Agriculture Production (Index)	Per Capita Income (Rs.)	Grovernment expenditure (CroreRs.)	Capital formation (Rs. Crore)	Industrial Production (Indse)
2001-02	130.99	17352	1817.81	13141	164.98
2002-03	67.68	15011	2027.54	13805	199.71
2003-04	172.02	19404	3180.98	18970	200.93
2004-05	154.24	18565	3488.29	26763	228.88
2005-06	153.84	19445	4293.68	28893	235.51
2006-07	167.63	21342	4809.35	38130	201.39
2007-08	166.66	21922	6555.55	50946	251.49
2008-09	185.09	23356	5899.95	64139	282.95
2009-10	138.83	24304	5174.73	74193	319.61
2010-11	244.48	27625	5250.20	93450	325.09

2011-12	237.47	28851	8268.45	105026	340.64
2012-13	N.A.	29917	9689.19	N.A.	N.A.

Source : Computed from Economic review 2014

These indicator shows the economic development in the state as index of agriculture production shows an increasing trend and government expenditure is continuously increasing. In the same way capital formation and index of industrial production also shows an increasing production.

Health indicator shows that birth rate in the state is continuously decreasing. It was 31.1 in 2001, which decreased to 26.2 per thousand in 2011. Death rate also decreased from 14.3 to 6.7 per thousand in the same period. Infant mortality rate is continuously decreasing in the state (80 to 52), while the life expectancy in the state was 62 years during 2002-06. It shows an increasing trend.

In the same way education level of the state is also showing an increasing trend from last decade. All these factors are the main reasons of the falling ratio of the rural and urban poverty in Rajasthan.

Model Building :

To find out the relationship between the poverty level and its determinant we have used multiple regression model. It is expressed as follows:

$$Y_i = \alpha + \beta_1 X_1 + \beta_2 X_2 + \beta_3 X_3 + \beta_4 X_4 + \beta_5 X_5 + \beta_6 X_6 + U_i + \beta_7 X_7$$

Where y_i	=	Poverty
X_1	=	Agricultural Production
X_2	=	Per Capita income
X_3	=	Government expenditure
X_4	=	Capital formation
X_5	=	Industrial production
X_6	=	Health and education
U_i	=	

The results of this models has been presented in following table.

Explanatory Variables	Hypothesized signs	R^2	$\overline{R^2}$	t Score
X1	-	0.862	.896	-2.26
X2	-			-4.28*
X3	-			-3.29
X4	-			-3.374
X5	-			-3.248*
X6	-			-4.286*
X7	-			-5.682*

Source : Computed * significant at 5% level of significance.

Our model is found to be best fitted as the value of R^2 and $\overline{R^2}$ is high, therefore it can be concluded that the explanatory variables are good to analyse the variation in poverty level of the state.

It can be concluded from this study that there is a reduction in poverty level of the state due to the poverty eradication programmes of the state but still we have to go for in this direction followings are some suggestions to improve this conditions :

- (i) We should make the growth more inclusive and faster.
- (ii) We have to use the micro level planning for the better development of rural areas. There is a need of rural sector reforms in the country.
- (iii) There is a need to diversify the agriculture and the attempt should be made to enhance the small and cottage industries.
- (iv) Public expenditure on social infrastructure should be increased and we have to make it efficient and accountable.
- (v) We have to boost on P.P.P. model to improve the conditions of the rural infrastructure of the state.
- (vi) We have to control the population of the country.
- (vii) There is a need of second green revolution in the agriculture sector of the country.

References :

Books :

1. A. Sen, 'Poverty, Inequality and Unemployment, Some conceptual Issues in Measurement', in Poverty and Income Distribution in India(ed) by T.N. Srinivasan and P.K. Bardhan, Statistical publishing society, Calcutta, 1974.

2. Centre for Development Studies, "Poverty, Unemployment and Development Policy : A Case Study of Selected with Reference to Kerala", United Countries, New Delhi, 1975.
3. Rein, M."Problems in the Definition and Measurement of Poverty," in the Concept of Poverty, Peter. Towngens (ed), Heinemann, ondon, 1970.
4. Minhas, B.S. and L.R. Jain, "Incidence of Rural Poverty in Different States and All India : 1970-71 to 1983", in Agricultural Development Policy, Adjustment and Reorientation, Oxford and IBH, New Delhi 1989.
5. Morries, M.D. Measuring the Condition of the World's Poor, the Physical Quality of Life Index, OxforPergaman Press. 1979

Journals :

1. Ahluwalia M.S., "Rural Poverty and Agricultural Performance in India", Journal of Development Studies, 14, 298-323, 1978.
2. Chakrawarty, S.R., "Measures of Poverty Based on the Representative Income Gap", Sankhya, 1983.
3. Sen, A.K. "Issues in the Measurements of Poverty" Scandinavian Journal of Economics, 81-285-30, 1979.
4. Panchamukhi, P.R., "Social Impact of Economic Reforms in India A Critical Appraised", Economic and Political Weekly, Vol. XXXV, No. 10 March 4-10-2000.
5. Rao, V.G. and Chandrashekhar, H. "Inter-State Variations in Urban Poverty" Margin, 1984.
6. Bhanumurthy N.R. and Mitra Arup "Declining Poverty in India : A Decomposition Analysis" The India Journal of Economics, Vol. 47, No. 2, 2004.

Web :

1. Statistics.rajasthan.gov.in

भारत में बढ़ता भ्रष्टाचार : एक समस्या

कु. चोदनी नायक

शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग,

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भारत में बढ़ता भ्रष्टाचार देश की एक प्रमुख राष्ट्रीय समस्या बन गया है। और इस भ्रष्टाचार का ग्राफ दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही चला जा रहा है, आम जनता को सार्वजनिक सेवाओं खाद्य आपूर्ति, बिजली, पानी, अस्पताल, स्कूल, पुलिस अदालत, बैंक, जमीन, टैक्स इत्यादि में रिश्वत देनी पड़ती है। सरकारी दफ्तरों में बिना लेन-देन के कोई भी फाइल आगे नहीं बढ़ती है, ऐसी स्थिति में देश के विकास और जन-कल्याण की राह में लालफीताशाही सबसे बड़ा रोड़ा है। नोटबंदी और एलपीजी के आधार से लिंक होने के बाद भ्रष्टाचार में कमी आई है, लेकिन यह पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है।

मुख्य शब्द -

भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, लोकपाल, लोकायुक्त, नोटबंदी।

प्रस्तावना -

अनेक वर्षों तक भारत के सिंहासन पर राज करते हुये मुगलों एवम् अंग्रेजों ने भी देश को इतना नहीं लूटा होगा जितना कि आजादी के 69 वर्षों में इन भ्रष्ट राजनेताओं ने लूट-लूट कर देश को खोखला कर दिया। देश जब से आजाद हुआ है, भ्रष्टाचार की समस्या भी तभी से सिस्टम को मुंह चिढ़ा रही हैं। आज हमारे देश का यह दुर्भाग्य है, कि हम किसी विदेशी द्वारा नहीं, बल्कि स्वयं अपने ही लोगों के द्वारा लूटे जा रहे हैं। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के एक अध्ययन के मुताबिक, 50 फीसदी भारतीयों को सीधे तौर पर सरकारी दफ्तर में अपना काम निकलवाने के लिये रिश्वत देनी पड़ती है। एक समय लोकायुक्त की अपनी गरिमा होती थी, लेकिन अब तो वह भी आरोंपों से अछूते नहीं है, भ्रष्टाचार को लेकर हमारी सरकारें किस हद तक उदासीन है, इसके प्रमाण समय-समय पर मिलते रहे हैं।

सन् 1980 के दशक से राजनेताओं तथा विभिन्न राजनैतिक दलों ने अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों को पूरा करने के लिये बड़े-बड़े अपराधियों एवम् माफियाओं की सहायता लेकर उन्हें संरक्षण देना आरंभ किया। वहीं आर्थिक उदारीकरण की आड़ में भ्रष्टाचार की बेल तेजी से बढ़ने लगी। झारखंड रिश्वत काण्ड से यह स्पष्ट हो गया कि सत्ता के लिये सांसदों को बेचा एवम् खरीदा जा सकता है। इस प्रकार देश में बोफोर्स काण्ड, हवाला काण्ड, तहलका काण्ड, नोट के बदले वोट काण्ड, चारा घोटाला, टू-जी स्पेक्ट्रम घोटाला, कॉमनवेल्थ घोटाला, कोयला

ब्लाक आवंटन घोटाला, आदर्श हाउसिंग घोटाला एवम् हाल ही में बहुचर्चित व्यापम घोटाला इत्यादि भ्रष्टाचार के उदाहरण हैं। भ्रष्टाचार को लेकर हाल ही में राजनैतिक दलों की इच्छाशक्ति दम तोड़ती नजर आई है। यूपी में पिछले एक साल से लोकायुक्त की नियुक्ति को लेकर उत्तरप्रदेश सरकार आनाकानी कर रही थी। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने संवैधानिक अधिकार का प्रयोग करके लोकायुक्त की नियुक्ति कर दी। दिल्ली में मुख्यमंत्री के प्रधान सचिव के दफ्तर पर सी.बी.आई. छापे के बाद पूरी सरकार उनके बचाव में खड़ी हो गई। अब सवाल यह उठता है, कि इस रवैये से आखिर कैसे भ्रष्टाचार दूर करने की परिकल्पना की जा सकती है ?

भ्रष्ट + आचार = भ्रष्टाचार। अर्थात् जिसका आचार भ्रष्ट हो। जब कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु भ्रष्ट साधनों द्वारा नियमों को तोड़कर अनुचित लाभ प्राप्त करता है, और जानबूझकर अपने उत्तरदायित्व की अवहेलना करता है, तब यह भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है। आज प्रत्येक व्यक्ति कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक धन कमाना चाहता है, और भौतिक सुख-सुविधाओं का उपभोग करना चाहता है एवम् इस विलासिता पूर्ण जीवनयापन करने के लिये अनैतिक हथकंडे अपनाने में भी परहेज नहीं कर रहा है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अल्प समय में धनी बनना चाहता है इसलिये वह भ्रष्टाचार को अपनाता है यदि इसी तरह चलता रहा तो एक दिन भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच जायेगा। भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिये अथवा रोकने के लिये अनेक कदम उठाये गये हैं, फिर भी भ्रष्टाचार रुकने का नाम नहीं ले रहा है, आए दिन कहीं-न-कहीं, कोई-न-कोई अधिकारी, कर्मचारी एवं राजनेता भ्रष्टाचार के मामलों में रंगे हाथ घूस लेते पकड़े जा रहे हैं, अतः भ्रष्टाचार आज हमारे आचरण में घर कर गया है।

भ्रष्टाचार आज भारत ही नहीं बल्कि विश्व की एक जटिल समस्या बन गई है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल की रिपोर्ट के मुताबिक, भ्रष्टाचार के वैश्विक पैमाने पर भारत अंकों के आधार पर वहीं खड़ा है। इसी तरह, ऑक्सफेम सहित दुनिया की तीन आर्थिक विश्लेषण संस्थाओं ने बताया था कि भारत में पिछले 25 वर्षों में गरीब-अमीर की खाई खतरनाक रूप से बढ़ती जा रही है, गरीब और गरीब होता जा रहा है, तथा अमीर और अमीर। विश्वास नहीं होता है, कि बापू के देश में यह कैसे हो रहा है। भ्रष्टाचार रोकने के लिये हमने कानून बनाये, भ्रष्टाचार के मुद्दे पर सरकार गिराई और बनाई भी, अन्ना हजारे ने आन्दोलन भी किया और पूरा देश उनसे प्रभावित भी हुआ। लोगों ने भ्रष्टाचार के विरोध में पूरे देश में जुलूस भी निकाले, इससे लगने लगा कि देश की सामूहिक चेतना में गुणात्मक परिवर्तन हो गया और अब भ्रष्टाचारी आखिरी सौंस लेगा, लेकिन सब कुछ ज्यों का त्यों ही रहा है।

सन् 1992 से अब तक यानी महज 23 सालों में देश के 73 लाख करोड़ रुपये घोटाले की भेंट चढ़ गये। करीब एक खरब डॉलर कालाधन विकासशील देशों से हर साल बाहर जाता है, कालाधन पर अध्ययन करने वाले आर.वैद्यनाथन का दावा है, कि 72 लाख 80 हजार करोड़ रुपये विदेशों में जमा है। वहीं देश में भ्रष्टाचार के मुद्दे पर चुनाव जीतकर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा था कि न खाऊँगा, न ही खाने दूँगा। भले-ही मोदी सरकार की सख्ती और सजा के डर से 638 व्यक्तियों ने 3770 करोड़ रुपये ब्लेकमनी का खुलासा किया है। साथ ही भ्रष्टाचार को खत्म करने के लिये केन्द्र सरकार ने कोयला ब्लॉक आवंटन और एफ.एम. रेडियो की नीलामी प्रक्रिया में स्वविवेक के अधिकार को समाप्त कर दिया है। बावजूद, इसके भारत में भ्रष्टाचार दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है, भ्रष्टाचार निरोधक संस्था ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल की रिपोर्ट के अनुसार, भारत भ्रष्टाचार के मामलों में अभी-भी 85वें स्थान पर है, जबकि डेनमार्क 92वें स्थान पर सबसे कम भ्रष्ट देश है। आज दुनिया में सबसे कम भ्रष्टाचार डेनमार्क में है। डेनमार्क की व्यवस्था हमारे देश की व्यवस्था से ज्यादा अलग नहीं है। मतलब, संसद से लेकर अदालतों तक, संविधान से लेकर नियम-कायदे, कानूनों तक लगभग हम किसी भी चीज में डेनमार्क से कम नहीं है, बल्कि हमारे देश का कानूनी ढाँचा और भी मजबूत है तो फिर डेनमार्क में ऐसा क्या है, कि भ्रष्टाचार को काबू करने के मामले में वह हमसे न सिर्फ आगे है बल्कि दुनिया में सबसे ऊपर है। इसका कारण है सीधा-सरल एवम् पारदर्शी कानून। भारत में जहाँ सूचनाएँ प्रदान करने के लिये राइट टू इंफॉर्मेशन का कानून है, लेकिन डेनमार्क में सूचना देने की परम्परा है, डेनमार्क में सरकार, उसके मंत्री और अफसर सूचनाओं को छुपाते नहीं है। डेनमार्क में सरकार को अब तक भ्रष्टाचार विरोधी रणनीति बनाने की जरूरत ही महसूस नहीं हुई है, और न ही भ्रष्टाचार संबंधी कोई अलग से कानून है।

भारत में बकायदा भ्रष्टाचार निरोधक कानून के तहत भारत में किसी सरकारी कर्मचारी को रिश्वत लेने पर 3 साल से 7 साल तक की सजा का प्रावधान है लेकिन भारत में सबसे बड़ी समस्या है, कि पहले तो कानून का पालन कराने वाली एजेंसियों अपने काम में ढिलाई बरतती है, और फिर एक जटिल लंबी न्यायिक प्रक्रिया चलती है। इसकी वजह से भ्रष्टाचार के हजारों मामले अदालतों में चलते रहते हैं, डेनमार्क में भ्रष्टाचार को फैलने से रोकना सरकार की जिम्मेदारी होती है, लेकिन सरकार पर नजर रखने का काम लोकपाल का होता है डेनमार्क में लोकपाल की शुरुआत सन् 1954 से ही हो चुकी है, जबकि भारत को आज भी उसके पहले लोकपाल की नियुक्ति का इंतजार है अतः न्यायपालिका बहुत हद तक स्वयं को पाक-साफ मानती है पर कई मामलों में न्यायाधीशों पर भी भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप लगे हैं। भारत में भ्रष्टाचार के आंकड़े निम्न हैं -

राज्य	1990-95	1996-2000	2001-05	2006-10

राज्य	1990-95	1996-2000	2001-05	2006-10
बिहार	0.41	0.30	0.43	0.88
गुजरात	0.48	0.57	0.64	0.69
आंध्रप्रदेश	0.53	0.73	0.55	0.61
पंजाब	0.32	0.46	0.46	0.60
जम्मू और काश्मीर	0.13	0.32	0.17	0.40
हरियाणा	0.33	0.60	0.31	0.37
हिमाचल प्रदेश	0.26	0.14	0.23	0.35
तमिल नाडू	0.19	0.20	0.24	0.29
मध्यप्रदेश	0.23	0.22	0.31	0.29
कर्नाटक	0.24	0.19	0.20	0.29
राजस्थान	0.27	0.23	0.26	0.27
केरल	0.16	0.20	0.22	0.27
महाराष्ट्र	0.45	0.29	0.27	0.26
उत्तर प्रदेश	0.11	0.11	0.16	0.21
उड़ीसा	0.22	0.16	0.15	0.19
असम	0.21	0.02	0.14	0.17
पश्चिम बंगाल	0.11	0.08	0.03	0.01

स्रोत- Wikipedia Corruption in India

नीति आयोग की सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज की 11वीं इंडिया करप्शन स्टडी-2017 की रिपोर्ट में भ्रष्टाचार की जिस स्थिति का आंकलन किया गया है। कि 12 साल में भ्रष्टाचार में 22% की कमी आई है और पिछले वर्ष 31% लोगों को रिश्वत देनी पड़ी है। रिपोर्ट के मुताबिक, पिछले वर्ष 31 फीसदी लोगों को स्कूल, अदालत, बैंक या अन्य कामों के लिये 10 रुपये से लेकर 50 हजार रुपये तक की रिश्वत देनी पड़ी है या फिर उन्होंने दी। ऑकड़े बताते हैं कि वर्ष 2005 में तो 53 प्रतिशत लोगों को रिश्वत देनी पड़ी थी। यानी इन वर्षों में भ्रष्टाचार में 22 फीसदी की कमी तो आई है, लेकिन इसका खात्मा होते नहीं दिखता है। देश के 29 में से 20 राज्यों में किये गये सर्वे के आधार पर हिमाचल प्रदेश, केरल और छत्तीसगढ़ को सबसे कम भ्रष्ट राज्य माना गया है, जबकि रिपोर्ट में कर्नाटक को सबसे अधिक भ्रष्ट राज्य बताया गया है। चिंतनीय यह भी है कि इस अध्ययन में जिन सेवाओं को मानक माना गया है उनमें खाद्य आपूर्ति, बिजली, पानी, अस्पताल, स्कूल, पुलिस, अदालत, बैंक, जमीन, रजिस्ट्रेशन और टैक्स शामिल है। लोगों का अनुभव है, कि यदि अदालत और पुलिस को पैसे नहीं दिये जाये तो वे जनता का काम नहीं करते हैं। घूस नहीं देने पर 3-5% लोगों को अदालत से

मनचाही तारीख या आदेश की सत्यापित प्रति हासिल नहीं हो सकी। उन्हें बस तारीख पर तारीख मिली। घूस न देने पर 1-8% लोगों की पुलिस ने एफआईआर तक नहीं लिखी।

अतः लोगों की जागरूकता और सरकारी दफ्तरों में तकनीक के बढ़े प्रयोग से भले ही रिश्वत के मामलों में कुछ कमी आई हो। लेकिन यह समस्या अभी भी पूरी तरह से समाप्त नहीं हुई है। कालेधन पर अंकुश लगाने की दृष्टि से केन्द्र सरकार ने नोट बंदी के फैसले के पश्चात् चुनाव में पारदर्शिता लाने के लिए राजनैतिक दलों के चंदे पर जो शिकंजा कसा है, वह भी काफी अत्यधिक सराहनीय कदम है। ऐसा नहीं है कि पूरा राजनैतिक अथवा प्रशासनिक तंत्र भ्रष्ट है सरकार एवम् प्रशासन में अभी भी ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ठ अधिकारी, कर्मचारी कार्यरत हैं। लेकिन यह भी सत्य है, कि एक गंदी मछली सारे तालाब को गंदा करती है। प्रश्न यह भी उठता है, कि भ्रष्टाचार की शुरूआत कौन करता है? मेरे विचार से भ्रष्टाचार की शुरूआत हमारे घर से ही होती है जहाँ पर हम एक छोटे से बच्चे से अपना कार्य कराने के लिये उसे पैसों का लालच देते हैं। और यही लालच उसके आचरण में शामिल हो जाता है जो आगे चलकर भ्रष्टाचार का रूप धारण करता है जब तक हम और आप अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में छोटे-छोटे भ्रष्टाचार को खत्म नहीं करेंगे। तब तक इसके खिलाफ लड़ना आसान नहीं होगा।

सुझाव -

देश में अगर वास्तव में भ्रष्टाचार को खत्म करना है तो इसके लिये आवश्यक है कि पहला, भ्रष्टाचार को समाप्त करने हेतु केन्द्र सरकार के द्वारा शीघ्र ही लोकपाल की व्यवस्था की जानी चाहिये। दूसरा, सूचना के अधिकार कानून के तहत मॉगी जाने वाली जानकारियों को निश्चित समय सीमा के भीतर दिलाने की व्यवस्था करना होगी। तीसरा, सरकार ने ऐसे नौकरशाह जो अपने कार्यों के प्रति सुस्त हैं अथवा काम में ढील देने वाले अधिकारियों को सेवानिवृत्ति करने का जो फैसला लिया है, वह मुझे निजी तौर पर उचित नहीं लगता बल्कि उसके स्थान पर काम न करने वाले नौकरशाहों को वेतन नहीं दिया जाना चाहिये। अर्थात् काम नहीं, तो वेतन नहीं प्रणाली अपनायी जानी चाहिये। तथा सिस्टम में पारदर्शिता लानी होगी। चौथा, राजनैतिक दलों को मिलने वाले चंदे में पूर्ण पारदर्शिता लाने के लिये भी एक कानून बनाना होगा। पाँचवा, भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिये फास्ट ट्रेड कोर्ट की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि भ्रष्टाचार से संबंधित लंबित मामलों का तत्काल निराकरण हो सके। छठवाँ, ई-टेण्डरिंग के जरिये टेण्डर, प्रक्रिया अपनाने से भी इस पर अंकुश लगाया जा सकता है। सातवाँ, देश में हर सरकार भ्रष्टाचार को समाप्त करने का राग अलापती रही है। आवश्यक है, कि सरकार नीतियों बनाने के साथ साथ उस पर अमल भी करें। आठवाँ, भ्रष्टाचार का कानून सख्त बनाने के लिये सजा-ए-मौत का प्रावधान किया जाना चाहिए। नौवाँ, भ्रष्टाचार को खत्म करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति में नैतिकता के साथ राष्ट्रहित में अलख जगाने की जरूरत है, तथा लोगों को शिक्षित करने के

साथ-साथ उन्हें रोजगार उपलब्ध कराना होगा। दसवों, लोकसभा, राज्य विधानसभा सदस्यों एवं न्यायधीशों के लिए भी एक आचरण संहिता तैयार की जानी चाहिए।

निष्कर्ष -

स्पष्ट है कि आज प्रत्येक व्यक्ति अल्प समय में धनी बनना चाहता है और हर तरह से सुख-सुविधाएँ प्राप्त करना चाहता है, इसलिये वह भ्रष्टाचार का रास्ता अपनाता है। केन्द्र एवम् राज्य स्तर पर भ्रष्टाचार चरम स्तर पर है और रसूखदारों के द्वारा बखूबी भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन दिया जा रहा है, दरअसल यह भ्रष्टाचार ही है, जो भारत के सशक्तिकरण में बाधक है कोई भी संस्था, कोई भी कदम, कोई भी नियम, कोई भी कानून तब तक मायने नहीं रखता है जब तक हम पूरी ईमानदारी से उस कानून का पालन न ही करते हैं, और न ही करवाते हैं अतः उनका पूरी ईमानदारी एवम् कर्तव्यनिष्ठा के साथ पालन किया जाना चाहिए। भ्रष्टाचार एक दो दिनों या कुछ महीनों में समाप्त होने वाला नहीं है, इसके लिये व्यापक स्तर पर प्रयास करना होगा। ताकि इसके हमें सार्थक परिणाम प्राप्त हो सके। गान्धी जी ने कहा था कि - “पाप से घृणा करो, पापी से नहीं, अर्थात्, भ्रष्टाचार से घृणा करो, भ्रष्टाचारी से नहीं।”

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. दुबे, शर्मा, रमेश, हरिशंकर चन्द्र, ‘भारत में लोक प्रशासन’, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2000.
2. सिंह, वीरकेश्वर प्रसाद, ‘भारतीय प्रशासन एवम् राजनीति’, ज्ञानदा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008.
3. वीर, गौतम, ‘लोक प्रशासन के मूल आधार’, विश्व भारती पब्लिकेशन्स,, दिल्ली, 2009.
4. पाण्डेय, आशुतोष, ‘लोक प्रशासन में कार्मिक प्रशासन’, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2009.
5. कटारिया, सुरेन्द्र, ‘लोक प्रशासन सिद्धांत एवम् व्यवहार’, सुधा नेशनल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009.
6. अहूजा, राम, ‘सामाजिक समस्याएँ’, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1994.
7. शर्मा, रामनाथ, ‘सामाजिक विघटन’ केदारनाथ, रामनाथ पब्लिकेशन्स, मेरठ, प्रथम संस्करण
8. कुमार, पवन, ‘भारत में प्रशासनिक संस्थाएँ’, वंदना पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2011.
9. त्रिपाठी, शर्मा, डी.सी., प्रभुदत्त, ‘भारतीय शासन एवम् राजनीति: सिद्धांत एवम् व्यवहार’, विश्वभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012.
10. दीक्षित, लक्ष्मीकांत, ‘लोक प्रशासन के आवश्यक तत्व’, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1972.
11. राय, त्रिवेदी, एम.पी., आर.एन., ‘भारतीय सरकार एवम् राजनीति’, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1997.
12. परमात्माशरण, ‘लोक प्रशासन’ रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ, 1976.
13. राज एक्सप्रेस, मई 8, 2015
14. हरिभूमि, मई 1, 2016
15. राज एक्सप्रेस, मई 1, 2017

Smart City Udaipur: Concept, Challenges And Digitalization

Dr. Yuvraj Singh Rathore

Asst. Professor, Dept. Of Geography
Jrn Rajasthan Vidyapeeth (Deemed To University)
Udaipur Rajasthan

Abstract

Smart city is a beginning of new era in the globalize world. Smart city is an emerging concept in the world. It define as a sustainable growth of urban area in Udaipur city that provides an excellent basic amenities by improving environment, tourism, pollution free Lake, mobility, governance, recreational, traffic and energy efficiency etc. Smart city Udaipur is monitoring and manages through various technologies like a geographic information systems (GIS), global positioning systems (GPS), and remote sensing (RS). Digitalization plays an important role in a smart city concept. This paper deals the concept of smart city, challenges of Udaipur like traffic, tourism, old city heritage, natural drainage and implementation of new technology in infrastructure of smart city Udaipur.

Keywords: Smart City, sustainable urban development, geographical information system (GIS), Digitalization, Governance.

Introduction

Smart City is now become an international phenomenon. Smart city word originated back in 1998, but the first funding for smart city came in the year 2000. The new dimensions of a smart city are Smart Economy, Smart Mobility, Smart Environment, Smart People, Smart Living and Smart Governance. Smart city can defines sustainable urban growth .Smart city can be a new theory and concept to manage rapid urbanization and increasing urban population. The implementations of the smart technologies can increase of the importance of Udaipur city.

Udaipur city of dawn is a lovely land around the water lake surrounded by the lush hills of Aravallis in the western Rajasthan state. A vision in the white drenched and beauty, Udaipur is a fascinating blend of sights, sound and experiences and inspiration for the imagination. It has kaleidoscope of fairy tale of palaces, lakes, temples and gardens. The city carries the flavour of heroic past, epitomizing velour and chivalry of Mewari's.

Udaipur was founded in 1553 by Maharna Udai Singh II as the final capital of the erstwhile Mewar Kingdom, located to the south of Nagada on the banks of Banas River. Legend is such that the Maharana Udai Singh II came upon a hermit while hunting in the foothills of the Aravalli range. The hermit blessed the king and asked him to build a palace on the spot, assuring him it would be well protected. Udai Singh II consequently established a residence on the site. In

1568 the Mughal emperor Akbar captured the fort of Chittorgarh and Udai Singh II moved capital to the site of his residence which became the city of Udaipur. In Mughal period also Udaipur remained the capital of the state, which became a princely state of British India in 1818. Being a mountain region and unsuitable for heavily armoured Mughal horses, Udaipur remained safe from Mughal influence in spite of much pressure. The Rajvansh of Udaipur was one of the oldest dynasties of the world.

Physical and Regional features of Udaipur

Udaipur is located in the center of an amphitheatre valley and is encircled by Aravalli hills. In geographical terms, it covers an area that lies between 24°28'49'' and 24°42'56'' N latitudes and 73°36'51'' and 73°49'46'' E longitude. It has an undulating topography that has an MSL of 563 through the highest peak of 922m Sajjangarh.

Situated in north-eastern part of Girwa Tehsil of Udaipur district, Udaipur is historically and geographically the heart of erstwhile Mewar State. Udaipur is located almost at the centre of the Delhi-Mumbai National Highway (NH-8). Udaipur is well connected to state capital Jaipur (420 km) in northeast and Ahmedabad (250km) in southwest. Udaipur is connected to other centers to the state by three state highways, SH-9 connecting Chittorgarh, SH32 connecting Banswara and SH-32 connecting Mount Abu. Udaipur is well connected by road, by air to major cities in India. This mode of commuting is quite easy and economical.

Drainage

Udaipur is drained by Ahad River, which is the main river of the region which flows from the north-west towards south east. The river is seasonal river, which originates from a 991 meter high hill in the north eastern part of Gogunda plateau. The region is blessed with numerous water bodies. The major water bodies in the region are Lake Pichola, Lake Fatehsagar, Lake Govardhan Sagar, Udaipur lake and Badi Talab.

Vegetation

The vegetation is very scanty; the natural vegetation has almost disappeared due to instance biotic interference. The over grazed and completely degraded area has now traces of trees, shrubs and grass species. The common trees available are Aam, Roonjh, Godal, Dhak, Kumtha, Mahuwa, Neem, Babul, Ber, Anwala, Besharm, Dhamas and Thor.

Smart City Concept

Smart City concept considers themselves 'smart' mainly from the point of view of their achievements in the field of Information and Communication Technology (ICT) and digitization. The British Standards Institute defines Smart city as "the effective integration of physical, digital

and human systems in the built environment to deliver sustainable, prosperous and inclusive future of its citizens”.

Smart city is the city of tomorrow, which tries to identify a smarter option from legacy system for maximizing the end-user satisfaction and accelerating urban socio-cultural and economic development. Smart city is knowledge based city functioning on most latest and updated information on automated decision-making and rapid action for individuals.

Udaipur City has spatial, cultural, social, economic, political, legal, democratic and ecological system. Spatial System can be studied from land use and urban networks and services. Smart city has abilities to uplift any nation, converting cities to smarter cities makes smarter nations by planning, management, and governance and development systems. At present, planning system prepares master plans, zonal plans; urban land management schemes and site planning schemes to achieve the goals of the spatial system that needs a careful relook for the creation of smart cities. Management and governing systems now in operation are legacy colonial with inefficient hierarchical system that is least responsive and in real-time outmoded and cumbersome for the end users

Use of GIS in Smart city

GIS is a technology to capture, store and manipulate, analyze and visualize spatially referenced data. It is used for spatial analysis and modeling. GIS allows viewing, interpreting and visualizing data in many ways that reveal relationships, patterns and trends in form of maps, reports and charts. It helps in delivering creation of multiple scenarios in time. It integrates hardware, software, data and people for capturing, managing, analyzing and displaying all forms of geographically referenced data Geographic information systems are used for planning too but in most of the developing nations its application is limited to scale in urban management and governance. However, these have not resulted in drastic reduction in issues faced by urban residents. These have not helped in reducing long commutation distance, unnecessary bottlenecks and congestion, retarded unemployment generation during the time of economic down turns and pollution of air, water and land. There is a need to study these issues with all the complexity in order to modify a city to a smarter city that can overcome these emerging urban developments in a smarter way.

GIS has got the capacity to model the real world of the city in totality. It can incorporate millions of variables and has the capacity to geocode these variables and stimulate for planning, management and development of a city. The hardware platform of computers is in the process of increasing its capacity for GIS computations almost every day. Smart city is knowledge based city that develops extra ordinary capabilities to be self-aware; functions 24 hours and 7 days a week;

communicates, selectively, knowledge in real-time to citizen end users satisfactory way of life with easy public delivery of services, comfortable mobility, conservation of energy, environment and other natural resources and creates energy face to face communities and a vibrant urban economy even at a time of national economic downturns. Traditionally used for mapping master plans, zonal plans and development schemes. Urbanization policy of Udaipur can be based on GIS can lead to broad allocation of land for future urbanization and demarcation of areas for future urbanization. GIS-mapping of non urban areas and eventual integration with urban areas can be achieved through national GIS.

GIS will be useful in analyzing following possibilities in Udaipur city.

1. Designing a smart city in an existing or new town or managing a smart city demand enormous spatially referenced database.
2. GIS provides spatially referenced data base (with latitude, longitude) and non-spatial data (census, TVC, climate data, water supply statistics) and includes operation which supports spatial analysis in GIS.
3. Mobility by income group on an average day and their preferred modes of transport based on distance covered. This can be converted to smart mobility in a smart city design.
1. Smart cities can create smart communities to analyze and find issues for local community.
2. It produces citizens who are in continuing and lifelong education.
Smart Cities can reduce resource consumption, energy and water , reduction in carbon emission
3. Improve utilization of existing infrastructure capacity, improving quality of life
4. Can provide real-time guidance on how best to exploit multiple transportation modalities, make new services available.
5. GIS can help visualizing spatial impacts of situations and migratory patterns and help in planning for urbanization.

Smart City Udaipur: - An Overview

The Vision that has emerged from the strategy and consultative process is - "Eternal Udaipur: World's favourite Lakeside Heritage City. A Smart City has a unique identity, which distinguishes it from all other cities, based on some key aspect: its location or climate; its leading industry, its cultural heritage, its local culture or cuisine, or other factors. This identity allows an easy answer to the question "why in this city and not somewhere else?" A Smart City celebrates and promotes its unique identity and culture. Udaipur would be in future Smart city by developing following infrastructures.

Area Based Development approach plan of Udaipur city is to modernise the civic amenities of the area selected while preserving the lakes and heritage which would tie in with the grand strategic vision of boosting tourism in the city. The key metrics of liveability improvement like 24x7 water and power, 100% sewerage, accessible mobility solutions, inclusivity of basic services, etc. Therefore the selection of area was done as per citizen's wishes to ensure that it provided maximum thrust to tourism while improving the service delivery to maximum number of residents that could serve as a model for the rest of the city.

Digitization of pan city: The idea should be able to leverage the power of IT to enable various efficiency improvements, make governance transparent and processes simpler for people to access public services, particularly those who are deprived of other Smart City benefits by being located outside the area based development proposals

Historic and cultural resources of Udaipur city should be preserved and utilised to some extent but limited resources exist to manage and maintain the immediate surroundings of the heritage monuments. New buildings and areas are created without much thought to how they reflect the identity and culture of the city.

A smart city Udaipur has a robust and resilient economic base and growth strategy that creates large-scale employment and increases opportunities for the majority of its citizens. There are some job opportunities in the Udaipur city like tourism related. There are a high number of jobs in the informal sector. There is a range of job opportunities in the city for many sections of the population. The city attempts to integrate informal economic activities with formal parts of the city and its economy. There are adequate job opportunities for all sections of society.

A Smart City offers schooling and educational opportunities for all children in the city. Healthcare is difficult for citizens to access - demand for healthcare often exceeds hospitals' ability to meet citizen need.

A Smart City has a robust internet network allowing high-speed connections to all offices and dwellings as desired. Essential Government services would be linked with online platforms. Paper intensive interactions with the local Government would be less. Receiving services and response to citizen complaints take a less time. There will be more availability of data to monitor service provide. Some of the public services are provided online and infrastructure for total digitalization. Fast Service will occurs regularly in all sectors of Udaipur city. Responses to citizen inquiries or complaints are would be not delayed. Integration increases between services and billing.

Most of the services are provided online and offline. Data transparency helps monitoring. System and processes to better coordinate between various Government agencies are being

developed. All major services are provided through online and offline platforms. Citizens and officials can access information on accounting and monitor status of projects and programs through data available on online system. Robust data infrastructure system shares information and enhances internal governmental coordination.

Initiative is to upgrade, promote and make user friendly the currently available online platforms (like, official websites, Action Udaipur, e-mitra, etc.) for e-governance, public grievance, dashboard, information dissemination and official coordination.

Recommendations:-

Smart city Udaipur area should be divided into different sizes, such as, large, mid-size, and small and into old heritage city and new urban area for better development of infrastructure, digitization for example, advanced digital cameras and drones can be used to collect data in hard to reach places that people cannot access. Study smart construction like trenchless or no-dig technology, which is less costly, environmentally friendly, and does not interfere with traffic in urban area, sanitation and monitoring. Udaipur city challenges with freight transportation as a problem that must be solved due to its impact on streets, pedestrians, traffic safety, environment and sustainability. Develop new Infrastructure in Udaipur city and implemented new modern technologies like digital display board on road, internet connectivity; identify CBD area for locals, less lake water pollution with more open and green space, Smart governances and e-government are represented by open data that is accessible to citizens are can be a new solutions to renew, replace and repair utilities..

An above all life line of Udaipur that is the lakes and heritage which should be preserve tie in with the grand strategic vision of boosting tourism in the Udaipur city

References

1. Caragliu, A., Del Bo, C., & Nijkamp, P. (2011). Smart cities in Europe. *Journal of Urban Technology*, 18(2), 65–82.
2. Pardo, T., & Taewoo, N. (2011). Conceptualizing smart city with dimensions of technology, people, and institutions. *Proceedings of the 12th Annual International Conference on Digital Government Research* (pp. 282–291). New York: ACM.
3. Hollands, R. G. (2008). Will the real smart city please stand up? *City: Analysis of Urban Trend, Culture, Theory, Policy, Action*, 12(3), 303–320.
4. vom Brocke, J., Simons, A., Niehaves, B., Plattfaut, R., & Cleven, A. (2009). Reconstructing the giant: on the importance of rigour in documenting the literature search process. *ECIS 17th European Conference on Information Systems* (pp. 2–13).
5. Cooper, H. M. (1988). Organizing knowledge syntheses: a taxonomy of literature review.

- Knowledge Society*, 1, 104–126.
6. IBM (2010). *Smarter thinking for a smarter planet*.
 7. Dameri, R. P. (2013). Searching for smart city definition: a comprehensive proposal. *International Journal of Computers & Technology*, 11(5), 2544–2551(Council for Innovative Research).
 8. Su, K., Li, J., & Fu, H. (2011). Smart city and the applications. *IEEE International Conference on Electronics, Communications and Control (ICECC)*, pp. 1028–1031(IEEE Xplore).
 9. Pardo, T. A., & Nam, T. (2011). Smart city as urban innovation: focusing on management, policy and context. *Proceeding of the 5th International Conference on theory and Practice of Electronic Governance* (pp. 185–194). New York: ACM.
 10. Chourabi, H., Nam, T., Walker, S., Gil-Garcia, J. R., Mellouli, S., Nahon, K., Pardo, T. A., & Scholl, H. J. (2012). Understanding smart cities: an integrative framework. *45th Hawaii International Conference on System Sciences* (pp. 2289–2297). IEEE Xplore.
 11. Schuler, D. (2002). Digital cities and digital citizens. In: M. Tanabe, P. van den Besselaar, T. Ishida (Eds.), *Digital cities II: computational and sociological approaches*. LNCS, vol. 2362, (pp. 71–85). Berlin: Springer.
 12. Schuurman, D., Baccarne, B., De Marez, L., & Mechant, P. (2012). Smart ideas for smart cities: investigating crowdsourcing for generating and selecting ideas for ICT innovation in a city context. *Journal of Theoretical and Applied Electronic Commerce Research*, 7(3), 49–62. (Universidad de Talca, Chile).
 13. Schiewe, J., Krek, A., Peters, I., Sternberg, H., & Traub, K. P. (2008) HCU research group “Digital City”: developing and evaluating tools for urban research. In: Ehlers et al. (Eds.) *Digital earth summit on geoinformatics*.
 14. Moutinho, J. L. (2008). Building the information society in Portugal: lessons from the digital cities programm 1998–2000. In van Geenhuizen (Eds.), *Value-added partnering and innovation in a changing world*.
 15. Ricciardi, F. (2010). ICTs in an ageing society: an overview of emerging research streams. In A. D’Atri, M. De Marco, A. M. Braccini, F. Cabiddu (Eds.), *Management of the inter connected world*. ITAIS, vol. 1, (pp. 37–44). Berlin: Springer.
 16. V. Bush, “As we may think,” *The Atlantic Monthly*, pp. 101–108, 1945.
 17. R. R. Widner, “Physical Renewal of the Industrial City,” *Annals of the American Academy of Political and Social Science*, vol. 488, pp. 47–57, Nov. 1986.
 18. Wikipedia contributors, “Adaptive reuse,” Wikipedia, the free encyclopedia. Wikimedia Foundation, Inc., 21-May-2012.
 19. J. K. Brueckner, “Urban Sprawl: Lessons from Urban Economics,” *Brookings-Wharton Papers on Urban Affairs*, vol. 2001, no. 1, pp. 65–97, 2001.
 20. W. H. Frey, “Black In-Migration, White Flight, and the Changing Economic Base of the Central City,” *American Journal of Sociology*, vol. 85, no. 6, pp. 1396–1417, May 1980.

-
- 21 A. Mitra and B. Mehta, "Cities as the Engine of Growth: Evidence from India," J. Urban Plann. Dev., vol. 137, no. 2, pp. 171–183, Jun. 2011.
- 22 A. Downs, "Smart Growth: Why We Discuss It More than We Do It," Journal of the American Planning Association, vol. 71, no. 4, pp. 367–378, 2005.
- 23 S. S. Division, "US Census Bureau The 2012 Statistical Abstract: Historical Statistics." [Online]. Available: http://www.census.gov/compendia/statab/hist_stats.html. [Accessed: 27-May-2012].
- 24 United Nations Department of Economics and Social Affairs, Population Division, Population Estimates and Projections Section, "UN: World Urbanization Prospects, 2011 Revision," United Nations Department of Economics and Social Affairs, 25-Apr-2012. [Online]. Available: http://esa.un.org/unpd/wup/Country-Profiles/country-profiles_1.htm. [Accessed: 27-May-2012].
- 25 C. T. Goodsell, "Reinvent Government or Rediscover It?," Public Administration Review, vol. 53, no. 1, pp. 85–87, Jan. 1993.
- 26 "Reinventing the Business of Government: An Interview with Change Catalyst David Osborne," Harvard Business Review. [Online]. Available: <http://hbr.org/1994/05/reinventing-the-business-of-government-an-interview-with-change-catalyst-david-osborne/ar/pr>. [Accessed: 28-May-2012].
- 27 L. Leydesdorff and M. Deakin, "The Triple-Helix Model of Smart Cities: A Neo-Evolutionary Perspective.," Journal of Urban Technology, vol. 18, no. 2, pp. 53–63, Apr. 2011.
28. Nagar Nigam Udaipur, UIT Udaipur, District Collector Udaipur websites.
-

Right to Privacy in India-An Outlook

Anju

Research Scholar

Faculty of Law,

Maharshi Dayanand University, Rohtak

Abstract

Right to privacy is the most discussed topic in recent years. A definite legal definition on privacy is quite not possible but there are several judgements of Supreme Court of India regarding this topic. Some countries adapted right to privacy as their fundamental rights enshrined in the constitution. In India and America, there is no such provision of right to privacy. Article 21 of Indian constitution states “No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to a procedure established by law” It is interpreted liberally because right to life means not only a mere existence like animals but also live a life with some privacy and dignity so that human can progress towards new era. Alan Westin, Professor of Law in Colombia University in his book ‘Privacy and Freedom’ said “Each individual is continually engaged in a personal adjustment process in which he balances the desire for privacy with the desire for disclosure and communication of himself to others, in light of the environmental conditions and social norms set by the society in which he lives”.

A right to privacy is explicitly stated under Article 12 of the ‘Universal Declaration of Human Rights’:

“No one shall be subjected to arbitrary interference with his privacy, family, home or correspondence, nor to attack upon his honour and reputation. Everyone has the right to the protection of the law against such interference or attacks”.

This study try to analyse right to privacy and to what extent any reasonable restriction can be imposed to this right.

Introduction

Before we know what is right to privacy we need to know what privacy is and what is right to privacy. According to dictionary privacy is the state of being apart from other people or concealed from their view. According to Cambridge English dictionary privacy is the state of being free from unwanted or undue intrusion or disturbance in one's private life or affairs or freedom to be let alone. According to Wikipedia privacy is the ability of an individual or group to seclude themselves, or information about themselves, and thereby express themselves selectively. In 1890 the United States jurists Samuel D. Warren and Louis Brandeis wrote The Right to Privacy, an

article in which they argued for the "right to be let alone", using that phrase as a definition of privacy. Edwin Lawrence Godkin, a famous American journalist wrote in the late 19th century that "nothing is better worthy of legal protection than private life, or, in other words, the right of every man to keep his affairs to himself, and to decide for himself to what extent they shall be the subject of public observation and discussion." Legal scholar Arthur Miller has declared that privacy is "difficult to define because it is exasperatingly vague and evanescent." Legal scholar Lillian BeVier writes, "Privacy is a chameleon-like word, used denotatively to designate a wide range of wildly disparate interests—from confidentiality of personal information to reproductive autonomy—and connotatively to generate goodwill on behalf of whatever interest is being asserted in its name."

In 2008 Daniel J. Solove, eminent Professor of Law in George Washington University law school in his book 'Understanding Privacy' says, "Privacy, however, is a concept in disarray. Nobody can articulate what it means. Currently, privacy is a sweeping concept, encompassing (among other things) freedom of thought, control over one's body, solitude in one's home, control over personal information, freedom from surveillance, protection of one's reputation, and protection from searches and interrogations. Privacy is an issue of profound importance around the world. In nearly every nation, numerous statutes, constitutional rights, and judicial decisions seek to protect privacy". U.S. Supreme Court Justice Louis Brandeis pronounced 'Privacy' as "the most comprehensive of rights and the right most valued by civilized men." According to legal theorist, Robert Post who is dean and Professor of law at Yale Law School describes, "Privacy is a value so complex, so entangled in competing and contradictory dimensions, so engorged with various and distinct meanings, that I sometimes despair whether it can be usefully addressed at all."

Right to Privacy in India

Though right to privacy is not included in our Constitution but Article 21, which says, "No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to a procedure established by law" usually interpreted liberally. Human needs not only food, clothes, house for existence but also several ingredients (Example-right to bathroom, right to have healthy environment, right to have electricity supply, right to have pure and clean drinking water, right to move freely and settle in the territory of India with certain reasonable restriction right to have education at least up to 14 years of age, right to have hygienic food etc). Right to life include right to live a life with privacy and dignity without which the purpose of article 21 will be meaningless. In Shanti Parva of Mahabharata Bhishma in his bed of arrow specially gave advice to would be King Yudhisthir "King should look upon into his subject to ensure that its subjects whoever its class or caste should have right to lead a life with dignity. It will be a step to enter into a peaceful and progressive era. Peace is beautiful and no progress means no civilised society".

UpendraBaxi opined- "Everyday experiences in the Indian setting (from the manifestation of good neighbourliness through constant surveillance by next-door neighbours, to unabated curiosity at other people's illness or personality vicissitudes) suggest otherwise". Right to Privacy is not explicit in the Constitution of India, so it is a subject of judicial interpretation. The judicial interpretations of fundamental right bring it within the purview of fundamental right. In 1954, just four years after the constitution of India came into force Supreme Court had to deal the issue of Privacy in M.P. Sharma v Satish Chandra case. In this case Supreme Court observed that there is no right to privacy located in article 20(3) of the constitution; it did not extinguish a general right to privacy. This arose in the context of searches in a criminal investigation. Supreme Court said in this case:-

"... A power of search and seizure is in any system of jurisprudence an overriding power of the State for the protection of social security and that power is necessarily regulated by law. When the Constitution makers have thought fit not to subject such regulation to constitutional limitations by recognition of a fundamental right to privacy, analogous to the Fourth Amendment, we have no justification to import it, into a totally different fundamental right, by some process of strained construction. Nor is it legitimate to assume that the constitutional protection under Article 20(3) would be defeated by the statutory provisions for searches. It is to be remembered that searches of the kind we are concerned with are under the authority of a Magistrate (excepting in the limited class of cases falling under Section 165 of the Criminal Procedure Code). Therefore, issue of a search warrant is normally the judicial function of the Magistrate. When such judicial function is interposed between the individual and the officer's authority for search, no circumvention thereby of the fundamental right is to be assumed. We are not unaware that in the present set up of the Magistracy in this country, it is not infrequently that the exercise of this judicial function is liable to serious error, as is alleged in the present case. But the existence of scope for such occasional error is no ground to assume circumvention of the constitutional guarantee."

In 1962, while deciding the Kharak Singh vs State of UP, the court examined the power of police surveillance with respect to history-sheeters and it ruled in favour of the police, saying that the right of privacy is not a guaranteed right under the constitution. In fact, Justice Subba Rao in the same case delivered a separate opinion and said-

- "a. The question was, in the absence of any law, what was the fundamental right of the Petitioner that was infringed?
- b. Clauses (a) to (f) of Regulation 236 contained in Chapter 22 of the UP Police Regulations were measures adopted for the purpose of supervision or close observation of his movements and therefore parts of surveillance. The question was whether such a surveillance infringed any of the Petitioner's fundamental rights.

- c. Even though fundamental rights may be distinct, they could yet be overlapping. The fundamental right of life and personal liberties have many attributes and some of them are part of Article 19.
- d. If an action violated Article 19(1) of the Constitution, it could be argued that there was a law to sustain that action “but that cannot be a complete answer unless the said law satisfies the test laid down in Article 19(2) so far as the attributes covered by Article 19(1) are concerned”.
- e. The expression ‘life’ in Article 21 meant more than mere ‘animal existence’. The expression ‘liberty’ is given a very wide meaning in the USA. It takes in all the freedoms.” In the same Kharak Singh case Justice Rajagopala Ayyangar observed:-“The right of the people to be secure in their persons, houses, papers, and effects, against unreasonable searches and seizures, shall not be violated; and no warrants shall issue but upon probable cause, supported by oath or affirmation, and particularly describing the place to be searched, and the persons or things to be seized.....We feel unable to hold that the term [personal liberty] was intended to bear only this narrow interpretation but on the other hand consider that "personal liberty" is used in the Article as a compendious term to include within itself all the varieties of rights which go to make up the "personal liberties" of man other than those dealt with in the several clauses of Art. 19 (1).”Majority of the Hon’ble Justice held that-“The right of privacy is not a guaranteed right under our Constitution, and therefore the attempt to ascertain the movements of an individual is merely a manner in which privacy is invaded and is not an infringement of a fundamental right guaranteed in Part III...”

In A. K. Gopalan case, liberty was described to mean liberty concerning the person or body of the individual. It was held: - “In my opinion, this line of approach is not proper and+4 indeed is misleading. As regards the American Constitution its general structure is noticed in these words in The Government of the United States by Munro (5th Edn.) at p. 53: “The architects of 1787 built only the basement. Their descendants have kept adding walls and windows, wings and gables, pillars and porches to make a rambling structure which is not yet finished. Or, to change the metaphor, it has a fabric which, to use the words of James Russell Lowell, is still being ‘woven on the roaring loom of time’. That is what the framers of the original Constitution intended it to be. Never was it in their mind to work out a final scheme for the Government of the country and stereotype it for all time. They sought merely to provide a starting point”. The same aspect is emphasized in Professor Willis's book on Constitutional Law and Cooley's Constitutional Limitations. In contrast to the American Constitution, the Indian Constitution is a very detailed one. The Constitution itself provides in minute details the legislative powers of Parliament and the State

Legislatures. The same feature is noticeable in the case of the judiciary, finance, trade, commerce and services. It is thus quite detailed and the whole of it has to be read with the same sanctity, without giving undue weight to Part III or Article 246, except to the extent one is legitimately and clearly limited by the other.” Subba Rao, J. Observed that the right to personal liberty takes in not only a right to be free from restrictions placed on his movement but also free from encroachments on his private life. He further continues to say that while it is true that our Constitution does not expressly declare right to privacy as a fundamental right, but that said right is an essential ingredient of personal liberty. Every democratic country sanctifies domestic life; it is expected to give him/her rest, physical happiness, peace of mind and security. In the last resort, a person’s house where he lives with his family is ‘his castle’. He observed- “.... Indeed, nothing is more deleterious to a man's physical happiness and health than a calculated interference with his privacy. We would, therefore, define the right of personal liberty in Article 21 as a right of an individual to be free from restrictions or encroachments on his person, whether those restrictions or encroachments are directly imposed or indirectly brought about by calculated measures. It so understood, all the acts of surveillance under Regulation 236 infringe the fundamental right of the petitioner under Article 21 of the Constitution.”

Subba Rao, J. also noticed that privacy was a facet of Article 19(1)(d). It was held:—“The freedom of movement in clause (d) therefore must be a movement in a free country i.e. in a country where he can do whatever he likes, speak to whomsoever he wants, meet people of his own choice without any apprehension, subject of course to the law of social control. The petitioner under the shadow of surveillance is certainly deprived of this freedom. He can move physically, but he cannot do so freely, for all his activities are watched and noted. The shroud of surveillance cast upon him perforce engender inhibitions in him and he cannot act freely as he would like to do. We would, therefore, hold that the entire Regulation 236 offends also Article 19(1)(d) of the Constitution.”

Eleven years later, in the *RM Malkani vs State of Maharashtra* AIR (1973) SC 157 case, wherein the court upheld the phone tapping of a guilty person, with the word ‘guilty’ putting the case in favour of the government. Supreme court held that the telephonic conversation of an innocent citizen will be protected by the court against the wrongful interference of tapping the conversation but this protection does not stand for the guilty citizen against the efforts of the police to vindicate the law and prevent corruption of the public servant.

While hearing the *Gobind v. State of Madhya Pradesh* (1975) 2 SCC 148 at 154 Supreme Court noticed the decision of *Griswold v. Connecticut*, 381 U.S. 479 at 510 and noted that: “In an opinion by Douglas, J., expressing view of five members of the Court, it was held that the statute was invalid as an unconstitutional invasion of the right of privacy of married persons. He said that

the right of freedom of speech press includes not only the right to utter or to print but also the right to distribute, the right to receive, the right to read and that without those peripheral rights the specific right would be less secure and that likewise, the other specific guarantees in the Bill of Rights have penumbras, formed by emanations from those guarantees that help give them life and substance, that the various guarantees create zones of privacy, and that protection against all governmental invasion "of the sanctity of a man's home and the privacies of life" was fundamental. He further said that the inquiry is whether a right involved "is of such a character that it cannot be denied without violating those 'fundamental principles of liberty and justice which lie at the base of all our civil and political institutions' and that 'privacy is a fundamental personal right, emanating from the totality of the Constitutional scheme under which we (Americans) live'."

Mathew J. realized that the law relating to privacy was still in a state of evolution which is why he clearly noted that:

"...28. The right to privacy in any event will necessarily have to go through a process of case-by-case development."

Hon'ble Justice Krishna Iyer said: - "A thorny problem debated recurrently at the bar, turning on Article 19, demands some juristic response although avoidance of overlap persuades me to drop all other questions canvassed before us. The Gopalan verdict, with the cocooning of Article 22 into a self-contained code, has suffered suppression at the hands of R.C. Cooper [RustomCavasjee Cooper v. Union of India, (1970) 3 SCR 530: (1970) 1 SCC 248] . By way of aside, the fluctuating fortunes of fundamental rights, when the proletarian and the proprietarian have asserted them in Court, partially provoke sociological research and hesitantly project the Cardozo thesis of sub-conscious forces in judicial noesis when the cycloramic review starts from Gopalan, moves on to In re Kerala Education Bill [1959 SCR 995 : AIR 1958 SC 956] and then on to All-India Bank Employees' Association [All-India Bank Employees' Association v. National Industrial Tribunal, (1962) 3 SCR 269 : AIR 1962 SC 171 : 21 FJR 63 : (1961) 2 LLJ 385] , next to Sakal Papers [Sakal Papers (P) Ltd. v. Union of India, (1962) 3 SCR 842 : AIR 1962 SC 305 : (1962) 2 SCJ 400] , crowning in Cooper and followed by Bennett Coleman [Bennett Coleman & Co. v. Union of India, (1973) 2 SCR 757 : (1972) 2 SCC 788] and ShambhuNath Sarkar [ShambhuNath Sarkar v. State of W.B., (1973) 1 SCC 856 : 1973 SCC (Cri) 618] . Be that as it may, the law is now settled, as I apprehend it, that no article in Part III is an island but part of a continent, and the conspectus of the whole part gives the direction and correction needed for interpretation of these basic provisions. Man is not dissectible into separate limbs and, likewise, cardinal rights in an organic constitution, which make man human have a synthesis. The proposition is indubitable that Article 21 does not, in a given situation, exclude Article 19 if both rights are breached." In 1997 in

the matter of PUCCL vs Union of India, commonly known as telephone tapping cases, the SC unequivocally held that individuals had a privacy interest in the content of their telephone communications. Making just exceptions to the complete cover, it said that rigorous standards are required for law that derogates privacy and that mechanism used should be targeted, based on specific suspicion of identifiable individuals and be the only means possible to fulfil the government's goals of public safety and crime prevention. Thus, through a series of cases, it can be observed that the right to privacy was being recognised, but its exceptions were also given due place.

In Rayala M. Bhuvaneshwari v. Nagaphanender Rayala AIR (2008) AP 98 case it was held that recording the conversation of wife by husband without the knowledge will also amount to infringement of her right to privacy as stated Through these cases and the judgment given by the court it is clear that right to privacy is not only a part of constitution but it also contains different aspects that deals with different types of privacies that an individual have irrespective of the status in society or relation with the person who's right has been violated. When tapping of telephonic conversation and reproductive choice can be considered as right to privacy then how giving our biometric details cannot be considered as infringement of right to privacy. The privacy based arguments have been used to support the conservative claims that neither the government nor the fellow citizens can interfere with the traditional practices merely for the sake of progressive ideas about marriage, family, social life, or citizenship. Supreme court took the ruling of State v. Rhodes, 61 N.C. 453, 459 (1868) case where it was held that "We will not inflict upon society the greater evil of raising the curtain upon domestic privacy, to punish the lesser evil of trifling violence".

In the Selvi vs State of Karnataka, which was decided in 2010, the SC gave strength to Article 20(3), that is, Right against Self-Incrimination. Closely aligned with privacy, the right to remain silent was found to be derogated by usage of narco-analysis as evidence in trials. Accordingly, the same were disalloo "In M.P. Sharma [AIR 1954 SC 300 : 1954 Cri LJ 865 : 1954 SCR 1077] it had been noted that the Indian Constitution did not explicitly include a "right to privacy" in a manner akin to the Fourth Amendment of the US Constitution. In that case, this distinction was one of the reasons for upholding the validity of search warrants issued for documents required to investigate charges of misappropriation and embezzlement.... the right of privacy is not a guaranteed right under our Constitution and therefore the attempt to ascertain the movements of an individual which is merely a manner in which privacy is invaded is not an infringement of a fundamental right guaranteed by Part III."

In the case of Mohammad. Latif Bhat v. Shamima AIR (2012) J&K 10 (137) it is stated that, the right to privacy is not offended so as to attract the immunity under article 21 of the

constitution where a strong prima facie case existed warranting the direction for medical examination of the petitioner for the determination of impotency.

In B.Madhan v. N.S. Shanthakumari, AIR (2015) Mad 78 case Supreme Court held that “Article 21 relates to protection to life and liberty which enables the wife to live with human dignity. The medical test conducted to decide whether the marriage has not been consummated owing to the impotence of the husband could not be against his privacy”.

On August 11, 2015, while constitutional challenges to the Aadhaar scheme were being made before a three-judge bench, the Union of India argued that the main ground of challenge – the right to privacy – could not be raised, because the Indian Constitution did not guarantee a fundamental right to privacy. Supreme Court held:-

wed. Observation of the Court is herein below:- “We are of the opinion that the cases on hand raise far reaching questions of importance involving interpretation of the Constitution. What is at stake is the amplitude of the fundamental rights including that precious and inalienable right under Article 21. If the observations made in M.P. Sharma (supra) and Kharak Singh (supra) are to be read literally and accepted as the law of this country, the fundamental rights guaranteed under the Constitution of India and more particularly right to liberty under Article 21 would be denuded of vigour and vitality. At the same time, we are also of the opinion that the institutional integrity and judicial discipline require that pronouncement made by larger Benches of this Court cannot be ignored by the smaller Benches without appropriately explaining the reasons for not following the pronouncements made by such larger Benches. With due respect to all the learned Judges who rendered the subsequent judgments – where right to privacy is asserted or referred to their Lordships concern for the liberty of human beings, we are of the humble opinion that there appears to be certain amount of apparent unresolved contradiction in the law declared by this Court. Therefore, in our opinion to give a quietus to the kind of controversy raised in this batch of cases once for all, it is better that ratio decidendi of M.P. Sharma (supra) and Kharak Singh (supra) is scrutinized and the jurisprudential correctness of the subsequent decisions of this Court where the right to privacy is either asserted or referred be examined and authoritatively decided by a Bench of appropriate strength.”

On 25th July, 2017 nine judge constitutional bench (Chief Justice JS Khehar, J Chelameswar, SA Bobde, RK Agrawal, Rohinton Fali Nariman, Abhay Manohar Sapre, DY Chandrachud, Sanjay Kishan Kaul and S Abdul Nazeer) was constituted to deal with the most contentious issue of this year whether right to privacy is a fundamental right or not. On July 26, the Centre told the apex court that there is a fundamental right to privacy, but is a 'wholly qualified right'. Attorney General, KK Venugopal told the apex court that "privacy, as a fundamental right,

could have been mentioned in Article 21, but has been omitted. Right to life transcends right to privacy. In special circumstances, government can interfere in a matter that comes under a wholly qualified right. An absolute right cannot be reduced or amended.” Additional Solicitor General of India Tushar Mehta told the constitutional bench-“Nothing is private in the online era” Senior advocate Rakesh Dwivedi, appearing for Gujarat government, said that some aspects of privacy may be traced to various fundamental rights but providing basic personal information to authorities was needed to bring more transparency in the present technological era. Senior Advocate Kapil Sibal, representing states not ruled by the Bharatiya Janata Party — Karnataka, West Bengal, Punjab, Himachal Pradesh, and Puducherry — had backed the constitutionality of the right to privacy. He had told the court that these states supported the contention that the right to privacy be held as fundamental right in the age of technological advancements.

On August 1, 2017 the apex court had said that there has to be "overarching" guidelines to protect an individual's private information in public domain to ensure that it was used only for an intended purpose. The Bench also rejected plea of a Gujarat government lawyer that misuse of personal information could be dealt with on a "case-to-case basis" and said an all-embracing guideline was needed keeping in mind the size of the population. The bench also referred to the fact that India was a signatory of a 1948 international convention, which recognised privacy as a human right. The Supreme Court reserved its judgment on whether the right to privacy can be considered a fundamental right under the Indian Constitution. The matter is being heard by the Constitution Bench in the wake of challenge to the Aadhaar scheme on the grounds of it being violative of the right to privacy. Right to privacy and my opinion from childhood days we used to learn some privacy issue from our parents. Like take bath and toilet is a private thing. In our school days we used to tell our friends after sharing any secret and request them not to disclose to anyone. I feel that what is private and privacy we used to learn step by step in our childhood. It comes to us as natural. Whoever for the purpose hurting anyone's privacy indulged in any activities is regarded as immoral, disgraceful and illegal. Eve teasing, Trying to outrage any women's modesty, Stalking (After amendment in 2013 stalking in internet also included in this list), Blackmailing or using force or threat to share any private moment in public, Any kind of sexual or psychological harassment of woman, Forcing any children to shoot pornography are one of those crime which is related to aggressive attack on privacy. It may be against man, woman, children, old age humans. Previously said offences are included in Indian Penal Code, 1872 and Information Technology Act, 2000. Usually this offences or social evil is the burning problem from time immemorial. What is private thing is easily known by us naturally from childhood. Though right to privacy is not mentioned in our constitution but after carefully observation to the definition of previously

mentioned offence enshrined in the penal statutes of India it can be presumed that our penal statutes recognises right to privacy. The victims came to the court with this hope that Court will ensure punishment for those who committed a sin of breaching his or her privacy. Before some year back I was afraid to use any online service. I felt that if my bank account number or pin or any important bank documents stole by any third person while transaction that will be a disaster. All the bank documents and bank details are private and it should be kept secret by bank and me. This is the era of advance technology and internet. Everything is possible in Internet. In 28th June,2017 global cyber attack occurred. Cyber hacker stole million secret and private document and information of government, business organisation and private person. It counted as loss of trillion dollars. That means private documents are the backbone of everyone. Privacy not only means secret relating to human body or document. 'Privacy' should be interpreted more broadly. Any kind of discovery is either registered or patented. Coco Cola, KFC, McDonald, PepsiCo spend trillions of dollar for kept private its secret formula because it is the reason of their brilliant success in business. Patent law deals with protection of any discovery or government or its organisation against any third party, thief, and intruder whomever it is who tries to stole the original will protect invention, which is original if patented or registered it. Therefore, it means patented works if it is original enjoys protection of government to maintain its secrecy. Though it may be sound funny but my mother used to tell me that in my school final days no parents of my friend wants to tell the name of the coaching centre and tutors name. I do not know why they wants to keep it as secret. I feel that the knowledge of privacy usually came to us from childhood and right to privacy is a natural right derived from and against society. Irrespective of whether this right is enshrined in any statute or constitution from the first day of civilisation human enjoys right to privacy. Previously we were apes and roamed naked. After the use of cloth known to humans they used to cover their private parts with it because they can sense privacy. It is immoral and will attract the punishment from Indian Penal Code if any male tries to watch any female bathing or changing dress because it is not only the guilty of outraging women's modesty but it is also an aggressive act against her privacy. Aadhar card contains the thumb impression and all private details and usually it is , retina s linked with mobile number, bank account, other important government, and private institutions. Now Aadhar card is an essential document to get the all important government id, documents including birth/death certificate. If any cyber attack is attempted to steal information of Aadhar it will hamper public and create anarchy and hazard. So right to privacy lies here. Government is taking appropriate measure to protect all the information of public and should take necessary step and update its system time to time to protect the citizen's precious information.

Conclusion

Now the question is right to privacy is absolute right or not. In my research I was trying to find answer to it. Famous British politician Lord Acton said-“ Power tends to corrupt, and absolute power corrupts absolutely”. Definition of privacy cannot be made into a straight jacket formula. It is not possible to get the proper definition of privacy because it is the outlook of different human. For better administration any government needs reasonable but absolute power to formulate its policy. For better administration of justice specially to punish any offender whose offence was against any woman, children, old age and country right to privacy demands violation of this right. For prevention of any terrorism, illegal trafficking, drug peddling and distribution there cannot be right to privacy. If for public health, public welfare purpose demands any violation of privacy I think it is permissible act. But for the sake of public welfare it should not become the excuse of executives. If it is found that the act of the executive is unjust, unreasonable, unfair and arbitrary then there should be proper procedure to deal with it to prevent the violation of the right to privacy. I feel to maintain equilibrium our constitution framers did not include separate right to privacy in the chapter of fundamental rights but encouraged broad can interpretation of right to life and personal liberty. Supreme Court is the interpreter of the Constitution and guarantor and protector of the fundamental rights enshrined in the constitution. Supreme Court and High Court of all states has Writ Jurisdiction which ensures- “Justice for all, Justice to all.” I want to conclude this research work by quoting the word spoken by Pt. Nehru, First Prime Minister of our country“...There should be a certain flexibility. If you make anything rigid and permanent, you stop the Nation's growth, the growth of a living, vital organic people.”

References

- 1) <http://www.india.com>
- 2) <http://zeenews.india>
- 3) <http://scholarship.law.gwu.edu>
- 4) <http://www.legalservicesindia.com>
- 5) <http://www.governancenow.com>

Books

- 1) Understanding Privacy by Daniel J. Solove harvard university press Cambridge, Massachusetts London, England 2008
- 2) "The Privacy Torts(December 19, 2000)
- 3) Warren and Brandeis, "The Right to Privacy", 4 Harvard Law Review 193 (1890)
- 4) Yael Onn, et al., Privacy in the Digital Environment , Haifa Center of Law & Technology, (2005) pp. 1-12

- 5) Westin, A. (1968). Privacy and Freedom (Fifth ed.). New York.:Atheneum.
 - 6) Flaherty, D. (1989). Protecting privacy in surveillance societies: The federal republic of Germany,Sweden, France, Canada, and the United States. Chapel Hill, U.S.: The University of North Carolina Press.
-

महिला शिक्षा में ही निहित है महिला सशक्तिकरण

डॉ. (श्रीमती) मोहना सुशांत पंडित

विभागाध्यक्ष (शिक्षा विभाग)

भिलाई महिला महाविद्यालय,

हॉस्पिटल सेक्टर भिलाई (छत्तीसगढ़)

सारांश

महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में शिक्षा की अहम भूमिका है। यह महिलाओं के सर्वांगीण विकास के लिये प्रथम एवं मूलभूत साधन है क्योंकि महिला के शिक्षित होने पर जागरूकता, चेतना आएगी, अधिकारों की सजगता होगी, रुढ़ियां, कुरीतियां, कुप्रथाओं का अंधेरा छटेगा और वैचारिक क्रान्ति का पुंज फूट निकलेगा। शिक्षा के माध्यम से महिलाएं समाज में सशक्त, समान एवं महत्वपूर्ण भूमिका दर्ज करा सकती हैं। शिक्षित महिलाएं न सिर्फ स्वयं आत्मनिर्भर एवं लाभान्वित होती हैं अपितु भावी पीढ़ियां भी लाभान्वित होती हैं। महिला सशक्तिकरण के लिये निडरता, सम्मान और जागरूकता ऐसे तीन प्रमुख गुण हैं जिनका किसी भी महिला में होना अत्यंत आवश्यक है। महिलाओं में इन तीनों ही गुणों का विकास मात्र शिक्षा के माध्यम से ही संभव है क्योंकि शिक्षा सम्पूर्ण अज्ञानता रूपी अंधकार को दूर करके विकास और उन्नति के मार्ग खोलती है। देवियों को पूजने वाले हमारे देश की यह विडंबना ही कही जायेगी कि इसके समक्ष आज का यक्ष प्रश्न यह है कि देश की महिलाओं तथा बालिकाओं की गरिमा तथा सम्मान की रक्षा करते हुए उन्हें किस प्रकार सुरक्षित वातावरण में शिक्षा उपलब्ध कराई जाये ताकि वे सशक्त हों। कुछ गलत विचारधारा रखने वाले चुनिंदा लोगों की वजह से कई महिलाओं के बाहर निकलने के दरवाजे बंद हो जाते हैं। जरूरत है बंद दरवाजों को खोलने की। रोशनी को अंदर आने देने की। प्रकाश में अपना प्रतिबिम्ब देखने की। उसे सुधारने की, निहारने की और निखारने की।

भूमिका

सशक्तिकरण से तात्पर्य है शक्तिशाली बनाना, हमारे भारतीय समाज में महिलायें प्रारंभ से ही कन्या वध, भ्रूण हत्या, सतीप्रथा, दासी प्रथा, बाल विवाह आदि हमारे समाज की कुछ जैसी कुरीतियों एवं कुप्रथाओं की शिकार होती रही हैं। महिला सशक्तिकरण के लिये निडरता, सम्मान और जागरूकता ऐसे तीन प्रमुख गुण हैं जिनका किसी भी महिला में होना अत्यंत आवश्यक है। महिलाओं में इन तीनों ही गुणों का विकास मात्र शिक्षा के माध्यम से ही संभव है क्योंकि शिक्षा सम्पूर्ण अज्ञानता रूपी अंधकार को दूर करके विकास और उन्नति के मार्ग खोलती है। शिक्षित महिला ही भविष्य में निराशा एवं शोषण के अंधकार से निकलकर परिवार, समाज तथा राष्ट्र के विकास एवं उत्थान में अपना दायित्व सही अर्थों में स्थापित कर पाएगी। हिन्दू धर्मग्रन्थों में महिलाओं को दिव्यता, शुद्धता एवं पवित्रता का प्रतीक माना गया है। हमारे देश में मां दुर्गा को शक्ति का प्रतीक, मां सरस्वती को विद्या, मां पार्वती को ऊर्जा तथा मां लक्ष्मी को वैभव की देवियों के रूप में पूजा जाता है और उन्हें प्रसन्न करने उनकी कठिन से कठिन आराधना की जाती है। प्राचीन समय में भारतीय ऋषियों ने अथर्ववेद में जब वर्णन किया था कि “माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या” अर्थात् भूमि मेरी माता है और हम इस धरा के पुत्र हैं तभी संपूर्ण विश्व में नारी-महिमा का उद्घोष हो गया था। देवियों को पूजने वाले हमारे देश की

यह विडंबना ही कही जायेगी कि इसके समक्ष आज का यक्ष प्रश्न यह है कि देश की महिलाओं तथा बालिकाओं की गरिमा तथा सम्मान की रक्षा करते हुए उन्हें किस प्रकार सुरक्षित वातावरण में शिक्षा उपलब्ध कराई जाये ताकि वे सशक्त हों।

महिला सशक्तिकरण

महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य समाज को महिलाओं के सम्मान हेतु जागरूक करना है। “यह एक जागृति है” कि महिला और पुरुष दोनों इंसान हैं और दोनों समान अधिकार रखते हैं समाज में। इस जागृति के महत्व को समाज की महिलाओं एवं पुरुषों दोनों ही वर्गों को स्वीकार करना होगा। बहुत से लोग सशक्तिकरण से यह समझते हैं कि महिला को कमजोर से शक्तिशाली बनाना, जबकि यह विचारधारा ही गलत है। सशक्तिकरण का अर्थ है कि महिलाओं का जो मूलभूत अधिकार है यानि सामाजिक व्यवस्था में बराबरी की हिस्सेदारी वह प्रत्येक महिला को मिलनी चाहिये। महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में शिक्षा की अहम भूमिका है। यह महिलाओं के सर्वांगीण विकास के लिये प्रथम एवं मूलभूत साधन है क्योंकि महिला के शिक्षित होने पर जागरूकता, चेतना आयेगी, अधिकारों की सजगता होगी, रुढ़ियां, कुरीतियां, कुप्रथाओं का अधेरा छंटेगा और वैचारिक क्रांति का पुंज फूट निकलेगा। शिक्षा के माध्यम से महिलाएं समाज में सशक्त, समान एवं महत्वपूर्ण भूमिका दर्ज करा सकती हैं। शिक्षित महिलाएं न सिर्फ स्वयं आत्मनिर्भर एवं लाभान्वित होती हैं अपितु भावी पीढ़ियाँ भी लाभान्वित होती हैं। शिक्षा एक ऐसी संपत्ति है जिसे न छीना जा सकता है और जिसका बंटवारा किया जा सकता है। दूसरी ओर यह ऐसा हथियार भी है जिसके बल पर कोई भी युद्ध लड़ा जा सकता है, अब चाहे वह शोषण, असमानता, अन्याय, अनाचार के विरुद्ध ही क्यों न हो। नेपोलियन ने कहा था कि आप मुझे एक योग्य माता दे दो, मैं आपको एक योग्य राष्ट्र दे दूंगा। नेपोलियन का यह कथन समाज में माता (महिला) के महत्व को दर्शाता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने स्त्री शिक्षा की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए कहा था कि यदि आप एक पुरुष को शिक्षित करते हैं तो आप एक व्यक्ति विशेष को शिक्षित कर रहे हो परन्तु यदि आप एक महिला को शिक्षित कर रहे हो तो आप एक संपूर्ण परिवार को शिक्षित कर रहे हो। महिला सशक्तिकरण, भारत माता का सशक्तिकरण है। विगत दो दशकों में महिला सशक्तिकरण हेतु महिला शिक्षा को बढ़ावा देने वैश्विक स्तर पर किये जा रहे प्रयासों में गति आई है। महिलाओं को बराबरी का दर्जा प्रदान करने तथा उसे मानसिक स्तर पर मजबूत तथा आत्मनिर्भर बनाने के लिये शिक्षा को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जा रहा है। किये जा रहे प्रयासों का यह परिणाम सामने आया है कि आज शिक्षा, प्रौद्योगिकी, विज्ञान, व्यापार, लेखन, राजनीति, सेना, खेलकूद आदि कई ऐसे क्षेत्र हैं जहां महिलायें अपने उत्कृष्ट प्रदर्शन से पुरुषों से बेहतर साबित हो रही हैं। महिला शिक्षा के क्षेत्र में किया गया कार्य आज महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक उल्लेखनीय कदम साबित हो रहा है।

भारत में महिला शिक्षा की स्थिति

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात वर्ष 1951 में महिलाओं की शिक्षा का प्रतिशत 8.86 प्रतिशत था जबकि वर्ष 2001 में यह प्रतिशत 54.16 तथा वर्ष 2011 की जनसंख्या के प्राप्त प्रारंभिक आंकड़ों में इसका प्रतिशत 65.46 प्रतिशत पाया गया है। छत्तीसगढ़ राज्य के परिपेक्ष्य में महिलाओं की साक्षरता के संबंध में

2001 में यह आंकड़े 52.40 प्रतिशत तथा 2011 में 60.5 प्रतिशत पाये गये। वैश्विक रूप से यदि हम लिंगानुपात की स्थिति देखें तो वैश्विक लिंगानुपात 1000 पुरुषों पर स्त्रियों का औसत 990 है, रूस में सर्वाधिक 1140, जापान एवं फ्रांस में 1041 तथा अमेरिका में 1029 है। भारत में लिंगानुपात का आंकड़ा अत्यंत दयनीय 940 है। हमारे देश के राज्यों में केरल में यह सर्वाधिक 1085 तथा हरियाणा में सबसे कम 861 है। हमारे छत्तीसगढ़ में यह आंकड़ा 991 का है। अब यदि हम महिलाओं पर होनेवाली हिंसा और अत्याचार के आंकड़ों को देखें तो इनमें अभी तक कोई विशेष कमी नहीं आई है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की वर्तमान रिपोर्ट के अनुसार भारत में 15 से 49 वर्ष की 70 फीसदी महिलाएं किसी न किसी रूप में कभी न कभी हिंसा का शिकार होती हैं। इनमें कामकाजी व गृहिणियाँ भी शामिल हैं। इस दिशा में अभी और काम किया जाना बाकी है।

भारत में 0 से 6 वर्ष के बच्चों का लिंगानुपात वर्ष 2001 में 1000 बालकों पर 927 बालिकाओं का था जो कि वर्ष 2011 में गिरकर 1000 बालकों पर 918 बालिकाओं का हो गया। यह एक बहुत ही चिंता का विषय था। आनेवाले समय में इससे उत्पन्न होने वाली स्थिति को ध्यान में रखते हुए भारत में केन्द्र सरकार ने 22 जनवरी, 2015 को केन्द्र सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय के सहयोग से कन्या भ्रूण हत्या, बेटियों की जीवन सुरक्षा तथा इन्हें उचित शिक्षण दिलाने के उद्देश्य से “बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ” अभियान की शुरुआत इन समस्याओं से भारत के सबसे ज्यादा प्रभावित क्षेत्र पानीपत, हरियाणा से की। सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न योजनाओं के माध्यम से उठाये गये कदमों से इन आंकड़ों में भले ही बढ़ोतरी हुई है परंतु आज भी हम विश्व के अन्य विकसित देशों की तुलना में पीछे हैं।

महिलायें और रोजगार

रोजगार के क्षेत्र में भी महिलाएं अभी तक पिछड़ी हुई थीं परन्तु धीरे-धीरे इस दिशा में निरंतर संख्या बढ़ रही है। भारतीय राज्यों में महिलाओं को सरकारी सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान अलग-अलग है और कुछ सेवाओं के लिये, केन्द्र की सेवाओं के लिये भी प्रावधान किये गये हैं। सर्विस सेक्टर में निजी सेवाओं में जिनमें होटल इंडस्ट्री, एयर होस्टेस, रिसेप्शनिस्ट, मॉडलिंग आदि क्षेत्रों में महिलाओं का वर्चस्व बना हुआ है। विश्वभर में सबसे ज्यादा वर्किंग वुमन्स भारत में हैं, इसमें अब आईटी इंडस्ट्रीज में सर्वाधिक महिलायें जा रही हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार 30 प्रतिशत महिलायें आईटी इंडस्ट्रीज में तथा 10 प्रतिशत महिलायें सीनियर मैनेजमेंट में कार्यरत हैं। भारत में किये गये एक अध्ययन से यह पता चलता है कि ऊँचे पदों पर महिलाओं की संख्या बहुत कम है। यह अध्ययन एक विख्यात रिसर्च एजेंसी द्वारा हाल ही में विभिन्न उद्योगों की 200 से अधिक कंपनियों में किया गया था। भारत के कॉलेजों में आर्ट्स/कॉमर्स/इंजीनियरिंग संकाय में 40 प्रतिशत स्नातक महिलायें हैं और अध्ययन में यह पता चला कि कंपनियां महिला कर्मचारियों की भर्ती को व्यापारिक लाभ के रूप में देखती हैं। आईटी/आईटीईएस क्षेत्र में यह विशेष रूप से किया जाता है, जहां भर्ती के स्तर पर 30 प्रतिशत महिलाओं को चुना जाता है। रिटेल जॉब्स में भर्ती स्तर पर भी महिलाओं को वरीयता दी जाती है लेकिन उत्पादन एवं सेल्स में महिलाओं का प्रतिशत 10 के आसपास है। मध्यम स्तर के प्रबंधन में महिलाओं का अनुपात कम हो जाता है (6 से 10 प्रतिशत आईटी क्षेत्र में) और वरिष्ठ प्रबंधन में तो यह न्यूनतम

हो जाता है (3 प्रतिशत से भी कम)। निदेशक बोर्ड स्तर पर तो महिलाओं की मौजूदगी एक प्रतिशत से भी कम है। अध्ययन में 50 प्रतिशत से भी अधिक सीईओ का कहना था कि अगले 5 वर्षों में महिलाओं के वरिष्ठ प्रबंधन तक पहुंचने की उम्मीद की जा रही है।

उपसंहार

भारत में महिलाओं ने माता, पत्नि, बहन, बेटा तथा एक दोस्त के रूप में अपनी भूमिका से समाज में जो अपना योगदान दिया है वह अतुलनीय है। “यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः” अर्थात् जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं। यहां नारी को देवी के रूप में देखा गया है। भारत में स्त्रियों की दशा सदैव एक जैसी नहीं रही अपितु समय एवं काल के साथ परिवर्तन आते गये। आज अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर भारत की उन सभी महिलाओं का स्मरण तथा उनके जज़्बे को सलाम करना अत्यंत आवश्यक है जिनकी वजह से विश्व के मानचित्र में भारत को उसकी पहचान तथा संपूर्ण मानव समाज को एक नई दिशा मिली। महिलाओं से जुड़े हुए मुद्दों पर आज के बदलते हुए परिवेश में विचार कर और अधिक जागरूकता लाने की आवश्यकता है। आज प्रत्येक शिक्षित महिला का प्रथम कर्तव्य है कि वह यह संकल्प ले कि अपने ज्ञान का उपयोग समाज की अन्य महिलाओं के मध्य शिक्षा का अलख जगाने में करेंगी। इसी कड़ी में एक और कदम है आत्म निर्भरता। आर्थिक आत्मनिर्भरता। महिलाओं को बचपन से यह सीख दी जाती है कि खाना बनाना जरूरी है। आज की आवश्यकता यह है कि उन्हें यह भी सिखाया जाये कि कमाना भी जरूरी है। आर्थिक रूप से सक्षम होना भी जरूरी है। परिवार की जिम्मेदारियों के लिये नहीं वरन् अपने लिए। यह बात सच है कि पैसे से खुशियां नहीं आतीं, पर इससे ऐसा बहुत कुछ जुड़ा होता है जो कि खुशियां लाता है। इसलिये शिक्षा के अंतर्गत किताबी ज्ञान के अलावा व्यवहारिक ज्ञान देकर उनके कौशल को उपयोग में लाया जाये जो कि उन्हें अपने पैरों पर खड़े होने में मदद करे तो उनका यह कौशल जीवनरेखा का कार्य कर सकता है। यह कदम उन्हें जीवन में आगे बढ़ने की गति देगा। दिशा देगा। आत्माभिमान देगा। आत्मविश्वास देगा। इससे वो दबेगी नहीं। डरेगी नहीं।

समाज में शोषित महिलाओं को भी अपनी स्थिति में सुधार तथा दृढ़ इच्छाशक्ति एवं आत्मविश्वास जागृत करने हेतु स्वयं में जज्बा जगाना आज की आवश्यकता है जिससे उनका शिक्षा के माध्यम से प्राप्त ज्ञान तथा कौशल महिला सशक्तिकरण के लिये सार्थक हो।

संदर्भ :

1. जनसंख्या 2011 प्रारंभिक आंकड़े।
2. यूनिसेफ रिपोर्ट।
3. योजना : जनवरी 2008।
4. समाज प्रबोधन : जनवरी-मार्च 2009।
5. जेनिथ इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च।
- 6- विभिन्न वेबसाइट्स।

डूंगरपुर जिले की जनसंख्या वृद्धि प्रतिरूप का सामाजिक-आर्थिक विकास पर प्रभाव

डॉ. पंकज रावल

सहायक प्राध्यापक (भुगोल)

JRN, R.V. UDAIPUR

डूंगरपुर जिले की जनसंख्या का कालिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसमें 1931 से 2011 की अवधि में जिले (डूंगरपुर) में सकल तथा प्रतिशत दशकीय वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि के कारक, जनसंख्या वृद्धि के चरण, नगरीय एवं ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि का स्थानिक विश्लेषण, तीव्र, मध्यम तथा धीमी जनसंख्या वृद्धि के क्षेत्र, प्राकृतिक वृद्धि दर, जन्म दर मृत्यु दर, प्रवास व प्रक्षेपित जनसंख्या का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

जनसंख्या वृद्धि

जनसंख्या वृद्धि से तात्पर्य किसी विशिष्ट अवधि में किसी विशेष क्षेत्र में जनसंख्या में हुए परिवर्तन से है।¹ जनसंख्या वृद्धि पूर्व में प्राप्त आंकड़ों, निर्धारित जनगणना व वर्तमान में जनसंख्या के अन्तर को प्रतिशत के आधार पर ज्ञात करते हैं। यदि पूर्व में की गयी गणना से अधिक संख्या में पायी जाती है तो उसे धनात्मक वृद्धि व जनसंख्या के घटने पर ऋणात्मक वृद्धि कहलाती है। जनसंख्या में कमी व वृद्धि क्षेत्र की भौतिक आर्थिक, सामाजिक दशाओं से प्रभावित होती है। जनसंख्या में वार्षिक रेखीय परिवर्तन को निम्न सूत्र से प्रकट करते हैं –

$$(i) \quad b \frac{P_n - P_o}{n}$$

b = वार्षिक वृद्धि पद

P_n = अगली जनगणना की जनसंख्या

P_o = पिछली जनगणना की जनसंख्या

n = वर्षों की संख्या

$$(ii) \quad r = \left\{ \sqrt[t]{\frac{P_1}{P_0}} - 1 \right\} \times 100$$

r = वार्षिक वृद्धिदर

P_1 = अगली जनगणना में जनसंख्या

P_0 = पिछली जनगणना में जनसंख्या

t = दो गणनाओं के बीच का समय

r = वार्षिक वृद्धि दर¹

जनसंख्या वृद्धि के संघटक

जनसंख्या वृद्धि के तीन मौलिक संघटक हैं, जो कि इस प्रकार हैं – (1) प्रजननता (2) मृत्यु दर (3) प्रवास ।² इस प्रकार किसी क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि भौतिक एवं सामाजिक दशाओं से भी प्रभावित होती है।

तालिका डूंगरपुर जिले का तहसीलवार ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि दर (1981–2011)

(प्रतिशत)

जिला/तहसील	वर्ष				
	1981	1991	2001	2011	परिवर्तन 1981–2011
तहसील					
डूंगरपुर	27.99	26.93	26.65	26.59	(-)1.4
थजला					
डूंगरपुर	31.28	(-)15.22	29.56	28.16	(-)3.12
टासपुर	26.33	20.09	25.93	21.5	4.83
सागवाड़ा	24.03	3.53	21.29	23.86	(-)0.17
सीमलवाड़ा	.	-	28.86	30.95	2.09

स्रोत : जिला सांख्यिकीय रूपरेखा से परिकलन सीमलवाड़ा का विवरण 2001 से परिकलित है।

ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि दर 1981 से 2001 तक की तालिका से स्पष्ट है कि जिले में ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि दर में परिवर्तन (1981–2011) ऋणात्मक (-) 1.4 प्रतिशत कमी रही है। 1981 में डूंगरपुर जिले में +27.99 प्रतिशत वृद्धि दर से कम होकर +26.59 प्रतिशत अंकित की गयी है। जनसंख्या वृद्धि दर जन्मदर व मृत्यु दर के अन्तर को स्पष्ट करती है। अतः यह अन्तर धनात्मक () और ऋणात्मक हो सकता है। डूंगरपुर तहसील में 1981–1991 के मध्य ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि ऋणात्मक (-) 15.22 प्रतिशत रही है इसका मुख्य कारण इस तहसील का विभाजन करके सीमलवाड़ा तहसील का निर्माण किया गया है। 1961

में सर्वाधिक वृद्धि दर डूंगरपुर तहसील में 31.28 प्रतिशत थी जो 2011 में कम होकर +28.16 प्रतिशत रह गयी है अर्थात् वृद्धि दर में ऋणात्मक (-) 3.12 प्रतिशत परिवर्तन देखा गया हैं डूंगरपुर, आसपुर, सागवाड़ा तहसील में ऋणात्मक परिवर्तन हुआ जबकि एक मात्र सीमलवाड़ा तहसील में धनात्मक (+) 2.09 प्रतिशत परिवर्तन (1981-2011) हुआ है। यहां पर अनुसूचित जनजाति जनसंख्या 84.35 प्रतिशत (2011) है इस कारण जनसंख्या वृद्धि दर ज्यादा है।

आसपुर तहसील में ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि दर 1981 में +26.33 प्रतिशत से कम होकर +21.5 प्रतिशत हो गयी है इसमें सर्वाधिक ऋणात्मक (-) 4.83 प्रतिशत (1981-2011) परिवर्तन हुआ है। क्योंकि यहां पर जिले में सबसे कम अनुसूचित जनजाति (एण्ड) 53.11 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। इस कारण जागरूकता की कमी के कारण बच्चे अधिक होते हैं जिससे अनुसूचित जनजाति के क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि दर इस जिले में ज्यादा रही है और कम अनुसूचित जनजाति जनसंख्या प्रतिशत वाले क्षेत्र में ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि दर कम रही है।

सागवाड़ा तहसील में ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि दर 1981 में +24.03 प्रतिशत रही थी जो पिछले तीस वर्षों में लगभग स्थिर हरने का कारक एक स्थानान्तरण है। गांवों से नगरों की ओर मुख्य रूप से स्थानान्तरण होता है क्योंकि शिक्षा, चिकित्सा, रोजगार, पेयजल, परिवहन, संचार सुविधाओं आदि के कारण नगरीकरण को बढ़ावा मिलता है जबकि ग्रामीण जनसंख्या आधुनिकीकरण के कारण जनसंख्या का स्थान गांवों से शहरों की ओर होता है सागवाड़ा तहसील से खाड़ी देशों में प्रवास भी ग्रामीण जनसंख्या में वृद्धि दर में कमी कारण है क्योंकि पुरुष रोजगार की प्राप्ति के लिए विदेश में जाता है जिससे जन्म दर में कमी होती है।

उच्च जनसंख्या वृद्धि के कारक

जनसंख्या वृद्धि के तीन मौलिक या मुख्य कारक हैं (1) प्रजननता (2) मृत्यु दर , (3) प्रवास

इसके अलावा किसी क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि में आर्थिक, सामाजिक, भौतिक दशाओं का भी योगदान होता है जिले की जनसंख्या वृद्धि दर 25.36 प्रतिशत (2011) रही है जो राजस्थान की दशकीय वृद्धि (21.3 प्रतिशत) से अधिक है, इसका प्रमुख कारण डूंगरपुर जिला पिछड़ा जनजाति बाहुल्य क्षेत्र है। जिले में तीव्र जनसंख्या वृद्धि के निम्न कारण हैं—

उच्च प्राकृतिक वृद्धि दर

जिले की जनसंख्या को उच्च जन्मदर एवं घटती मृत्यु दर से जोड़ा जा सकता है, क्योंकि जिले (डूंगरपुर) में जहाँ जन्म दर तथा मृत्यु दर दोनों में गिरावट हुई है, किन्तु मृत्यु दर की अपेक्षा जन्म दर में गिरावट अधिक होने से प्राकृतिक वृद्धि तेजी से हो रही है, जिले में स्वास्थ्य सम्बन्धी दशाओं में सरकार के प्रयास से उन्नति हो रही है। जिले में बीमारियों तथा महामारियों पर नियन्त्रण प्राप्त होने से मृत्यु दर में कमी देखी गयी है, जबकि जन्म दर अपनी गति से कुछ कम हुई है लेकिन मृत्युदर की तुलना में उच्च

बनी हुई है जिससे जनसंख्या वृद्धि दर अधिक बनी हुई है।

उपयुक्त जलवायु

डूंगरपुर जिले की उष्ण एवं आर्द्र जलवायु के कारण लड़कियाँ जल्दी परिपक्व हो जाती हैं जिससे परिजन लड़कियों का विवाह जल्दी कर देते हैं जिस कारण सन्तानोत्पत्ति होने से जनसंख्या वृद्धि में सहयोग मिलता है।

शिक्षा का निम्न स्तर

जिले में साक्षरता का स्तर बहुत निम्न है यहाँ पर मात्र 59.5 प्रतिशत (2011) व्यक्ति ही साक्षर हैं तथा महिला साक्षरता की स्थिति ओर भी दयनीय है जिले में मात्र 46.2 प्रतिशत (2011) महिला ही साक्षर हैं। अर्थात् निम्न साक्षरता की वजह से परिवार नियोजन सम्बन्धित आधुनिक जानकारी से यहां के अधिकांश लोक अनभिज्ञ होने से परिवार बड़ा होता है जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से जनसंख्या वृद्धि पर पड़ता है।

बाल-विवाह तथा अन्य सामाजिक कुरीतियाँ

डूंगरपुर में बाल-विवाह तथा अन्य सामाजिक कुरीतियाँ जैसे 'नाता प्रथा', 'देवर विवाह', साली विवाह, बहु-पत्नि प्रथा आदि का जनसंख्या वृद्धि से धनात्मक सह-सम्बन्ध होता है। जनजातियों में बहु पत्नि-प्रथा एक सामान्य धारणा बनी हुई है जिस कारण परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होती है अर्थात् बाल विवाह एवं अन्य सामाजिक कुरीतियों ने जिले में जनसंख्या वृद्धि दर को काफी बढ़ावा दिया है।

पिछड़ी ग्रामीण जनजातीय जनसंख्या

जिले की 93.60 प्रतिशत (2011) जनसंख्या ग्रामीण व 70.82 प्रतिशत जनसंख्या जनजातिय है। इस कारण से ये लोग बाहरी दुनियाँ से अनभिज्ञ या कटे हुए हैं साथ ही ये जनजातिय जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है इस कारण ये परिवार नियोजन को कम ही अपनाते हैं जिससे इनके परिवार बड़े होते हैं अर्थात् ये छोटे परिवार के लाभ या फायदे से भी अनभिज्ञ होते हैं।

प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं की प्रधानता

जिले में प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं की प्रधानता की वजह से जनसंख्या में वृद्धि तीव्र गति से हो रही है। प्राथमिक क्रियाओं में जैसे कृषि, शिकार करना, पशु चराना, मछली पकड़ना, वनोत्पत्तियों का एकत्रीकरण आदि। इन सभी आर्थिक क्रियाओं में श्रमिक की आवश्यकता होती है अर्थात् ये श्रम प्रधान (संज्ञवन्त वतपमदजमक) है। अर्थात् प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं में परिवार में बच्चों को बोझ नहीं माना जाता है बच्चों को बचपन से ही छोटे-छोटे आर्थिक कार्यों में लगा दिया जाता है अर्थात् जो परिवार जितना बड़ा होता है, जितने ज्यादा बच्चे होंगे उतने ही वे आर्थिक कार्यों में अधिक हाथ बटायेंगे या सहायता करेंगे। इस प्रकार प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं की प्रधानता से जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है।

स्थानान्तरण या प्रवास

जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख तत्वों में से एक प्रवास है। जिले में धार्मिक, खनन, सामाजिक रीति-रिवाजों से जनसंख्या का स्थानान्तरण या प्रवास होता है। अर्थात् आप्रवास से जनसंख्या वृद्धि को बढ़ावा मिलता है आप्रवास व जनसंख्या वृद्धि में धनात्मक सम्बन्ध होता है अर्थात् डूंगरपुर जिले से खाड़ी देशों में अप्रवास हो रहा है रोजगार की अनुपलब्धता के कारण जिले से काफी जनसंख्या का आप्रवास हो रहा है।

धार्मिक मान्यताएँ

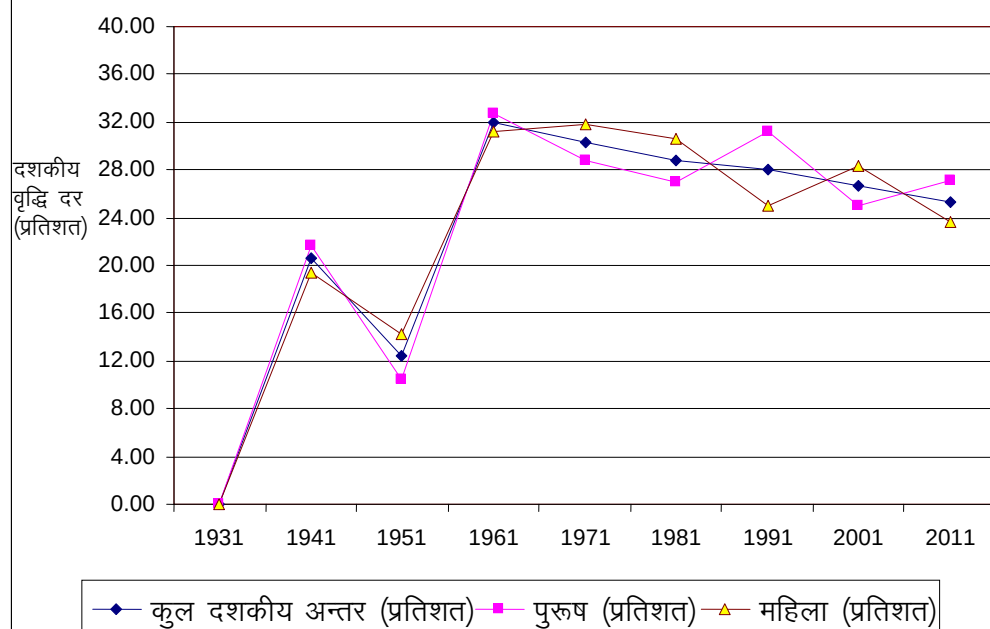
जिले में प्रचलित अनेक धार्मिक मान्यताओं के कारण भी जनसंख्या वृद्धि दर को बढ़ावा मिला है। जैसे पुत्र प्राप्ति से ही मोक्ष प्राप्त होता है, हिन्दू धार्मिक मान्यताओं के अनुसार पिण्ड—दान एवं अन्य धार्मिक क्रिया—कर्म पुत्र ही कर सकता है आदि मान्यताओं ने पुत्र प्राप्ति की चाहत या लालसा में जनसंख्या वृद्धि को बढ़ावा मिलता है क्योंकि लड़का—लड़की में भेद इसका प्रमुख कारण है। इसी को ध्यान में रखते हुए माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र दामोदर मोदी ने बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना प्रारम्भ की है।

तालिका : झुंगरपुर जिले की जनसंख्या वृद्धि

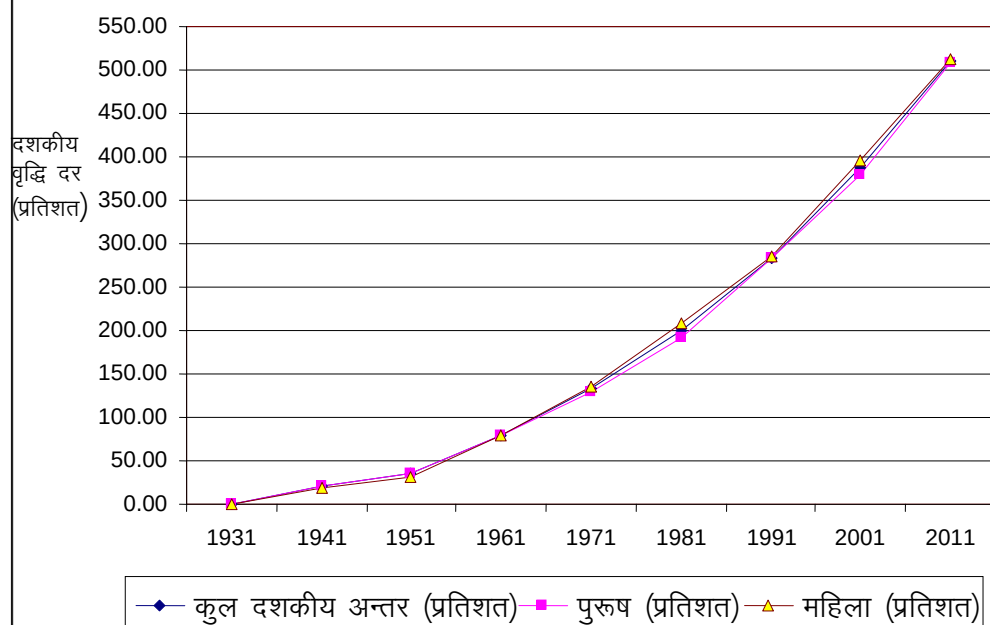
वर्ष	कुल जनसंख्या				वार्षिक वृद्धि दर		पुरुष			महिला		
	जनसंख्या	दशकीय परिवर्तन	दशकीय अन्तर (ः)	1931 से अन्तर (ः)	साधारण	मिश्रित	जनसंख्या	दशकीय अन्तर (ः)	1931 से अन्तर	जनसंख्या	दशकीय अन्तर (ः)	1931 से अन्तर
1931	227544	—	—	—	—	—	114480	—	—	113064	—	—
1941	274282	46738	20.54	20.54	2.05	1.89	139241	21.63	21.63	135041	19.43	19.43
1951	308243	33961	12.38	35.47	1.24	1.17	153912	10.53	34.44	154331	14.28	36.50
1961	406944	98701	32.02	78.84	3.20	2.82	204342	32.76	78.50	202602	31.27	79.20
1971	530258	123314	30.30	133.03	3.03	2.68	263116	28.76	129.83	267142	31.86	136.27
1981	682845	152587	28.78	200.08	2.88	2.56	333951	26.92	191.71	348894	30.60	208.60
1991	874549	191704	28.07	284.34	2.81	2.51	438324	31.25	282.88	436225	25.03	285.82
2001	1107643	233094	26.65	386.78	2.67	2.39	547791	24.97	378.50	559852	28.34	395.16
2011	1388552	280909	25.36	510.23	2.54	2.29	696532	27.15	508.43	692020	23.60	512.06

स्त्रोत : जिला सांख्यिकीय रूपरेखा (2013) झुंगरपुर व परिकल्पित

आरेख 6.1 : झुंजरपुर जिला : दशकीय वृद्धि दर



आरेख 6.2: झुंजरपुर जिला : 1931 से अन्तर (प्रतिशत)



कुल जनसंख्या में वृद्धि

तालिका द्वारा सन् 1931 से 2011 तक के आठ दशकों के डूंगरपुर जिले की कुल जनसंख्या, पुरुष जनसंख्या व महिला जनसंख्या में वृद्धि को प्रदर्शित किया गया है।

जिले की जनसंख्या में पिछले आठ दशकों में लगभग छः गुना से अधिक वृद्धि हुई है। प्रारम्भिक दो दशकों में जनसंख्या वृद्धि की गति धीमी रही है। 1951 से 1961 के दशक में जिले में न्यूनतम जनसंख्या वृद्धि (12.38 प्रतिशत) दर्ज की गयी है। उसके बाद 1951 से 1961 के दशक में जिले में सर्वाधिक या अधिकतम स्तर (32.02 प्रतिशत) पर पहुँच गयी। इसके बाद के दशकों में जिले में जनसंख्या वृद्धि में लगातार कमी दर्ज की गयी है। इसका कारण सरकारी प्रयास व स्वास्थ्य, शिक्षा व आर्थिक क्रियाशील मानव की सोच में परिवर्तन का प्रतिफल माना जा सकता है। जिले में पिछले दशक 2001 से 2011 में जनसंख्या वृद्धि 25.36 प्रतिशत अंकित की गयी है जो मध्यम वृद्धि स्तर को दर्शा रही है।

वर्ष 1931 में जिले की कुल जनसंख्या 227544 थी जिसमें 114480 पुरुष (50.31 प्रतिशत) व 113064 महिलाएं (49.69 प्रतिशत) थी। जो बढ़कर 2011 में कुल जनसंख्या 1388552 हो गयी अर्थात् इस अवधि में 510.23 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस तरह पुरुष जनसंख्या में भी 508.43 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई जो स्त्रीयों की वृद्धि 512.06 प्रतिशत से कम रही है। इसका कारण जनजाति बाहुल्य जनसंख्या, पिछड़ी व ग्रामीण कृषि प्रधान जनसंख्या, व श्रम प्रधान व्यवसाय के कारण इनके परिवार का आकार बड़े होना है।

इसके अलावा परिवार नियोजन के उपायों को अपनाने में संकोच व बेटी को परिवार पर बोझ नहीं समझना भी एक कारण है।

सन् 1931 में पुरुषों की संख्या स्त्रियों की संख्या से अधिक थी वहीं 1951 में स्थिति विपरित अर्थात् पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या अधिक हो गयी अर्थात् लिंगानुपात स्त्रियों के पक्ष में रहा है। इसके अलावा 1971, 1981 व 2001 में भी स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक ही रही है। केवल 1991 में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से अधिक अंकित की गयी थी।

पुरुष जनसंख्या वृद्धि 1941 में 21.63 प्रतिशत थी, जो 1951 के दशक में कम होकर न्यूनतम 10.53 प्रतिशत हो गयी। वहीं 1961 में सर्वाधिक 32.76 प्रतिशत अंकित की गई। इसके पश्चात् 1981 तक वृद्धि दर में कमी हुई वहीं 1991 में बढ़कर 31.25 प्रतिशत हो गयी जो तीव्र वृद्धि दर को प्रदर्शित करती है। इसके बाद वृद्धि दर में कमी हुई है जो 2011 में 27.15 प्रतिशत रही है। पुरुष जनसंख्या में 1931 की तुलना में 2011 में 508.43 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो कि स्त्री जनसंख्या में वृद्धि (512.06 प्रतिशत) से हमेशा ही कम ही रही है (लेकिन वर्ष 1941 व 1951 में वृद्धि ज्यादा रही थी।)

स्त्री जनसंख्या वृद्धि 1931-1941 में 19.43 प्रतिशत थी जो 1951 के दशक में न्यूनतम 14.28 प्रतिशत रही। इसके पश्चात् तीव्र गति से वृद्धि हुई जो 1961-71 के दशक में सर्वाधिक 31.86 प्रतिशत अंकित की गई। इसके बाद कम होकर वृद्धि 1991 के दशक में 25.03 प्रतिशत रही जो पिछले तीन दशक 1961, 1971 व 1981

के दशकों की तुलना में कम रही है। 2001 के दशक में बढ़कर स्त्री वृद्धि दर 28.34 प्रतिशत हो गई लेकिन वर्तमान 2001–2011 के दशक में कम होकर 23.60 प्रतिशत ही रही। इसका कारण सरकारी प्रयास से जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण स्थापित करने के सफल प्रयास का परिणाम है। फिर भी यह वृद्धि राजस्थान के वृद्धि दर (21.3 प्रतिशत) से अधिक ही रही है।

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि जिले की जनसंख्या लगातार बढ़ रही है परन्तु इसकी वृद्धि दर (लतवूजी त्जम) में कमी अंकित हुई है क्योंकि लोगों में छोटे परिवार के फायदे, वर्तमान की मंहगाई के युग में "हम दो हमारे दो" के महत्व को समझने की सोच विकसित हुई है। लेकिन सन् 1991–2001 से 2001–2011 के दशाहद वृद्धि दर में न्यूनतम वृद्धि दर (राजस्थान के जिले) में कमी आदिवासी जिले जालौर में (–0.51 प्रतिशत) व डूंगरपुर (–1.26 प्रतिशत) राजसमन्द (–2.08 प्रतिशत), बांसवाड़ा (–3.04 प्रतिशत) और उदयपुर (–3.45 प्रतिशत) वृद्धि दर में कमी न्यूनतम अंकित की गयी।

तालिका : विभिन्न अन्तरालों में जनसंख्या में कुल तथा प्रतिशत वृद्धि (1931–2011) डूंगरपुर

दशक	जनसंख्या	विभिन्न अन्तरालों में कुल तथा प्रतिशत वृद्धि							
		10 वर्ष	20 वर्ष	30 वर्ष	40 वर्ष	50 वर्ष	60 वर्ष	70 वर्ष	80 वर्ष
1931	227544	—	—	—	—	—	—	—	—
1941	274282	46738 (20.54)	80699 (35.46)	179400 (78.84)	302714 (133.03)	455301 (200.09)	647005 (284.34)	880099 (386.78)	161008 (510.23)
1951	308243	33961 (12.38)	132662 (48.37)	255976 (93.32)	408563 (148.95)	600267 (218.85)	833361 (303.83)	1114270 (406.25)	
1961	406944	98701 (32.02)	222015 (72.02)	374502 (121.53)	566306 (183.72)	799400 (259.34)	1080309 (350.47)		
1971	530258	123314 (30.30)	275901 (67.80)	467605 (114.90)	700699 (172.18)	981608 (241.21)			
1981	682845	152587 (28.78)	344291 (64.93)	577385 (108.89)	858294 (161.86)				
1991	874549	191704 (28.07)	424798 (62.21)	705707 (103.35)					
2001	1102643	233094 (26.65)	514003 (58.77)						
2011	1388552	280909 (25.36)							

स्रोत : जिला सांख्यिकीय रूपरेखा (2013) डूंगरपुर से परिकलित

तालिका द्वारा विभिन्न दशकीय अन्तरालों में जिले (डूंगरपुर) की कुल जनसंख्या में कुल तथा प्रतिशत परिवर्तन को दर्शाया गया है। 1931 में कुल जनसंख्या 227544 थी जो बढ़ कर 2011 में 1388552 व्यक्ति हो गई अर्थात् पिछले 80 वर्षों में 510.23 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वर्ष 1931 से तुलनात्मक रूप से जिले की कुल जनसंख्या को देखने से स्पष्ट होता है कि 10 वर्ष में (20.54 प्रतिशत), 20 वर्ष (35.46 प्रतिशत), 30 वर्ष (78.84 प्रतिशत), 40 वर्ष (133.03 प्रतिशत), 50 वर्ष में (200.09 प्रतिशत), 60 वर्ष में (284.34 प्रतिशत) तथा 70 वर्ष में 386.78 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वर्तमान पिछले 80 वर्षों में जिले में 510.23 प्रतिशत वृद्धि हुई है। वर्ष 1931 की

जनसंख्या

निष्कर्ष कहा जा सकता है कि जिले में 1961 के बाद वृद्धि दर में निरन्तर कमी दर्ज की गयी है।

तालिका : जिले की जनसंख्या में विचरण

जिला / तहसील	वर्ष			
	1981—1991	1991—2001	2001—2011	1981—2011
थजला				
डूंगरपुर	28.07	26.65	25.36	103.35
तहसील				
डूंगरपुर	-11.66	28.54	25.36	43.30
टासपुर	20.09	25.93	21.53	83.81
सागवाड़ा	83.63	22.84	19.47	59.44
सीमलवाड़ा	-	28.86	33.78	72.39

स्रोत : जिला सांख्यिकीय रूपरेखा से परिकलन

जनसंख्या की दस वर्षीय वृद्धि का आंकलन करने से पता चलता है कि डूंगरपुर तहसील में 1981—91 के दशक में (—) 11.66 प्रतिशत जनसंख्या वृद्धि दर रही है। 1991—2001 में वृद्धि पर बढ़कर (+) 28.54 प्रतिशत हो गयी। 2001—2011 के दशक में घटकर यह 25.36 प्रतिशत अंकित की गयी है।

जनसंख्या के विचरण को देखने से स्पष्ट है कि जिले की जनसंख्या 1981 से बढ़कर 2011 में दोगुनी हो गयी अर्थात् 103.35 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। डूंगरपुर तहसील में सबसे कम जनसंख्या का विचरण 43.30 प्रतिशत रहा क्योंकि इस तहसील का विभाजन करके सीमलवाड़ा तहसील का निर्माण किया गया। आसपुर तहसील में 83.81 प्रतिशत सर्वाधिक विचरण रहा है।

तालिका : डूंगरपुर जिले का तहसीलवार जनसंख्या विचरण (1981—2011)

(प्रतिशत)

जिला / तहसील	कुल	ग्रामीण	नगरीय
जिला डूंगरपुर	103.35	103.50	101.11
डूंगरपुर	43.35	40.77	73.12
आसपुर	83.81	83.81	—
सागवाड़ा	59.39	55.55	106.07
सीमलवाड़ा	72.39	68.74	—

स्रोत : जिला सांख्यिकीय रूपरेखा (1984 व 2013) डूंगरपुर से परिकलित

तालिका से स्पष्ट होता है कि डूंगरपुर जिले की कुल जनसंख्या में विचरण 103.35 प्रतिशत अंकित किया गया है अर्थात् जिले की जनसंख्या इस अवधि (1981-2011) में लगभग दो गुनी हो गई। तहसील वार आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि न्यूनतम डूंगरपुर तहसील (43.35 प्रतिशत) व सर्वाधिक आसपुर तहसील (83.81 प्रतिशत) में विचरण रहा है।

ग्रामीण जनसंख्या में विचरण जिले में 103.50 प्रतिशत रहा है वहीं तहसील स्तर के आंकड़ों से पता चलता है कि सबसे कम डूंगरपुर तहसील (40.77 प्रतिशत) व सर्वाधिक आसपुर (83.81 प्रतिशत) अंकित किया गया। सागवाड़ा व सीमलवाड़ा में क्रमशः 55.55 प्रतिशत व 68.74 प्रतिशत दर्ज किया गया है।

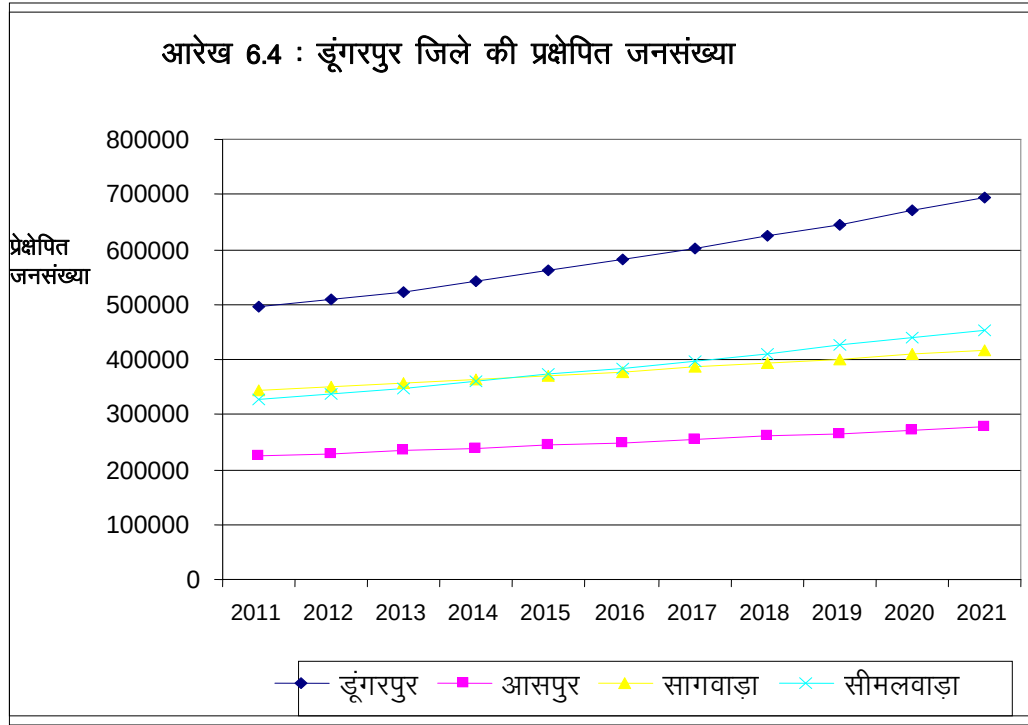
नगरीय जनसंख्या में विचरण जिले में 101.11 प्रतिशत रहा है। वहीं डूंगरपुर तहसील में 73.12 प्रतिशत व सागवाड़ा तहसील में 106.07 प्रतिशत विचरण दर्ज किया गया है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि सागवाड़ा नगर का विकास तेजी से हा रहा है जिससे जनसंख्या विचरण सर्वाधिक रहा है।

तालिका : डूंगरपुर जिले में प्रक्षेपित जनसंख्या

वर्ष	जिला डूंगरपुर	डूंगरपुर	आसपुर	सागवाड़ा	सीमलवाड़ा
2011	1388552	495423	224243	343232	325654
2012	1423821	508453	229064	349925	336661
2013	1459986	521825	233989	356748	348040
2014	1497070	540767	239020	363705	359804
2015	1535096	560397	244159	370797	371965
2016	1574087	580739	249408	378027	384537
2017	1614069	601820	254770	385399	397534
2018	1655066	623666	260248	392914	410971
2019	1697105	645305	265843	400576	424862
2020	1740212	669766	271558	408387	439222
2021	1784413	694079	277396	416351	454067

स्रोत : जिला सांख्यिकीय रूपरेखा (2013) डूंगरपुर से परिकलित



तालिका में डूंगरपुर जिले की प्रक्षेपित जनसंख्या को दर्शाया गया है। जिले में 2011 में कुल जनसंख्या 13,88,552 व्यक्ति है जो बढ़कर 2021 में 17,84,413 होने का अनुमान है अर्थात् वर्तमान वृद्धि दर के अनुसार जिले की चारों तहसील डूंगरपुर, आसपुर, सागवाड़ा व सीमलवाड़ा की प्रक्षेपित जनसंख्या को प्रदर्शित किया गया है।

डूंगरपुर तहसील की जनसंख्या 2011 में 495,423 से बढ़कर 2021 में 694,079 होने का अनुमान है। आसपुर तहसील में 2011 में 224,243 से बढ़कर 2021 में 277,396 होने का प्रक्षेपित अनुमान है, वहीं सागवाड़ा व सीमलवाड़ा की जनसंख्या 2011 में क्रमशः 343,232 व 325,654 थी जो बढ़कर 2021 में 416,351 व 454,067 प्रक्षेपित रहने की आशा है।

तालिका 6.8 : सहसम्बन्ध मैट्रिक्स

च	X_1	X_2	X_3
X_1	1	.78	.734*
X_2		1	.82*
X_3			1

यहां सभी चरों के बीच उच्च श्रेणी का सह सम्बन्ध है परन्तु रेखीयता के अभाव में बहुसंरेखता (Multicollinerity) का अभाव है। आंकलित प्रतीपगमन मॉडल निम्नवत् है :

तालिका : प्रतिपगमन मॉडल

चर	चिन्ह	गुणांक	t मूल्य	R^2	$\bar{R}^2$	F मूल्य	P मूल्य
X_1	+	.86	4.86	.932	.916	7.82	0.0002
X_2	-	(-) .74	(-) 4.24				
X_3	-	(-) .59	(-) 2.38				

स्रोत : आंकलित

यहां निम्न परिकल्पनाएं ली गयी हैं।

H_0 : व्याख्यात्मक चरों का निर्भर चर पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है। अर्थात् $\beta = 0$

H_A : व्याख्यात्मक चरों का निर्भर चर पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। $\beta \neq 0$

यहां निर्भर एवं स्वतन्त्र चरों के बीच सम्बन्धों के चिन्ह, परिकलित चिन्हों के समान हैं। X_1 चर का गुणांक .86 है अर्थात् जन्मदर में 1 प्रतिशत परिवर्तन होने पर जनसंख्या में .86 प्रतिशत परिवर्तन होता है। X_2 चर का गुणांक (-).74 है अर्थात् मृत्यु दर में 100 प्रतिशत परिवर्तन होने पर जनसंख्या में 74 प्रतिशत परिवर्तन होता है इसी प्रकार X_3 चर का गुणांक .59 है अर्थात् प्रवास में 100 प्रतिशत परिवर्तन से जनसंख्या में 59 प्रतिशत परिवर्तन होता है।

हमारा आंकलित मॉडल सार्थक प्रतीत होता है क्योंकि निर्धारण गुणांक एवं समायोजित निर्धारण गुणांक का मूल्य उच्च है। स्पष्ट है कि जनसंख्या में होने वाले 93 प्रतिशत परिवर्तन व्याख्यात्मक चरों के कारण होते हैं। R^2 का उच्च मूल्य की मॉडल भी सार्थकता को सिद्ध करता है।

हमारी शून्य परिकल्पना गलत सिद्ध होती है क्योंकि प्रामाणिकता मूल्य (0.0002) है जो सार्थकता स्तर (5 प्रतिशत) से कम है अतः यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि व्याख्यात्मक चर, निर्भर चर को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार डूंगरपुर जिले में सरकारी स्तर एवं सहकारी नीजी भागीदारी से बनायी जाने वाली विकास योजना प्रक्षेपित जनसंख्या के अनुसार बनाने से भविष्य में जनसंख्या को कम से कम पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हैं। स्वास्थ्य, पेयजल, शिक्षा आदि के साथ ही अन्य मूलभूत सुविधाएँ बनायी जाने से भविष्य में आने वाली समस्याओं के बच सकते हैं।

जनसंख्या समस्या का समाधान मात्र परियोजनाओं के निर्माण एवं प्रशासनिक जुमले के आधार पर सम्भव नहीं है। इसे जन-चेतना, जन-भागीदारी एवं जन आन्दोलन बनाने पर ही समस्या का समाधान सम्भव है। चीन के समान भारतीय लोकतंत्र को कठोर नियम बनाकर एक दम्पति के एक सन्तान के नारे को मात्र नारे देकर

सफल नहीं बनाया जा सकता। चीन में कानूनन एक सन्तान से अधिक होने दण्ड एवं कठोर कार्यवाही का प्रावधान है। राजस्थान राज्य में यदि ऐसा हो जाने तब ही कहीं जाकर समस्या का समाधान सम्भव है।⁴

डूंगरपुर जिले मानवीय विकास सूचकांक 0.5 से अधिक होना चाहिए। जनसंख्या समस्या का समाधान मात्र परियोजनाओं के निर्माण एवं प्रशासनिक जुमले के आधार पर सम्भव नहीं है। इसे जन-चेतना, जन-भागीदारी एवं जन आन्दोलन बनाने पर ही समस्या का समाधान सम्भव है। चीन के समान भारतीय लोकतंत्र को कठोर नियम बनाकर एक दम्पति के एक सन्तान के नारे को मात्र नारे देकर सफल नहीं बनाया जा सकता। चीन में कानूनन एक सन्तान से अधिक होने दण्ड एवं कठोर कार्यवाही का प्रावधान है। राजस्थान राज्य में यदि ऐसा हो जाने तब ही कहीं जाकर समस्या का समाधान सम्भव है।⁵

शिक्षा का सूचकांक कोटा के समान 8.449 या इससे अधिक स्वास्थ्य सूचकांक हनुमानगढ़ के समान (0.752) या अधिक व आमदनी सूचकांक गंगानगर (0.842) या अधिक होना चाहिए।⁶

जिले में तीव्र जनसंख्या वृद्धि से प्रादेशिक विकास को बढ़ावा मिल रहा है क्योंकि जनसंख्या में वृद्धि से वहां का विकास तीव्र होता है अर्थात् मानव एक संसाधन का रूप है। जैसे चीन की प्रगति का एक कारण उसकी मानव संसाधन हैं वही एक कारण जनसंख्या की पूर्व में वृद्धि का होना भी है। लेकिन वर्तमान में तीव्र वृद्धि को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पिछड़ेपन के रूप में देखा जाता है। जिला ग्रामीण व पिछड़ी जनजातिय बाहुल्यता की वजह से तीव्र गति से वृद्धि हो रही है।

जनसंख्या में तीव्र वृद्धि आधुनिक, रहन-सहन एवं आर्थिक तंत्र की बढ़ती मांग तथा उपलब्ध संसाधनों पर बढ़ते दबाव के कारण मानव एवं प्राकृतिक संसाधनों के प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बुद्धिमता पूर्ण उपयोग तथा नियोजित विकास का समय आ गया है।

जिले में तीव्र जनसंख्या वृद्धि से क्षेत्रिय विकास के साथ ही कई समस्याओं का सामना मानव को करना पड़ रहा है। अतः जिले के सम्पूर्ण समुचित विकास की योजना बनाकर विकास करने से तीव्र जनसंख्या वृद्धि भी कोई समस्या नहीं रहेगी बल्कि मानव संसाधन की मजबूत आधारशिला रखी जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ (BIBLIOGRAPHY)

Ackerman, E.A. (1959) : Geography and Demography in Hauser and Duncan (eds.) The study of Population (Chicago : The University of Chicago Press).

Chandna, R.C. and Kant, Surya (1985) : Distribution and Density of Population in India; Asian Profile, Hongkong, Vol. 13, No.4, PP. 339-351.

Clarke, J.I. (1981) : Population Geography and the Developing Countries; Pergaman Press Oxford.

⁴ , एच.एस. एवं शर्मा एम.एल. राजस्थान का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 422

⁵ , एच.एस. एवं शर्मा एम.एल. राजस्थान का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 422

⁶ शर्मा, एच.एस. एवं शर्मा एम.एल. राजस्थान का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 368

Gosal, G.S. (1984) : "Population Geography in India" in Geography and Population, Approaches and Applications by John I. Clarke (ed); Pergaman Press, Oxford, PP. 203-214.

Jarmali, F.Z. (1995) : Population Geography of Nimar; Vasundhara Prakashan, Gorakhpur.

Joshi, Hemlata (1991) : Economy of Bhils in Rajasthan –A Geographical Analysis, Agricultural and Economic Aspects of Tribal Landscapes Ed. G.P. Gupta; Arihant Publication, Jaipur, PP. 296-304.

Ojha, R.P. (1984) : Jansankhya Bhoogol; Pratisha Prakashan.

कथकाचार्य पं. लक्ष्मीनारायण जी महाराज का जयपुर घराने में सांगीतिक योगदान

शोधार्थी

सुरभि कुमावत

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

Mail Id-

surbhikumawat89@gmail.com



शोध निर्देशिका

डॉ. आरती भट्ट तैलंग

एसोसिएट प्रोफेसर,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

“घराने का अर्थ उस विशेष पद्धति से है जो एक वंश-विशेष की परम्परागत थाती होती है। यह कला पिता अथवा गुरु से पुत्र अथवा योग्य शिष्य को प्राप्त होती है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है।

गुरु अथवा घराने के संस्थापक के नाम अथवा निवास-स्थान के नाम से ‘घराने’ का नामकरण होता है। जैसे गायन के क्षेत्र में ग्वालियर घराना, आगरा घराना, अतरौली घराना इत्यादि। इसी प्रकार कथक नृत्य के क्षेत्र में जयपुर घराना, लखनऊ घराना, बनारस अथवा जानकीप्रसाद घराना, सुखदेव घराना इत्यादि मुख्य हैं।

श्रीमती कपिला वात्स्यायन ने ‘घराने’ का सार बताते हुए कहा है – “In the ultimate analysis, a Gharana was based on the special style of expression devised by a particular founder Guru.”¹

Jaipur Gharana -

“The Jaipur Gharana developed in the courts of the Kachchwaha Kings of Jaipur in Rajasthan. Importance placed on the more technical aspects of dance, such as complex and powerful footwork, multiple spins, and complicated compositions in different tales. There is also a greater incorporation of compositions from the pakhawaj such as parans.”²

जयपुर घराना – कलात्मक वैशिष्ट्य

पुरु दाधीच –

जयपुर घराने की वर्तमान नृत्य परम्परा पाँच सौ वर्षों से भी अधिक प्राचीन है। जैसे हिन्दुस्तानी या उत्तर भारतीय गायन के क्षेत्र में ग्वालियर घराना आदिम घराना माना जाता है वैसे ही कथक नृत्य के क्षेत्र में जयपुर घराना ही आदिम घराना है जो उत्तर भारत की हिन्दू नृत्य परम्परा को अपने में अब भी संजोए है। यही उसका सर्वोपरि वैशिष्ट्य है।

आचार्य नन्दिकेश्वर ने अपने “अभिनयदर्पण” में कहा है कि – “नृत्यं गीताभिनयनं भावमालयंतु भवेत्” अर्थात् गीत के अभिनयन को ही नृत्य कहते हैं जो भाव व ताल से युक्त होता है। इसका तात्पर्य यह है कि

नृत्य का आधार सदा से ही गीत रहा है। जिस युग में जिस प्रकार की गीति शैली का मुख्यतः प्रचार रहा वही उस युग के नृत्य का आधार बनी। 13वीं शताब्दी के श्री जयदेव की अष्टपदियाँ जिस प्रकार अन्य नृत्य शैलियों में लोकप्रिय हैं, उसी प्रकार जयपुर घराने में भी वे अब तक प्रचलित रही हैं। मुगल काल में ध्रुवपद गान का विकास हुआ और वैष्णव मंदिरों में सेवारत जयपुर घराने के कथक कलाकार ध्रुवपदों व भजनों पर नृत्य करते रहे। 18वीं शताब्दी में जब उत्तर भारत में तुमरी का प्रचार हुआ तब वह तुमरी तो राजस्थान पहुँची ही उसके समान्तर राजस्थान में “मॉड” गाने का प्रचार हुआ और वह जयपुर घराने के अभिनय का आधार बना। झूला, फाग आदि ऋतु पर्वों के गीतों के अलावा इस घराने में राजस्थानी लोक-गीतों पर नृत्य किये जाने की भी परम्परा है। जयपुर घराने के अभिनय-व्यापार में ऐसी सरलता, स्वाभाविकता व सात्विकता है जो सहज ही मन को मोह लेती है।³

“शैली की स्थापना व शैलीगत विशेषताएँ तभी रूप लेती हैं जब महान नृत्यकार अपनी प्रतिभा व कल्पना से रचना को नया मोड़ देते हैं व कलाकार की सर्जना नया या मौलिक सिरज जाती हैं।”⁴

ऐसे ही प्रतिभावान, सृजनशील, कल्पनाशील गुणी व्यक्ति पं. लक्ष्मीनारायण जी महाराज जिनकी जयपुर घराने के कथक के विकास में विशिष्ट भूमिका रही हैं। इनका जन्म 1 जुलाई, 1895 में राजस्थान राज्य के जिला जयपुर में हुआ। लक्ष्मीनारायण जी अपने पिता श्री छाजूलाल जी के साथ बचपन से जयपुर गुणीजन खाने में जाया करते थे। पिताजी की मृत्यु के पश्चात् ये गुणीजन खाने में राजनर्तक बन गए एवं वहाँ शिक्षा प्रदान करने लगे।

इन्होंने अपने पिताश्री के अलावा लखनऊ घराने के विद्वान गुरु कालका प्रसाद जी एवं अच्छन महाराज जी से भी नृत्य की शिक्षा ली एवं गण्डा बंधवाया और तबले की शिक्षा दिल्ली घराने के प्रसिद्ध तबला वादक गामी खँ से भी ली। लक्ष्मीनारायण जी महाराज ने कई वर्षों तक भरतपुर राजा किशन सिंह, रायगढ़ के राजा चक्रधर सिंह, रामपुर के नवाब आदि के दरबारों में संगीत प्रदर्शन का कार्य किया और जयपुर घराने का नाम रोशन किया। सांगीतिक आनुवांशिक गुणों के साथ महाराज जी में व्यक्तिगत गुण-कौशल्य और नवीन सृजनात्मकता आदि के गुण भी विद्यमान थे उनकी ततकार, तोड़े और लयकारी का उसमें कठिन हिसाब, उनकी चाल, कलाई का प्रचलन, पैरों की तैयारी, लयकारी का प्रदर्शन पादाघात द्वारा नेत्रों से अभिनय आदि के साथ-साथ उन्हें तबला-पखावज वादन में भी महारथ हासिल थी। कथक नृत्य के साथ किस प्रकार से तबला संगीत की जाए कि ऐसा मालूम हो जैसे नृत्य के बोल ही बज रहे हो। वे ऐसा सधा हुआ तबला वादन करते थे कि चाहे वे किसी गायक के साथ संगति कर रहे हो या नृत्य के साथ श्रोता उनकी वादन शैली से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते थे।

जब वे अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री कन्हैया लाल जी के साथ जयपुर के पुरातन मंदिर लाड़ली जी के मंदिर में नाचते थे तो इनके पैरों के नीचे बिछी हुई गुलाल में मोर, हाथी आदि पशु-पक्षियों की आकृति उभर जाती थी दोनों भाई ‘जुगल-जोड़ी’ के नाम से विख्यात थे। इसी प्रकार कठिन नृत्य साधना का एक उदाहरण और था कि एक सफेद चादर के नीचे बताशे बिछा दिए जाते थे जिन पर लक्ष्मीनारायण जी नृत्य करते थे और

नृत्य के पश्चात चादर हटाकर देखने पर एक भी बताशा टूटा हुआ नहीं मिलता था, सभी साबुत रहते थे। इन्होंने विविध राष्ट्रीय मंचों पर अविस्मरणीय और चमत्कारिक प्रस्तुतियाँ दी हैं और साथ ही विविध राज्य के महाराजाओं के आतिथ्य में अपने कला प्रदर्शन से जयपुर घराने का नाम ही ऊँचा नहीं किया है अपितु अपने अथक प्रयास एवं सहायोग से कथक जयपुर घराने की विशेषताओं को स्थापित करने एवं मान्यता दिलवाने में इनका बहुत बड़ा योगदान है। राजस्थान संगीत संस्थान, जयपुर की स्थापना में इनका बहुत बड़ा योगदान रहा है साथ ही तबला वादक के रूप में आकाशवाणी एवं कॉलेज में भी अपनी सेवाएँ दी।

“इस घराने के संबंध में श्रीमती रोहिणी भाटे की व्याख्या है कि— नृत्य प्रस्तुति में ताल की गति जैसे-जैसे बढ़ती है इस तरह के तत्कार प्रस्तुत की जाती हैं जिसमें विविध जातियों तथा गतियों का विकट प्रयोग तैयारी तथा बोलों की सफाई के साथ किया जाता है। जयपुर घराने मंगलाचरण या स्तुति के पश्चात् ही कलाकार प्रायः बिलम्बित लय में तत्कार करते हैं, जहाँ विभिन्न लयकारी की दक्षता दर्शायी जाती है।”⁵

“जयपुर घराने के नर्तकों में लोकप्रिय अन्य गीति प्रकार ‘चतुरंग’ है जो सार्थक व निरर्थक शब्दों का समन्वय है। शब्द (काव्य) स्वर, ताल व तराना चार तत्वों को लेकर चतुरंग की रचना की जाती है, जो कथक नृत्य में भाव व ताल दोनों की संयुक्त प्रस्तुति के लिए उचित आधार प्रदान करती है।

संस्कृत, ब्रज या राजस्थानी भाषा के पद्यों के माध्यम से इष्टदेव की वन्दना कर नृत्य के प्रारम्भ की परम्परा भी मूलतः जयपुर घराने की ही देन है, जिसे अब अन्य लोगों ने भी अपना लिया है।

जयपुर घराने में अभिनय के प्रस्तुतिकरण की एक और सशक्त विधा प्रचार में है जिसे ‘गत भाव’ कहा जाता है। इसके अन्तर्गत नृत्यकार पलटा लेकर चलनों के साथ विभिन्न नायक-नायिकाओं की छवि प्रस्तुत करता है। इसके दो भेद हैं — गत निकास और गत भाव। गत निकास का प्रचार लखनऊ घराने में अधिक रहा है किन्तु गत भाव का विकास जयपुर घराने में ही हुआ है। इसके अन्तर्गत नृत्यकार अकेला ही किसी कथानक के समस्त पात्रों का अभिनय करते हुए रसभाव की सृष्टि करता है। गत भाव का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है जिस पर अधिकार प्राप्त करने के लिए अभिनय के साथ-साथ लय-ताल में भी पारंगत होना आवश्यक है। इसमें एक क्षण में सीता और दूसरे क्षण में रावण या किसी अन्य पात्र का भाव प्रस्तुत करना अभिनय की परिपक्वता का परिचायक है। जयपुर घराने में रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत व अन्य पुराणों की लोकप्रिय कथाओं का प्रस्तुतिकरण तो इसके अन्तर्गत होता ही आया है किन्तु जैसे काव्य के क्षेत्र में आशुकवित् की परम्परा रही है वैसे ही जयपुर घराने में महफिल में बैठे किसी रसिक की फरमाइश पर उसके द्वारा दिये गये विषय या कथानक पर तत्काल गत भाव बनाकर करने की भी परम्परा रही है।”⁶

पं. जी एक-एक ठुमरी पर घंटों तक भाव प्रदर्शन किया करते थे।

“तोड़ा-टुकड़ा, परन व प्रमेलुओं के तो सैंकड़ों प्रकार जयपुर घराने में प्रचलित हैं। एक और नाच के बोल, नटवरी के बोल, प्रिमलू, पक्षी परन, जाति परन आदि तो दूसरी ओर तबला व पखावज में विकसित बोलों के प्रकार जैसे चमकदार, फरमाहशी, कमाली, दुपल्ली, तिपल्ली, चौपल्ली, नौहक्का, बढैया, जातिपरन, यतिपरन,

सिंहावलोकन, रहसखानी, बाइलपरन, बिजली परन आदि प्रकार हैं।" कथक नृत्य का यही वह भाग है जिसमें जयपुर घराने के कलाकार को अपने तालाध्याय के ज्ञान व पाण्डित्य प्रदर्शन का पूरा-पूरा अवसर प्राप्त होता है। बोलों की पैरों से शुद्ध निकासी, तेजी-तैयारी व सफाई पर ये लोग बहुत परिश्रम करते हैं।⁷

इसी प्रकार जयपुर घराने की पं. लक्ष्मी नारायण जी महाराज द्वारा रचित कुछ रचनाएँ :-

प्रिमलू-त्रिताल

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल	ताऽऽक	धेरिकु	ताऽऽक	धेरिकु	झन	झन	धेरिकझ	नकझन	दुगदुग	धैऽऽक	धैऽऽऽ	ऽऽकु	झननन	ननदुग	झननन	ननकु
६	झननन	ननदुग	झननन	ननकु	झननन	ननदुग	झननन	ननताऽ	झनताऽ	तककाकु	तिघादिगदिग	धैऽऽकका	कुकुतिघा	दिगदिगधे	तककाकु	तिघादिगदिग
चिन्ह	x				2				0				3			

एक पल्ली (त्रिताल)

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल	तकटधा	तुकधित	धिटकता	गदेगिन	तगेतुक	तीनाकिना	ऽऽतुक	तीनाकिना	तागेतुक	तीनाकिना	तकटधा	तुकधिट	तकटधा	तुकधिट	तकटधा	तुकधिट
६	धाऽऽऽ	धाऽतक	टधातुक	धिटतक	टधातुक	धिटतक	टधातुक	धीटधाऽ	धाऽऽऽ	तकटधा	तुकधिट	तकटधा	तुकधिट	तकटधा	तुकधिट	धाऽऽऽ
चिन्ह	x				2				0				3			

आज जयपुर घराने के पर्याय के रूप में उनकी परम्परा के एक सिद्ध हस्त वारिस पुत्र पं. गिरधारी महाराज को विशिष्ट एवं मुख्य रूप से देखा जा सकता है। इन्होंने राजस्थान संगीत राजस्थान, जयपुर, जयपुर कथक केन्द्र और महारानी कॉलेज, जयपुर में भी कथक नृत्य की शिक्षा दी। पं. गिरधारी महाराज जी कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान भी प्राप्त हो चुके हैं। जैसे- राजस्थान श्री अवार्ड, नृत्य सम्राट, महाराज सवाई ईश्वरी सिंह जी अवार्ड आदि। Human Resources and Cultural Department, Govt. of India and Rajasthan Sangeet Natak Academy, Govt. of Rajasthan द्वारा इन्हें वरिष्ठ कथक गुरु की मान्यता भी प्राप्त है। इनके भी कई शिष्य-शिष्याएँ हैं जो जयपुर घराने की कथक नृत्य परम्परा का संरक्षण एवं संवर्द्धन कर रहे हैं जिनमें प्रेरणा श्रीमाली जी (दिल्ली), डॉ. ज्योति भारती गोस्वामी जी, मधु बड़जात्या जी, डॉ. कविता सक्सैना जी, रेखा ठाकुर जी, राजेन्द्र राव जी, लक्ष्मण शर्मा जी, मेघा जागावत जी, श्वेता गर्ग, डॉ. स्वाति अग्रवाल, मनीषा गुलियानी जी, फिल्म कलाकार-शशि शर्मा जी, नमिता जैन जी, सोनिका चौहान जी, वेणु जैन जी, वीणा सरीन यू.एस.ए. आदि। देश ही नहीं विदेश में भी पं. गिरधारी महाराज जी अपने गुरु पिता जी की कथक विरासत को परिपोषित कर रहे हैं। वर्तमान में "श्री लक्ष्मीनारायण नृत्याश्रम संस्था जयपुर" एवं "त्रिवट एसोसिएशन पेरिस के तत्वावधान" में श्री लक्ष्मीनारायण नृत्याचार्य स्मृति समारोह का प्रतिवर्ष आयोजन किया जा रहा है। इस संस्था में लगभग 300 देशी-विदेशी विद्यार्थी गुरु-शिष्य परम्परा के जयपुर घराने की शुद्ध कथक परम्परा की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। कई विद्यार्थियों को स्कॉलरशिप, फेलोशिप भी दी जा रही है। इनके पुत्र श्री कमल कांत जी और श्री कौशल कांत जी भी अपने पिताजी की तरह अपने दादा जी (श्री लक्ष्मीनारायण

जी) की तबला एवं कथक नृत्य परम्परा का परचम देश-विदेश में फैला रहे हैं। मैं अपने शोध पत्र के माध्यम से जयपुर घराने के कथकाचार्य पं. लक्ष्मीनारायण जी महाराज के सृजनात्मक कार्यों के बारे में बताने का प्रयास करूंगी।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. टांक, डॉ. माया – ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में कथक नृत्य, पृ.सं. 156–157
2. Biswas, Deepika - Classical dance in India, Page No. 197-198.
3. वाजपेयी, रश्मि – कथक प्रसंग, पृ.सं. 151–152
4. बख्शी, ज्योति – कथक रचनात्मक सृजन के आयाम, पृ. सं. 10
5. बख्शी, ज्योति – कथक रचनात्मक सृजन के आयाम, पृ. सं. 92
6. वाजपेयी, रश्मि – कथक प्रसंग, पृ. सं. 153–154
7. वाजपेयी, रश्मि – कथक प्रसंग, पृ. सं. 157
8. महाराज, पं. गिरधारी जी – साक्षात्कार द्वारा शोधार्थी, नवम्बर, 2014
9. कांत, श्री कौशल जी – साक्षात्कार द्वारा शोधार्थी, मार्च, 2015

अहिंसा का प्राच्यकालीन स्वरूप और आधुनिक समाज : एक पर्यालोचन (जैन साहित्य के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ० आशुतोष पारीक

सहायक आचार्य (संस्कृत)

सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

शोधसंक्षेप-

अहिंसा का सिद्धान्त आदिकाल से भारतीय जीवन का अनिवार्य अंग रहा है। अहिंसा का प्राच्यकालीन स्वरूप न केवल सामाजिक था अपितु राष्ट्रीय, वैश्विक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक भी था अर्थात् प्राच्यकालीन अहिंसा का सिद्धान्त वास्तविकता में सम्पूर्ण जीवनशैली का अभिन्न अंग था तथा वर्तमान समाज जहाँ शक्ति एवं हिंसा के माध्यम से स्वयं को प्रतिष्ठित करने की होड़ लगी हुई है, वहाँ प्राच्यकालीन अहिंसा के स्वरूप को पुनः प्रतिष्ठापित करने की नितान्त आवश्यकता है। अतः यह शोधालेख अहिंसा के प्राच्यकालीन उदात्त स्वरूप का आधुनिक समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करने हेतु आपके समक्ष प्रस्तुत है।

संकेताक्षर -

आत्मशान्ति, आत्मवत् सर्वभूतेषु, अहिंसा की प्रतिष्ठा, सर्वोत्तम धर्म, अभयत्व, वसुधैव कुटुम्बकम्, विधेयात्मिका शक्ति।

ओ२म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः

शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः

सा मां शान्तिरेधि। ओ२म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥¹

यही है भारतीय मनीषियों का समस्त सृष्टि के लिए शान्ति पाठ। सृष्टि की शान्ति की कितनी उदात्त भावना है! अहिंसा संस्कृति का प्राण है, धर्म और दर्शन का मूसत्य तो यह है कि आत्मशान्ति ही विश्वशान्ति की आधारशिला है। इसीलिए आत्मशान्ति के लिए किए गए प्रयास स्वयमेव विश्वशान्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। अतः विश्वशान्ति को सक्रिय रूप से जगत् में स्थापित करने के लिए मानसिक, वाचिक और क्रियात्मक अहिंसा के द्वारा स्वार्थभावना का परित्याग करना अत्यावश्यक है। महाभारत के अनुसार अहिंसा ही परम यज्ञ, परम फल, परम मित्र और परम सुख है।² इसी प्रकार अहिंसा सर्वोत्तम धर्म है, वही उत्तम तप है, वही उत्तम दान है।³ जैन आचार्य समन्तभद्र के अनुसार “अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्” अर्थात् अहिंसा ही परमब्रह्म है।⁴ तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार प्रमत्तयोग (प्रमादपूर्वक की गई प्रवृत्ति) के कारण जो प्राणों का व्यपरोपण अर्थात् अतिपात होता है, वही हिंसा है। अहिंसा को समझने का सर्वसरल उपाय है- आत्मसाक्षी। पूर्वकालीन मनीषियों ने हिंसा-अहिंसा का निर्णय करने के लिए एक सशक्त कसौटी प्रदान की है - आत्मवत् सर्वभूतेषु⁵ अर्थात् दूसरों के द्वारा किये जाने वाले जिस व्यवहार को तुम उचित नहीं समझते, वह व्यवहार दूसरों के प्रति करना उचित नहीं है। सामाजिक जीवन जहाँ एक दूसरे प्राणियों के सहयोग से चलता है; वहाँ आपसी हिंसा एवं प्रताड़ना न केवल आत्मिक अपितु सामाजिक शान्ति को भी प्रभावित करती है। अहिंसा सिद्धान्त नहीं है, एक वृत्ति है। यह वृत्ति जितनी व्यापक होगी, उतनी ही अहिंसा अभिव्यक्त होगी।

अहिंसा एक सनातन तत्त्व है। यों तो दुनिया में बहुत से अकार्य हैं, जिन्हें मनुष्य कुसंस्कारवश करता आ रहा है, परन्तु उन सबमें निकृष्ट अकार्य है- प्राणिहिंसा। इसलिए गौतम महर्षि में गौतमकुलक में स्पष्ट कहा है कि प्राणिहिंसा से बढ़कर संसार में कोई अकार्य नहीं।⁶ “जीओ और जीने दो” का नारा खूब चलता है। यह वास्तव में स्वार्थपरक उक्ति है। ऐसा लगता है जैसे पहले हम स्वयं जीएँ और तब दूसरे जीएँ। मानो किसी को जिलाने की हमारी ज़िम्मेदारी नहीं है। “जीने दो” कहकर सिर्फ यह कहा गया कि “मारो मत”। इसके स्थान पर हमारा नारा होना चाहिए “जिलाकर जीओ” क्योंकि दूसरे को जीने का भरपूर अवसर देकर ही

हम जीवित रह सकते हैं। खिलाकर खाने में, पिलाकर पीने में जो स्वाद है, जो रस है, जो तृप्ति है, वही आनन्द जिलाकर जीने में है। इसके बिना जीवन में अहिंसा मूर्त नहीं हो सकेगी। अहिंसा यदि सिर्फ पुस्तकों तक ही सीमित रह जाए तो उसका कोई लाभ नहीं होगा।

अहिंसा के माहात्म्य को स्पष्ट करते हुए महावीर स्वामी ने दशवैकालिक सूत्र में कहा कि धर्म के अनेक अंग हैं, मार्ग हैं; तथ्य हैं किन्तु उन सबमें सर्वप्रथम स्थान अहिंसा का है।⁷ अहिंसा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए स्वयं महावीर स्वामी ने कहा कि जिसे तू मारना चाहता है, वह तेरे समान ही है; जिसे तू आज्ञा देने की इच्छा करता है, वह भी तेरे समान ही है; अतः तू किसी भी प्राणी को न मार, न सता, न किसी को प्रताड़ना प्रदान कर और न किसी को आकुल-व्याकुल ही कर।⁸

सहजीवन, सह अस्तित्व एवं विश्वशान्ति के लिए अहिंसा को सामाजिक आन्दोलन के रूप में स्वीकार करना होगा। विश्वशान्ति के लिए ही पंचशील के सिद्धान्तों की परिकल्पना की गई थी। जिनके अन्तर्गत सहअस्तित्व, अनाक्रमण, सार्वभौमत्व-स्वीकार, अहस्तक्षेप एवं सहयोग को सम्मिलित किया जाता है; और ये पाँचों अहिंसा के ही प्रतिरूप हैं। सम्पूर्ण विश्व अहिंसा के द्वारा ही सच्चे विकास की ओर उन्मुख हो सकता है। यथोक्त मनुस्मृति में मनु के द्वारा कहा गया है कि अहिंसा के द्वारा ही प्राणियों पर किया गया अनुशासन श्रेयस्कर है।⁹ हिंसा द्वारा होने वाला अनुशासन अस्थायी ही होता है।

सत्य कहा है कि अहिंसा एक अमोघ शस्त्र है, जिसके द्वारा सभी समस्याओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है। सच्ची विजय भी अहिंसा के द्वारा ही सम्भव है, जिसमें किसी प्रकार का मनोमालिन्य नहीं रहता है। रागद्वेष की समाप्ति ही सच्ची अहिंसा है। आचारांग सूत्र में भगवान महावीर ने प्ररूपणा की है कि अहिंसा धर्म शुद्ध है, नित्य है और शाश्वत है।¹⁰

मैथिलीशरण गुप्त अहिंसा की स्थापना के लिए करुणा भाव एवं संवेदनशीलता की आवश्यकता के साथ प्रमाद एवं अयतना का त्याग भी आवश्यक है। “परस्परपग्रहो जीवानाम्” सूत्र के अनुसार जीव परस्पर एक दूसरे के उपकारक होते हैं। जिस दान, सेवा और परोपकार आदि में हिंसा होती है वह भी त्याज्य है। जिस प्रकार दूसरों के द्वारा की गई हिंसा हमें अप्रिय लगती है उसी प्रकार अन्य जीवों को भी लगती है। जिस प्रकार तुम मरना नहीं चाहते हो, उसी प्रकार दूसरे प्राणी भी मरना नहीं चाहते हैं अर्थात् सभी प्राणी जीना चाहते हैं। यही नहीं, प्रत्येक प्राणी जीवन के साथ अभय चाहते हैं अर्थात् जिस प्रकार तुम्हें अभय प्रिय है और भय अप्रिय है, उसी प्रकार अन्य प्राणियों को भी अभय प्रिय है और भय अप्रिय, अर्थात् सभी प्राणी अभय चाहते हैं।¹¹ किन्तु हिंसा से अभय का हनन होता है। अतः योगदर्शन में कहा गया है कि “अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः” अर्थात् अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर साधक के समीप सबका वैर-भाव नष्ट हो जाता है।¹²

पवित्र मार्ग का अनुसरण करने वाले को दयालुता नामक दिव्य सद्गुण की साधना अवश्य करनी चाहिए। इसीलिए गीता में स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं “यस्मान्नोद्विजते लोको, लौकान्नोद्विजते च यः”¹³ अर्थात् जो न किसी प्राणि को उद्विग्न करता है और न स्वयं ही किसी अन्य प्राणी के व्यवहार से उद्विग्न होता है वही साधक हो सकता है। अहिंसा की ही श्रेणी में दया एवं करुणा को भी सम्मिलित किया जा सकता है। एक बौद्ध ग्रन्थ में करुणा को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि दूसरों के दुःख में सज्जनों के हृदय को जो कंपा देती है, वह करुणा है, दूसरों के दुःख को जो खरीद लेती है, नष्ट कर देती है, वह करुणा कहलाती है।¹⁴

अहिंसक व्यक्ति ही निर्भयता को प्राप्त कर सकता है। किन्तु पूर्ण अहिंसक बनने के लिए दृढ़ श्रद्धा का होना आवश्यक है। हिंसा केवल किसी प्राणी का स्वभाव है; ना कि चुनाव। किन्तु अहिंसा का चुनाव हमें स्वयं करना पड़ता है। हमने नादिरशाह, स्टालिन और माओ की खाइयाँ भी देखी हैं तो महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट की ऊँचाइयाँ भी देखी हैं। वे दोनों हमारी सम्भावनाएँ हैं। खाइयाँ हमारे अतीत का स्मरण हैं, ऊँचाइयाँ हमारे भविष्य की आकांक्षा हैं। आचारांग सूत्र के एक मात्र सूत्र का अनुसरण ही विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर देता है जिसके अनुसार सभी प्राणी, भूत, जीव व सत्त्वों को न तो मारना चाहिए, न उन पर जबरन शासन करना चाहिए, न उनको दास, गुलाम बनाना चाहिए, न परिताप देना चाहिए, न उनको हैरान करना चाहिए।¹⁵

अहिंसा पालन में मुख्य बाधक इसका विरोधी तत्त्व हिंसा है। हिंसा की जड़ परिग्रह है। बिना परिग्रह को त्यागे पूर्ण अहिंसक होना सम्भव नहीं है। कारण ज्ञानियों ने परिग्रह को मांस के टुकड़े की उपमा देकर बताया है कि जैसे मांस का टुकड़ा कहीं भी सुरक्षित नहीं रह सकता- स्थल पर हो तो कुत्ते, बिल्ली आदि, जल में हो तो कछ-मच्छ व अन्य जलचर आदि तथा नभ

में हो तो गिद्ध, चील, कौए आदि उस पर झपट पड़ते हैं वैसे ही जिसके पास परिग्रह है, उसे कभी कहीं चैन और शान्ति नहीं मिल पाती है।¹⁶

हिंसा कभी भी धर्म नहीं हो सकती। इस विराट विश्व में जितने भी प्राणी हैं वे चाहे छोटे हों या बड़े हों, पशु हों या मानव हों, सभी की एक ही कामना है और वह है जीवित रहने की। जिस दयामय व्यवहार को तुम पसन्द करते हो, उसे सभी पसन्द करते हैं। यही जिनशासन का सार है। आज के व्याप्त सामाजिक प्रदूषण में हिंसा की नहीं, पूर्णतः अहिंसा की आवश्यकता है ताकि जन-जीवन में पारस्परिक प्रेम, सौहार्द और सहानुभूति की भव्य भावना उत्पन्न हो और एक आदर्श जीवन जीने के लिए एक स्वस्थ वातावरण उत्पन्न किया जा सके।

यह वसुन्धरा सबकी है। मनुष्यों की भी, अन्य जीव-जन्तुओं की भी और पेड़-पौधों की भी। हम अपने तुच्छ स्वार्थों से ऊपर उठें तो ही हम सबका निर्वाह करने वाली, हम सबको धारण करने वाली धरती अपनी समस्त जीवनदायिनी शक्तियों और साधनों के साथ सदा सुरक्षित रह सकेगी। वर्तमान सन्दर्भ में भी **वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना ही मानवता की रक्षा कर सकती है।

अहिंसा मात्र वैयक्तिक जीवन अर्थात् घर-गृहस्थी चूल्हे-चक्की तथा धर्मायतनों तक ही सीमित नहीं है, उसका दायरा सामाजिक, सार्वजनिक तथा राष्ट्रीय- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विस्तीर्ण हुआ है। अहिंसा का यह व्यापक स्वरूप बहुआयामी रूप निश्चिततः उपयोगी सिद्ध हुआ है। जीवन को यदि प्रामाणिक बनाना है तो हमें आज नहीं तो कल एक न एक दिन अवश्य ही अहिंसा की शरण में आना होगा। वास्तव में विश्व-कल्याण, शान्ति, एकता, मैत्री और सौहार्दता की प्रगाढ़ अनुभूति अहिंसा में अभिव्यजित है। वस्तुतः अहिंसा के अन्तस् अनगिन अनमोल रत्न जीवन की अनन्तता का उद्घाटन करते हैं। आचार्य विनोबा भावे कहते हैं कि समाज में आज जो मूल्य स्थापित हैं, उन्हें ही हम बदलना चाहते हैं। अहिंसा सिद्धान्त नहीं, एक वृत्ति है। यह वृत्ति जितनी व्यापक होगी, उतनी ही जीवन में व्यक्त होगी। सिद्धान्त बनकर तो अहिंसा मात्र ढांचा ही रह जाती है और हम देख रहे हैं कि अहिंसा को सिद्धान्त मानने के क्या-क्या नतीजे आज इस समस्त विश्व को भुगतने पड़ रहे हैं। वर्तमान सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था में अहिंसा-विचार धीरे-धीरे प्रवेश कर रहा है। ये सभी व्यवस्थाएं देश-काल एवं परिस्थिति के अनुसार आकार ग्रहण करती हैं। यदि समाज में अहिंसा का विचार बल पकड़ता है और संगठित नैतिक ढांचे का निर्माण होता है तो उसका प्रभाव वैश्विक सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक सभी परिदृश्यों पर पड़ेगा।

वैदिकी अहिंसा मानव जाति के ऊर्ध्वमुखी विराट् चिन्तन का सर्वोत्तम विकास बिन्दु है। व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से विश्वबन्धुत्व का जो विकास हुआ और हो रहा है, उसके मूल में अहिंसा की पवित्र भावना काम करती रही है। अतः विश्व शान्ति एवं सामाजिक बन्धु-भाव के लिए हिंसा के ज़हर को उतारकर अहिंसा का अमृतपान करना चाहिए क्योंकि अहिंसा जैसे शाश्वत, नित्य, ध्रुव की शरण में आने से ही व्यक्ति और विश्व की सुरक्षा, समृद्धि और शान्ति निहित है।

अन्त में भवानी प्रसाद मिश्र की कविता की कुछ पंक्तियाँ जो अहिंसा की विधेयात्मिका शक्ति से हमें साक्षात्कार कराती हैं तथा अहिंसा के परिपालन के लिए प्रेरित करती हैं-

अगर साथ्य हम शुद्ध रखें तो
सभी राष्ट्र सम्पूर्ण स्वराज्य भोगने वाले
बन जायेंगे और राष्ट्र छोटे से छोटे
महाद्वीप जैसे राष्ट्रों की तरह
सुखी, निश्चिन्त रहेंगे।
किन्तु तभी जब,
लोकतन्त्र के तट में बंधकर,
स्रोत अहिंसा के निर्मल स्वच्छन्द बहेंगे।¹⁷

सन्दर्भ सूची-

1. यजुर्वेद 36.17
2. अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परमं फलम्।

- अहिंसा परमं मित्रम्, अहिंसा परमं सुखम् ॥ महाभारत - महर्षि वेदव्यास, शान्तिपर्व 115.37
3. अहिंसा परमो धर्मः हि, अहिंसा एव परं तपः।
अहिंसा परमं दानमित्याहुः मुनयः सदा ॥ पद्मपुराण अध्याय 31, श्लोक 27
4. वृहद् स्वयम्भूस्तोत्र - स्वामी समन्तभद्र
5. आत्मवन् सर्वभूतेषु सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
चिन्तयन्नात्मनोऽनिष्टां हिंसामन्यस्य नाचरेत् ॥ योगशास्त्र - श्री हेमचन्द्राचार्य, 2.20
6. न प्राणिहिंसा परमं अकञ्जम्। गौतमकुलक - महर्षि गौतम, जीवनसूत्र 52
7. तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं।
अहिंसा णिउणा दिट्ठा, सब्बभूएसु संजमो ॥ दशवैकालिक सूत्र, 6 गाथा 9
8. तुमंसि नाम सच्चेव, जं हन्तव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम सच्चेव, जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम सच्चेव, जं परितावेयव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम सच्चेव, जं परिघेतव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम सच्चेव, जं उद्देवेयव्वं ति मन्नसि। आचारांग सूत्र 1.5.5
9. अहिंसयैव भूतानां, कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्। मनुस्मृति - आचार्य मनु, 2.159
10. एस धम्मे सुद्धे, णितिए,
सासए सम्मेच, लोयं खेयण्णेहिं पवेइए ॥ आचारांग सूत्र 4.1.1
11. आचारांग सूत्र, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1.1.5.40
12. योगदर्शन - महर्षि पतंजलि, 2.45
13. श्रीमद्भगवद्गीता - महर्षि वेदव्यास, 12.15
14. परदुक्खे सति साधुनं हृदयकम्पनं करोतिति करुणा,
किणाति मा परदुक्खं हिंसति विनासेति, इति करुणा ॥ बुद्धि दिमाग्गः 9.92
15. सब्बे पाणा, सब्बे भूया, सब्बे जीवा,
सब्बे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा,
ण परिधित्तव्वा, ण परियावेयव्वा, ण उद्देवेयव्वा ॥ आचारांग सूत्र 4.2.6
16. सूत्र कृतांग 1.1
17. गांधी पंचशती (कविता-अहिंसा और लोकतन्त्र) - भवानीप्रसाद मिश्र

राजस्थानी कहावतों में कृषि सम्बन्धी नक्षत्र विज्ञान

सुरेश कुमार सांदू (व्याख्याता)

राजकीय कन्या महाविद्यालय,

अजमेर (राज.)

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। यहाँ के धर्मशास्त्रों तक में कृषि की महिमा का वर्णन हुआ है।

कृषिरन्यतमो धर्मो न लभेत कृषितोन्यतः।¹

न सुखं कृषितोन्यत्र यदि धर्मे कर्षति॥ 5.185

अर्थात् कृषि के तुल्य दूसरा कोई धर्म नहीं, कृषि के समान कोई व्यवसाय इतना लाभदायक नहीं। यदि धर्मानुकूल खेती की जाय तो उससे बड़ा कोई सुख नहीं।

भारत की लगभग 80 प्रतिशत जनता खेती पर अपना जीवन व्यापन करती है। राजस्थान में भी आजीविका का मुख्य आधार खेती ही है। जैसे भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों में खेती सम्बन्धी कहावतें प्रचलित है, उसी प्रकार राजस्थान में भी कृषि विषयक अनेक कहावतें सुनने में आती है। खेती-सम्बन्धी जो अनुभव लोगों को हुए, ज्योतिष, खगोल एवं भूगोल का बिना ज्ञान प्राप्त किये भी कहावतों द्वारा किसानों को खेती सम्बन्धी बहुत सी बातों का पता चल जाता है। जो किसान शिक्षा के नाम पर फूटा अक्षर भी नहीं जानते, उनको भी खेती की कहावतें कंठस्थ रहती है। साधारण बोल-चाल की भाषा और छोटे-छोटे शब्दों में गुम्फित होने के कारण इस प्रकार की कहावतों को याद रखना सरल होता है।

राजस्थान में खेती-सम्बन्धी कहावतें विविध रूपों में प्रचलित है। इनकी विषय वस्तु में नक्षत्र, वायु, वर्ष, खेती के उपकरण, जोताई और बोआई, फसल, दुर्भिक्ष आदि होते हैं।

हमारा विषय राजस्थानी कहावतों में नक्षत्रीय ज्ञान है। हमारे 'ब्रह्मर्षि मुनियों, पूर्वजों ने हजारों वर्षों के अनुभव एवं ज्ञान से बहुत ऋतुओं में होने वाले परिवर्तनों का पूर्व ज्ञान प्राप्त किया। इसके लिए उन्होंने खगोल का सहारा लिया। ऋतुओं पर नक्षत्रों का प्रभाव पड़ता है। अतएवं ऋतुओं पर नक्षत्रों का आश्रय लिया गया। उन्होंने नक्षत्र विचार से कृषि के विभिन्न कार्यों के लिए ऐसी तिथियाँ निर्धारित की जिनमें कार्य करने से बहुत प्रकोपों से कृषि की सुरक्षा हो सके। जैसे भारतीय किसानों के लिए तो आद्रा नक्षत्र धान की खेती के लिए एवं चित्रा नक्षत्र गेहूँ की खेती के लिए सबसे बड़ा थर्मामीटर है। वर्षा ऋतु के सात नक्षत्र माने गये हैं जो आद्रा से शुरू होकर हस्त नक्षत्र तक रहते हैं। राजस्थानी भाषा में कृषि के सम्बन्ध में प्रचलित कुछ नक्षत्र विषयक कहावतों इस प्रकार हैं -

¹पराशर-स्मृति 5.185

अक्खा रोहण बायरी, राखी सरबन न होय¹**पो ही मूल न होय तो, म्ही डूलंती जोय।।**

अक्षय तृतीया पर रोहिणी नक्षत्र न हो, रक्षा बन्धन पर, श्रवण नक्षत्र न हो और पौष की पूर्णिमा पर मूल नक्षत्र न हो तो संसार में विपत्ति आयेगी। उर्युक्त कहावत में तिथी विशेष पर विशेष नक्षत्र के होने से कृषि सम्बन्धी भविष्यवाणियां की गई है। जो कि हर बार सत्य की कसौटी पर कसी जाती रही है।

आदरा भरै खादरा, पुनरबसु भरै तालाब¹**न बरस्यौ पुषै तो, बरसै ही घणा दुखै।।**

सूर्य के आद्रा नक्षत्र में प्रवेश की साथ ही वर्षा ऋतिआद्रा नक्षत्र में वर्षा हो तो खड्डें खोचरे पानी से भर जायेंगे। अर्थात् आद्रा नक्षत्र में सामान्य वर्ष होती है। पुनरबसु नक्षत्र में तालाब लबालब हो जाते हैं। और पुष्य नक्षत्र में वर्षा न होने पर फिर मुश्किल से ही बरसात हो पाती है। उपर्युक्त कहावत में वर्षा की अधिकता एवं न्यूनता बताई गयी है।

अगस्त ऊगा मेह न मंडे।**जो मंडे तो धार न खंडे।।**

अर्थात् अगस्त का तारा उदय होने पर प्रायः वर्षा नहीं होती है जो कि खगोलिय सत्य है। लेकिन यदि अगस्त के तारा उदय होने पर वर्षा होती है तो फिर खूब जोरों से वर्षा होती है।

असलेखा बूठा, बैदां धरे बधावणा¹

यदि अश्लेखा नक्षत्र में वर्षा हो तो डॉक्टरों एवं हकीमों के घर बधाई बंटे। अर्थात् अश्लेखा नक्षत्र में वर्षा होती है तो रोगों का विस्तार होता है।

कृतिका करे किरकरो, रोहिणी काळसुकाळ¹**थे मत आओं मृगशिरा, हड़ हड़ करती काळ।।**

श्रावण कृष्ण एकादशी के दिन यदि कृतिका नक्षत्र हो तो साधारण काल पड़ता है, अगर रोहणी नक्षत्र हो तो अच्छा जमाना (अच्छा कृषि उत्पादन) होता है। हे मृगशिरा नक्षत्र! तुम एकादशी के दिन कभी न आना नही तो भयंकर दुर्भिक्ष पड़ेगा। उपर्युक्त कहावत में श्रवण कृष्ण एकादशी के दिन कृतिका, रोहणी और मृगशिरा नक्षत्र के होने के परिणाम बताया गये।

1, 2, 3 राजस्थानी कहावतों में वर्षा - डॉ. विक्रम सिंह राठौड़।

4, 5, 6, 7, 8, 9 राजस्थानी हिन्दी कहावत कोश (12 भाग) - पदम श्री विजयदान देवा।

चित्रा दीपक चेतवे, स्वाते गौवरधन⁶

डंक कहे है भड्डली, अथग नीपजे अन्न॥

यदि चित्रा नक्षत्र में दिवाली में और गोवरधन पूजन के समय स्वाति नक्षत्र होतो खूब अन्न उपजेगा। अर्थात चित्रा और स्वाती नक्षत्र दिपावली पर होने पर कृषि के लिए अत्यन्त शुभ माना गया है।

जेठ सुदी पडवा दिवस हिरणी नखत ज होय⁷

वायु थंभ इणनै कहयौ जोरा चालै वाय॥

जेठ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को यदि हिरणी नक्षत्र हो तो यह वायु का स्तम्भ है। हवा ज्यादा तेज चलेगी और वर्षा कम होने की सम्भावना रहेगी।

जे पुरवा लावै पुरवाई,⁸

तो सुखी नदियां नाव चलाई॥

पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र पर सूर्य के रहते हुए यदि पुरवा हवा चले तो इतनी अधिक वर्षा होती है कि सुखी नदियों में भी नाव चलने लगे।

जे बरसे मघा तो धान रा ढगा⁹

यदि मघा नक्षत्र में वर्षा हो तो उत्पादन बहुत अच्छा होता है।

जे बरसे उत्तरा¹⁰

तो धान न खावे कुतरा॥

सूर्य के उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में आ जाने पर वर्षा होती है तो, इतना अधिक अन्न उत्पन्न होगा कि कुत्ते भी नहीं खायेंगे।

जे बरसै पुनरबसु अर स्वात¹¹

ना चालै चरखो, न चालै तांत॥

पुनर्वसु या स्वाति नक्षत्र पर सूर्य के रहते वर्षा होने पर कपास पैदा नहीं होता इस लिए न चरखा चलेगा और न ही धुनिया की तांत।

^{10,11,12,13,14,15,16} राजस्थानी कहावत कोश - भागीरथ कानोड़िया, गोविन्द अग्रवाल।

दीवा बीती पंचमी, सोम शुकर गुरु मूल ।¹²

डंक कहे हे भड्डली, निपजे सांतू तूल ।।

कार्तिक शुक्ल पंचमी को यदि मूल नक्षत्र में सोम, वृहस्पति और शुक्र हो तो सातो प्रकार का धान खूब निपजेगा ।

बरसै भरणी, छोड़े परणी ।¹³

यदि भरणी नक्षत्र में वर्षा होवे तो पति अपनी पत्नी को छोड़ भागे

अर्थात् अकाल पड़ने के कारण पति को कमाने हेतु परदेश जाना पड़ेगा ।

मघा में मेह बरसियां ।¹⁴

धान में घणैरो होय ।।

मघा नक्षत्र में वर्षा होने पर अन्न खूब पैदा होता है ।

मघा रो बरसणौं ।¹⁵

अर मारो परसणौं ।।

मघा नक्षत्र में होने वाली बरसात मों के परौसने के समान संतोषकारी व हर्ष दायक होती है ।

रोहिण तपे, मिरग बाजे, आदर अण छीतरा गाजे ।¹⁶

जै आदर पडिया बाव, ते झूपड़ झोला खाय ।।

रोहणी नक्षत्र में धूप, मिरग नक्षत्र में हवा, आद्रा नक्षत्र में बादलो का गजन होतो अच्छा बरसात होती है यदि आद्रा नक्षत्र में जोर की हवा चले तो भंयकर अकाल की संभावना रहती है झौपड़े सूने पड़ जाते है । सूर्य जब चंद्रमा के नक्षत्र रोहिणी में आता है तो सूर्य की तपन ज्यादा बढ़ जाती है । सूर्य की गर्मी और रोहिणी के जल तत्व के कारण मानसून गर्भ में आ जाती है ।

रोहण रेली तो रुपये की अधेली ।

रोहणी नक्षत्र में यदि वर्षा होतो रुपये की अधेली मिलेगी । अकाल पड़ेगा ।

सांवण बढ एकादशी, जितनी रोहणी होय ।

वितणूं समय विचारिये, जे कोई पंडित होय ।।

यदि श्रावण कृष्ण एकादशी के दिन जितनी घड़ी एकादशी हो, उतनी घड़ी रोहिणी नक्षत्र हो तो जमाना अच्छा होगा । अगर रोहिणी का काल भाग कम हो तो जमाना उतना ही न्यून होगा ।

सुद पडवा आसाड री पुनरवसु रिख होय।

थंभ अन्न रो ओ सिरै धान घणेरो होय।।

यदि आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को पुनरवसु नक्षत्र हो तो यह अन्न का स्तम्भ मना जाता है। उस वर्ष वर्षा अच्छी होगी तथा अनाज भी बहुत पैदा होगा।

सुदपडवा बैसख री भरणी नखतज आय।

जाणी जैत्रिण थंभ तो, घास घणौ निपजाय।।

यदि बैशाख मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को भरणी नक्षत्र आये तो यह घास का स्तम्भ माना जाता है। उस वर्ष घास बहुत पैदा होगी।

छः ग्रह एक रास पर आवै।

महाकाल नै नूत न लावे।।

एक राशि पर छः ग्रह एकत्र हो तो घोर दुर्भिक्ष पड़े अथवा माह विनाश हो।

सांमां सुकरां सुरगुरां, जे चंदो ऊगंत।

डंक कहे हे भड्डली जल थल एक करंत।।

यदि आषाढ़ में चंद्रमा सोमवार, वृहस्पतिवार या शुक्रवार को उदय हो तो बड़े जोर की वर्षा होगी।

मंगल रथ आगे हुवे, लारे हुवे जो भान।

आरंभिया यूं ही रहै, ठाली रैवे निवाण।।

यदिसूर्य के आगे मंगल हो तो सारी आशाओं पर पानी फिर जायेगा और तालाब सूखे ही पड़ेंगे।

सूरज कुंड अर चांद जलेरी।

टूटा टीबा भरगी डैरी।।

यदि सूर्य के चारो और कुण्ड हो और वैसे ही चन्द्रमा के चारों और जलेरी हो तो इतने जोर से वर्षा होगी की टीले टूटकर पानी के साथ बह जायेंगे। और सरोवर पानी से भर जायेंगे।

उपर्युक्त राजस्थानी कहावतों में विभिन्न नक्षत्रों को उल्लेख हुआ जिनका कृषि पर विशेष प्रभाव पड़ता है। वार एवं तिथी विशेष को विशेष नक्षत्रों के आगमन का कृषि पर अच्छे एवं बुरे प्रभावों को अंगित किया गया जो कि कृषि सम्बन्धी पूर्वानुमानों में कृषकों के मददगार साबित होते हैं।

भारतीय कृषि विज्ञान में खगोल एवं भूगोल का सममिश्रण है व अनुपम और अद्वितीय है। किन्तु यहाँ यह अवश्य कहा जायेगा कि हमारी भागौलिक और खगोलिक अवस्था में भी तो थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ है इस लिए तिथी-नक्षत्रों आदि के आधार पर बनी कहावतें सम्भवतः कसौटी पर पूरी न उतरे पर इसी कारण उनका महत्व कम नहीं हो जाता। आज की वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त किया हुआ ऋतु-ज्ञान भी तो सौलेहों आना सही नहीं होता। ऋतु-विज्ञान विभाग से प्रकाशित होने वाली विज्ञप्तियां भी कभी कभी असत्य होती है।¹⁷

संदर्भ

1. राजस्थानी हिन्दी कहावत कोश (12 भाग) - पदम श्री विजयदान देथा।
2. राजस्थानी कहावतें - डॉ. कन्हैयालाल सहल।
3. राजस्थानी कहावते एक अध्ययन - डॉ. कन्हैयालाल सहल।
4. राजस्थानी कहावत कोश - भागीरथ कानोडिया, गोविन्द अग्रवाल।
5. राजस्थानी कहावतों में वर्षा - डॉ. विक्रम सिंह राठौड़।
6. मेवाड़ की कहावतें - डॉ. लक्ष्मीलाल जोशी।
7. मारवाड़ी कहावते - श्यामसुन्दर जोशी।
8. हाड़ौती कहावतें - नाथूलाल पाठक।
9. राजस्थानी कृषि कहावते (भाग-4) - जगदीश सिंह गहलोत।
10. राजस्थानी कहावतें (4 भाग) - मनोहर सिंह राठौड़।
11. लोक विरासत खरी कहावतें - हरदान हर्ष।
12. कहावती कथाएं (कहावतों के साथ कथाएं) - पदमश्री विजयदान देथा।
13. कहावतों की कथाएं - सी.ए. पूजा सिंघवी।
14. जाटों की कहावती कथाएं - लखन लाल।
15. प्रेरक कहावत कथाएं - दीपाली भण्डारी।
16. राजस्थानी कहावतें मारवाड़ की सांस्कृति धरोहर - दिनेश चन्द्र ओझा।
17. राजस्थानी कहावते (दो भाग)-प्रो० नरोत्तम स्वामी, पं. मुरलीधर व्यास।
18. इन्टरनेट।

¹⁷ इन्टरनेट।

Inculcation Of Values Through Education

Yogendra Kumar

Lecturer Economics

Govt. Girls' college, Ajmer

Abstract:

Value education, as it is generally used, refers to a wide gamut of learning and activities ranging from training in physical health, mental hygiene, etiquette and manners, appropriate social behaviour, civic rights and duties to aesthetic and even religious training. In the present scenario, the need for values education is a burning and important issue for quality education. The human value in practical life is deteriorating day by day. The Indian educational society is nowadays fighting with problems like indiscipline, characterlessness. Young people are decreasingly concerned about contributing to the welfare of human beings. This paper deals with aim and concept of value education. It also discusses Global Scenario of Value Education, Pedagogy Of Values and Imbibing Values Through Curricular and extra co-curricular Activities

Key words- Education, knowledge, Pedagogy, Values, Intellectual, Global

If you are planning for a year, sow rice

If you are planning for a decade, plant trees.

If you are planning for a lifetime, educate people

Swami Vivekananda said "we want that education by which character is formed, strength of mind is increased, the intellect is expanded, and by which one can stand on one's own feet". Education is very essential for all rounds for all type development of child education has always been linked with society. It has both a personal and social dimension, and like the two sides of same coin. They are inseparable. According to Gandhi ji, real education did not consist in packing the brain with information facts and figures or in passing examinations by reading prescribed number of books, but by developing right character.

In present scenario the need of values education is a burning and important issue for quality education. The human value in practical life is deteriorating day by day. However the blame of deterioration cannot be fully associated with education. The situation in the country was not but before independence. Rather, people of the country were so value oriented that they sacrificed their lives for the independence of their nation and the protection of their cultural values. The Indian educational society is now a days fighting with problems like indiscipline, characterlessness. Young people are decreasingly concerned about contributing to the welfare of fellow human beings. Every part of the society is affected by the evils of the educational society.

National policy on education (1986) says, “In a culturally plural society, education should foster universal and eternal values oriented towards the utility and the integration of people.” Such capital value education should help eliminate obscurantism, religious fanaticism, violence, superstition and fatalism. Besides, value education has profound positive see content based on our heritage, national goals and universal perception in order to achieve this read education, and children should learn certain values at the very initial stage of their learning process. Today we are living in a world of paradox. On the one hand, science and technology are advancing very fast while, on the other hand, most societies are facing problem of alcohol and drug abuse, mental illness, stress, crime etc. If we want to develop values among or students first of all we have to develop values among teachers also.

The inculcation of values through value education is supported by various education committees and commissions. The Report of the University Education Commission (1962) noted, “If we exclude spiritual training in our institutions, we would be untrue to our whole historical development.”

The education commissions (1964-66) suggested ‘inculcation of value in students by introducing work experience in general education. The National Policy on Education (1986) expressed concern over “the erosion of essential values and an increasing cynicism in society”. It advocated turning education into a “forceful tool for the cultivation of social and moral values.” Education should “foster universal and eternal values, oriented towards the unity and integration of our people”. The national policy on education (1986) in addition to giving impetus to vocational education, also recommend’ education of value in students’. The parliamentary standing committee on human resource development(1999) also emphasized the need to included, value-based education in curriculum and also the teacher’s training programmed.’ The Government of India’s report on Value Based Education (Chavan’s Committee Report, 1999) submitted in both houses of Parliament, provided impetus to resume work on value orientation of education.

In spite of these recommendations and efforts being made by the educational institutions, the situation is deteriorating day by day. A lot of factors are responsible for this deterioration e g, unemployment, insecurity in life, poverty, materialistic consumerist thinks. Globalization and modernization are important challenges before education. Modernization increased the physical aspect of education and in doing so, the spiritual aspect has been lost somewhere.

Values

The term ‘value’ comes from the Latin word, ‘valere’ which means to be worth, to be strong. The dictionary gives the following meaning: relative worth, utility or importance, degree of excellence, something intrinsically valuable.

In other words Values are those standards or codes of conducts which are conditioned by one's culture tenets, guided by conscience, according to which one is supposed to conduct him self shape his life pattern by integrating his beliefs, and attitudes with a view to realize.. High values lead to objective, fair and correct decision and action and ensure the welfare of all concerned. While low values do exactly the opposite, values are essential for the development of the whole person, recognizing that the individual is comprised of physical, intellectual, emotional and spiritual dimensions

Global Scenario of Value Education

Over the past two decades, colleges and institutions have devoted energy and resources to a wide range of educational programmes and initiatives designed to promote character values and behaviours in their students (Dalton and Crosby, 2010). Value education forms a part of the curriculum in different educational settings across the globe. Countries like India, Australia and Singapore lay a strong emphasis on imparting value education through well defined curricula and syllabi.

In Singapore, values education forms a part of the Pre University Civics syllabus (MOE, 2010). The revised Pre-University Civics Syllabus is based on the central theme, making a Difference. The focus is on engaging students to play an active role in helping to improve the quality of civic life in the community and to take the lead in service to others.

The Indian national policy on education (1986) as modified in 1992, considered value education as an integral part of education and noted that (UGC, 2010):

“The existing schism between the formal system of education and the country's rich and varied cultural traditions needs to be bridged. Education can and must bring about the fine synthesis between change oriented technologies and the country's continuity of cultural tradition. The curricula and processes of education will be enriched by cultural content in as many manifestations as possible. In our culturally plural society, education should foster universal and eternal values, oriented towards evaluating the Impacts of Value Education.

The unity and integration of our people. Such value education should help eliminate obscurantism, religious fanaticism, violence, superstition and fatalism. Apart from this combative role, value education has a profound positive content, based on our heritage, national and universal goals and perceptions. It should lay primary emphasis on this aspect. The growing concern over the erosion of essential values and an increasing cynicism in society has brought to focus the need for readjustments in the curriculum in order to make education a forceful tool for cultivation of social and moral values.”

In Australia the value education helps students understand and be able to apply values such as care and compassion; doing your best; fair go; freedom; honesty and trust worthiness; integrity; respect; responsibility and understanding; tolerance and inclusion (Values education, 2010)

Aim of Value Education

From broader perspective, the aim of value education is linked with the fundamental question of what education itself is meant for. From individual's perspective, the purpose is to enable students achieve personal fulfillment for success in life and work. From societal perspectives, education aims to prepare young people to contribute to the society/nation and world around. In neither case however, education is to be perceived as an outcome but as an experience in itself, which will enable student to live safe, healthy and fruitful life and become responsible citizens who make positive contributions to the society.

Education for values aims at promoting broader capabilities, attitudes and skills that matter not just in schools but also life beyond schools & college, making the world a better place not just for themselves but also for their family, friends, colleagues and others. Education for values underpins the understanding that values are to be inculcated in students not just, for their own interest but also for the common good reflecting the balance between individual's interest and larger interest. The focus therefore can not only be improving of academic knowledge, practical and technical skills mostly tied to market needs and employability but also holistic education focusing on the emotional and relational skills conducive to health and wholeness of the society and the nation. The aim of holistic development of students can thus be located in education for values.

Education in values also prepares student for the world of work. The attitudes and values of hard work, discipline, cooperation, communication skills etc. enable them to develop healthy interpersonal relationships at home and in school which in turn facilitates their better adjustment on the job. The employers too look for these qualities in their prospective employees. It is a common observation that the advancement in a career depends not only on the intellectual abilities but also the ability to sustain hard work, assume responsibility and ability to work in teams and cooperate with others. While educational qualification helps to enter a job, efficiency to deliver in a job is often dependent on qualities of perseverance, cooperation, genuineness, hard work, communication and relationship skills.

The capacity to listen patience, endurance, cooperation, team work, positive attitude towards study, work and life are the hallmarks of a good student or a person. So values, in fact, promote both academic as well as human excellence. In this sense education for values humanizes education.

At the societal level, education for values aims at promoting social cohesion and national integration for transforming societies, nations and creating a better world. It can contribute to create

the aspiration for transformation of the culture of war, violence and greed into a culture of peace; where people learn and understand more about each other's uniqueness, human rights and fundamental freedom; where people learn to care and share to live together in a just, peaceful and compassionate society both in their immediate contexts and in the world at large.

Pedagogy of Values

Pedagogy refers to the art and science of teaching, the way teachers accompany learners in the process of their growth and development. It is not just about teaching the subject content but the entire gamut of relationships, processes and strategies which are designed to enhance learning

The pedagogy of values has to be different from the conventional pedagogy based on the Banking Model of Education which places greater emphasis on contents instead of the learner. The banking model of education focuses on the teacher as the principle source of a student's knowledge. Students are empty vessels into which knowledge must be poured. At the end of the year, an examination is set out to see how much of knowledge, the student has retained. This kind of model provides major attention to the teacher who stands at the front, and children are the audience, who sit in respect, full of silence, facing the teacher. Interaction between the teacher and the student is minimal. The pedagogy for values is grounded on the philosophy that children construct their own theories of how the world works, though their minds are less developed than those of educated adults. Teaching for values is not like teaching any other subject. It is about teaching the learner how to think about something, to reflect, critically evaluate, appreciate one's own values and those of others, develop better communication, better decision-making so that the concepts ultimately find their ways into behaviours and actions. It is not confined to the cognitive level but covers the affective and behavioural levels. Attitudes, values and skills cannot be developed by forcing students to memorise words, and also not by impositions. Experiences and opportunities must be given to internalise such attitudes and values, which can be sustained in the long run. The learner can only then take a conscious decision of practising values, consciously and responsibly.

The pedagogical demand for such a kind of learning is thus to move away from the traditional banking model to an experiential or participatory model. This model assumes that it is not what you teach but how you teach, that is important, and that is the essence of education for value

Imbibing Values through Curricular Activities

Values cannot be through in this same way as lessons of information values oriented education cannot be seen something to do with a long list of does and does not. Here the roles of the teacher educator become very important. The teacher educator has to put the student on the right track and encourage them by providing suitable suggestion and merely imposing or interfering. Every subject can be a means of building good character and values some examples are following:-

- Language - In language through conversation and discussion the teacher educator can enable students to embody higher and noble ideas.
- Social science-In social science we can develop values like secularism, socialism hard work and democracy.
- Geography - In geography we can develop values of conservation, preservation and adventure etc.
- Economics- In economics teacher educator can lay emphasis on the values of thrift and saving, which leads to the prosperity of economy.
- Civics- In civics we can develop values of cooperation, spirit and sense of mutual welfare, obedience of law concern for environment etc.
- Science - Every things in nature has a lesson to learn. For example, we can say while blowing up a balloon, if person blow a too much air into it, it will burst. Similarly if we are too greedy and acquire more material wealth sooner or later, we will have problems.
- Mathematics- In mathematics wide scope of imparting values like neatness, accuracy and proper planning etc.
- Economics – In economics teacher educator can lay emphasis on the values of thrift and saving, which leads to the prosperity of economy.

so we can say that education and values go hand in hand and values are inherent in every module of learning co-curricular can serve as a sound base for the inculcation of values among student teacher.

Imbibing Values through Co-Curricular Values

Active participation in co-curricular in co-curricular activities arouses curiosity, creates, creates interest curiosity, creates interest and imbibes values. Co-curricular activities occupy a vital place in teacher education. Some of the co-curricular activities into which values can be easily integrated are sports, games, drama, debate, poetry, field trips, art and craft etc.

- Morning assembly- Morning assembly has a scope for value education at a wide spectrum thought for the day and a few resolution can be said during the assembly in order to help the teacher student think positively.
- Group work- Group activities like sports, games, role play, quiz promote human values among teacher students.
- Clubs- College clubs like science club, radio club, debating club, chemistry club reinforces the values that have been imparted in the class room through discussion and seminars etc.
- Group discussion- Group discussion, debates and practice session of public speaking should be conducted in the campus on the erosion caused to values in modern life.

Teacher educator should encourage students to maintain wall newspaper and news bulletins, other activities like observance of important days or week such as the independence day, the republic day, literacy week, hindi pakhwada etc. which help in generating a sense of national integrity and social awareness.

Conclusion

Education is a “men-making” process, said swami Vivekananda. It is a multidimensional process with the specific purpose of achieving maximum self realization for the person. Value make man supreme creature in the universe. Value education gives knowledge, strength and creativity. India is a fourth largest economy in the world. The youth population is also very high. By proper using of science & technology and human & natural resources India - ‘will become developed country in the world.

Values base education can strengthen student’s self-esteem, optimism and commitment to personal fulfilment and help student’s exercise ethical judgment and social responsibility. If the young generation does not feel rooted to the nation, there may be severe economic repercussions in the future. Value education is like oxygen for suffocating educational system.

References

- 1 Singh C. “Evaluating the Impacts of Value Education: Some Case Studies” *International Journal of Educational Planning & Administration* Volume 1, Number 1 (2011), pp. 1-8
- 2 Sahni S; values Orientation to higher education: integrating values in. commerce education, university news. 45(24) June 11-17, 2007 pg 16-20
- 3 Dalton, J. C., & Crosby, P. C. (2010). "How we teach character in college: A retrospective on some recent higher education initiatives that promote moral and civic learning" *Journal of College & Character*, 11(2), 1-10.
- 4 Verma Y, education in human values for human excellence; kanikshka publisher distributors, New Delhi, 2007, pg 96-97.
- 5 UGC (2010). “National Policy on Education 1986: As modified in 1992.” <http://education.nic.in/policy/npe86-mod92.pdf> (Accessed on 05.08.2010).
- 6 Lovat, Terence J. and Clement, Neville D. (2008). “The pedagogical imperative of values education”, *Journal of Beliefs & Values*, 29: 3, 273 –285.
- 7 MOE (2010) “Revised Pre University Civics Syllabus” <http://www.moe.gov.sg/education/syllabuses/aesthetics-health-and-moraleducation/files/civics-pre-university-2007.pdf> (Accessed on 12.08.2010).
- 8 Seshadri, C. (2005). “An approach to value orientation of teachers’ education” *Journal of Value Education*, NCERT, January and July 2005 issue, pp 9-17.

नगरीय समस्या “भिक्षावृत्ति ” का समाजशास्त्रीय अध्ययन

चेतन लाल रेगर

व्याख्याता-समाजशास्त्र

श्री प्र.सि.बा. राजकीय महाविद्यालय ,शाहपुरा भीलवाड़ा

भारतीय समाज में भिक्षावृत्ति का व्यवसाय बहुत पुराना है । प्राचीन काल में भिक्षावृत्ति सामाजिक समस्या न होकर सामान्य परम्परा रही है , लेकिन वर्तमान समय में इसने सामाजिक समस्या का रूप धारण कर लिया है प्राचीन भारत में विद्यार्थियों , सन्यासियों एवं ब्रह्मचारियों को भीख मॉंग कर खाने का विधान था । आश्रम व्यवस्था एवं गुरुकुल व्यवस्था में विद्यार्थी समीप की बस्तियों में जाकर भीख मॉंग कर लाते थे । धीरे-धीरे यह भिक्षा से निकलकर धर्म से सम्बन्धित हो गयी और धर्म में दान के सिद्धान्त ने इसे बढ़ावा दिया । समाज का एक वर्ग अपनी आजीविका के रूप में इसे अपनाने लगा । एक समय तो ऐसा भी आया जब भीख मॉंगने वाले का स्थान भीख देने वाले से भी ऊँचा हो गया ।

वर्तमान में स्थितियाँ बदल गयी है । अब भिक्षावृत्ति धर्म से निकल कर आर्थिक पक्ष से सम्बन्धित हो गयी है ।कुछ लोगों का भिक्षावृत्ति व्यवसाय एवं आजीविका का साधन बन गयी है 'एक अनुमान के अनुसार भारत में ही लगभग बीस लाख लोग इसे किसी न किसी रूप में अपनाये हुए है । भारतीय समाज में अंग्रेजों के शासन काल के बाद से ही इसमें तीव्र वृद्धि हुयी है ।इस काल में भारत की परम्परागत कृषि अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तनों ने बहुत से लोगों को बेरोजगार बनाया । इनमें से अनेकों ने भिक्षावृत्ति को ही अपनी आजीविका का साधन बना लिया । यूरोपीय देशों में भी भिक्षावृत्ति का विस्तार औद्योगिक क्रांति के बाद ही हुआ है । विश्व के अविकसित तथा विकासशील समाजों में भिक्षावृत्ति एक सामाजिक समस्या के रूप में उभर रही है ।

आज भिक्षावृत्ति समाज के आर्थिक विकास में एक बाधक तत्व माना जाने लगा है । भिक्षावृत्ति ने लाखों व्यक्तियों को अकार्यकारी बनाकर समाज पर बोझ को बढ़ा दिया है। भिखारियों का स्वास्थ्य-स्तर भी अच्छा नहीं होता हैं , इससे न केवल जनसंख्या के स्वास्थ्य का स्तर गिरता हैं बल्कि आने वाली पीढ़ी भी बर्बाद हो जाती हैं ।

भिक्षावृत्ति का अर्थ : साधारण शब्दों में 'भिखारी वह व्यक्ति है जो भीख या दान को अपनी आजीविका के रूप में अपनाता हैं। इसके लिए वह घर-घर घूमने से लेकर अपनी आवश्यकताओं , शारीरिक दोषों एवं धर्म का सहारा लेता हैं । ' मुम्बई भिक्षावृत्ति अधिनियम 1945 के अनुसार , 'एक व्यक्ति , जिसके जीवनयापन का कोई साधन है और जो इधर -उधर घूमता रहता है या सार्वजनिक स्थानों पर पाया जाता है अथवा भीख मॉंगने के लिए अपने प्रदर्शन को स्वीकार करता है , भिखारी है ।' केन्द्रीय बाल अधिनियम 1960 में भिखारी की परिभाषा में तीन तत्वों को सम्मिलित किया है ।

1-जिसकी आजीविका का साधन भीख मॉंगना हो ,

- 2- जिसके जीवनयापन का साधन स्वच्छन्द हो और,
- 3- जो भीख माँगने के लिए सार्वजनिक स्थानों में घूमता हो ।

उपर्युक्त परिभाषाओं से भिक्षावृत्ति में निम्न विशेषताएँ देखने को मिलती है

- 1- भिक्षावृत्ति भिखारी के लिए एक व्यवसाय है ।
- 2- वह उसकी आजीविका का साधन है ।
- 3- इसके लिए भिखारी अनेक साधनों का प्रयोग करता है ।
- 4- भिक्षावृत्ति सार्वजनिक स्थानों पर होती है ।
- 5- भिक्षा में दानदाता पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाला जाता है ।

यह आवश्यक नहीं है कि भीख माँगने के लिए सार्वजनिक स्थानों का ही उपयोग हों , बहुत से भिखारी घर-घर जाकर भी शय्य कार्य करते हैं । जैसे शनिवार को शनि देवता के नाम पर घरों पर भीख माँगते हैं । भीख माँगने के लिए भिखारी शरीर का प्रदर्शन इस प्रकार से करते हैं कि उससे प्रभावित होकर लोग उसे कुछ देते ही हैं । अनेक मामलों में भिखारी कुछ वाक्यों को बोलते हैं । जिन से प्रभावित होकर लोग उन्हें भीख देते हैं । परन्तु अनेक मामलों में यह आवश्यक नहीं है कि वे किन्हीं साधनों का प्रयोग करें ही । कुछ भिखारी केवल व्यक्ति के सामने हाथ भर फैलाते हैं और उन्हें भीख मिल जाती है ।

भिक्षावृत्ति अब भी वस्तुतः नगरीय समाजों की समस्या अधिक है । नगरीय समाजों में जहाँ धार्मिक एवं पर्यटक स्थल हैं , वहाँ यह अधिक पनपती है । ग्रामीण समाजों में भिक्षावृत्ति अभी भी परम्पराओं से जुड़ी है तथा इसने इतना गंभीर रूप धारण नहीं किया है नगरीय समाज में अनजानापन, विस्तृत क्षेत्र , नगदी के रूप में भीख मिलना , पर्यटक एवं धार्मिक स्थलों का होना , ऐसे कारक हैं जो भिखारियों को नगरों की ओर आकर्षित करते हैं । बेरोजगार व्यक्ति जो नगरों में रोजगार के लिए आते हैं , रोजगार के अभाव में भिक्षावृत्ति को अपना लेते हैं । नगरीय जीवन की चहल-पहल भी भिखारियों को अपनी ओर आकर्षित करती है । नगरीय क्षेत्रों में सड़क के किनारे की खाली जमीनें , पानी आपूर्ति के टूटे बड़े पाईप , रेल्वे प्लेटफार्म , ओवर ब्रिज आदि इनके आश्रय स्थल का कार्य करते हैं , जिनका गाँव में अभाव होता है ।

भिक्षावृत्ति के कारण

भिक्षावृत्ति पर अभी पर्याप्त अनुसंधान नहीं हुआ है , जिससे इसके कारणों में पूर्ण स्पष्टता नहीं आ पायी है । भिक्षावृत्ति की प्रक्रिया में दो पक्ष सम्मिलित होते हैं । प्रथम , भीख माँगने वाला भिखारी एवं दूसरा भीख देने वाला जिसे 'दाता' भी कहा गया है । दोनों की सहमति से ही भीख की घटना की क्रियान्विति होती है । इसलिए भिक्षावृत्ति कारणों में दोनों ही

पक्षों को सम्मिलित करना होगा । डॉ. राधा कमल मुखर्जी इसके कारणों में कृषक श्रमिकों की भूमि से बेदखली मानते हैं । जिन श्रमिकों को रोजगार नहीं मिला उन्होंने इसे अपना लिया । ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि भारत जैसे धर्म प्रधान देश में भिक्षावृत्ति का सबसे प्रमुख कारण धर्म एवं परम्पराएँ रही हैं । संक्षेप में भारत में भिक्षावृत्ति के लिए निम्न कारणों को उत्तरदायी माना जाता है -

- 1- **धार्मिक-कारण** :- भारतीय समाज में धर्मभीरु लोगो का व्यवहार इस लोक से कम और पारलौकिक दुनिया से अधिक प्रभावित होता है । लोग अपने परलोक को सुधारने के लिए दान पुण्य के नाम पर भिक्षा देते हैं । धार्मिक स्थलों पर लाखों भिखारियों को भीख केवल धर्म के नाम पर ही मिलती है ग्रामीण ही नहीं नगरीय लोग भी धार्मिक स्थलों की यात्रा के समय भिखारियों को भीख देकर अपना अगला जीवन सुधारने का प्रयास करते हैं । धर्मग्रंथों में भी भीख का प्रावधान है तथा दान को सबसे बड़ा धर्म माना गया है ।
- 2- **आर्थिक कारण** - भिक्षावृत्ति को अपनाने का यह भी एक प्रमुख कारण माना गया है क्योंकि कि वर्तमान समय के बदलते आर्थिक ढाँचे ने रोजगार के अवसरों को कम किया है जिससे लोग बेरोजगारी की स्थिति में अपना पेट पालने के लिए भिक्षावृत्ति को ही अपना व्यवसाय अपना लिया है ।
- 3- **सामाजिक कारण** :- सामाजिक व्यवस्था में कुछ जातियों के लिए भीख मँगने की परम्परा रही है भिक्षुक जाति के लोग भिक्षा पर ही निर्भर रहते आये हैं ये अन्य व्यवसायों को नहीं अपनाते । टूटे परिवार भी इनमें योगदान देते हैं ।
- 4- **व्यक्तिगत कारण** :- शारीरिक अयोग्यता ,बीमारी ,मानसिक रोग ,व्यक्ति को शारीरिक रूप से अयोग्य बना देते हैं । ऐसे में अपने लिए भोजन के प्रबन्ध के लिए भीख मँगने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं रहता । अपाहिज लूले , लंगड़े एवं मंद बुद्धि , भिखारियों की संख्या समाज में सबसे अधिक है । कई बीमारियाँ ऐसी हैं जिसके ग्रसित होने पर रोजगार मिलना संभव नहीं है । जैसे कोढ़ से ग्रस्त व्यक्ति के पास भिक्षा के अलावा कोई चारा नहीं रहता ।
- 5- **प्राकृतिक आपदाये** :- अकाल ,भूकम्प ,बाढ़ ऐसी प्राकृतिक आपदाये हैं जो व्यक्ति को बेघरबार कर देती हैं । रोजगार के साधन नहीं रहते , ऐसे में लोग भीख मँग कर अपना पेट पालते हैं । पूर्वी राजस्थान में अकाल के समय यहाँ के कई स्त्री-पुरुष नगरों में भीख मँगने चल देते हैं ।
- 6- **व्यावसायिक कारण** :- बहुत से भिखारी जो शारीरिक रूप से स्वस्थ हैं ,भिक्षावृत्ति को इसलिए अपनाये हुए हैं कि यह एक लाभदायक व्यवसाय है , इसमें शारीरिक श्रम नहीं करना पड़ता तथा आय अधिक होती है । कई भिखारी प्रतिदिन ३००-४०० रुपये तक

भीख मांग लेते हैं जबकि मजदूरी करने वाले व्यक्ति को मुश्किल से २०० रुपये मिल पाते हैं ।

इन कारणों के अलावा अकर्मण्यता ,आलस्य , स्वाभिमान की कमी , आपराधिक संगठन , समाज की मनोवैज्ञानिक कमजोरी आदि अनेक कारण हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भिक्षावृत्ति को बढ़ाते हैं । महानगरों में भिखारियों के ऐसे संगठित गिरोह भी पुलिस की पकड़ में आये हैं जो बच्चों से जबरदस्ती भीख मँगवाने का कार्य करते हैं ।

भिक्षावृत्ति एक स्वस्थ एवं सभ्य समाज के लिए बहुत बड़ा कलंक है । भिक्षावृत्ति का समाज पर कई प्रकार के रोगों का संक्रमण बढ़ता है । भारत में विदेशी पर्यटक जब घूमने आते हैं तो उनका स्वागत एक तरह से यहाँ के भिखारी करते हैं जो उनका पीछा सड़क से लेकर पर्यटक स्थल तक करते हैं । इससे विदेशों में भारतीय समाज की छवि खराब होती है । यही कारण है कि पश्चिमी देशों के लोग भारत को सपेरो ,भिखारियों एवं लुटेरों का देश मानते हैं । बहुत से भिखारी भीख मँगाने की आड़ में चोरी ,सैधमारी जैसे अपराध भी करते हैं । अधिकांश भिखारियों को रात में मद्यमान , जुआ ,वेश्यागमन करते देखा जा सकता है । इससे समाज में बुराईयों को बढ़ावा मिलता है । भिक्षावृत्ति समाज में अकर्मण्यता तथा पलायनवाद को बढ़ाती है । जनसंख्या का एक बड़ा भाग समाज पर बोझ बन कर आर्थिक विकास में बाधा डालता है ।

संदर्भ :- डॉ. हरिश्चन्द्र उप्रेती - नगरीय समाजशास्त्र पृष्ठ 202,203

खिज़्र खाँ (1414 ई.—1421 ई.) के शासन काल का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. जानकी शरण शुक्ल

अतिथि विद्वान

शासकीय महाविद्यालय देवसर

खिज़्र खाँ सय्यद राजवंश का संस्थापक था मलिक नसिरुलमुल्क मर्दान दौलत जो सुल्तान फीरोजशाह का एक प्रसिद्ध अमीर था के दत्तक पुत्र मलिक सुलैमान के पुत्र का नाम खिज़्र खाँ था उसने अपने को पैगम्बर मोहम्मद का वंशज बताया था इसके पूर्वज अरब से मुल्तान में आकर बस गये थे मुल्तान के मलिक मर्दान दौलत ने खिज़्र खाँ के पिता मलिक सुलेमान को पुत्र की तरह मानता था बाद में सुल्तान फिरोज ने अपने समय में खिज़्र खाँ को मुल्तान का सुलेमान नियुक्त किया था। परंतु 1395 ई. में मल्लू इकबाल के भाई सारंग खाँ ने उसे मुल्तान से हटाने को विवश किया। और वह मेवात चला गया। तिमूर के आक्रमण के अवसर पर वह उसके साथ हो गया और तिमूर ने भारत छोड़ने से पहले उसे मुल्तान, लाहौर और दिपालपुर की सूबेदारी प्रदान की अंत में 1414 ई. में उसने दौलत खाँ लोदी से दिल्ली को छीन लिया और दिल्ली का पहला सय्यद सुल्तान बना। परंतु खिज़्र खाँ ने सुल्तान की उपाधि ग्रहण नहीं की बल्कि रैयत ए आला की पदवी से प्रसन्न रहा वह तिमूर के पुत्र साहरूख को हमेशा भेंट और राजस्व भेजता रहता था इस प्रकार अपने को उसके आधीन मानता था उसने कई वर्षों तक खुतवा भी साहरूख के नाम से पढ़वाया इतना ही नहीं बल्कि अपने सिक्कों पर तुगलक शासकों के नाम ही रहने दिये। यह भी हो सकता है कि इसका कारण सोने चाँदी की कमी रही हो किन्तु उसका मुख्य उद्देश्य तुर्क एवं अफगान सरदारों को संतुष्ट रखना तथा अपनी प्रजा की सहानुभूति प्रदान करना था।

जब सीमावर्ती प्रान्त मुल्तान के मंगोलों के दबाव से रक्षा करने के लिये अनुभवी प्रशासक की आवश्यकता हुयी तो फीरोजशाह ने उसे पूर्वी प्रान्त से वापस बुलाकर मुल्तान का प्रशासन उसको सौंप दिया मर्दान दौलत के लिये शाही सम्मान के प्रतीकस्वरूप कड़ा और महोबा की इक्ताएँ उसके दत्तक पुत्र मलिक सुलैमान को प्रदान की गई। मर्दान की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र मलिक शेख को मुल्तान की इक्ता प्राप्त हुई और उसके मरने के बाद सुलैमान मुल्तान का इक्तादार बन गया। लेकिन दुर्भाग्य से सुलैमान ज्यादा अवधि तक जीवित नहीं रहा। सुलैमान के मृत्यु के बाद सुल्तान की इक्ता उसके पुत्र खिज़्र खाँ को दी गयी। ये सारी नियुक्तियाँ फीरोजशाह तुगलक के शासन काल में की गयी थी किन्तु ऐसा नहीं था मुल्तान की 'विलायत' मर्दान को फीरोजशाह के शासनकाल की समाप्ति के आसपास दी गई थी और वह अबूवक्र के शासन काल में अपनी मृत्यु तक उसका अधिकारी बना रहा। बाद में मुल्तान का शासन सुलैमान को दिया गया था। सुलैमान के परमपद के पश्चात् फीरोजशाह के पुत्र सुल्तान मोहम्मद शाह ने खिज़्र खाँ को मुल्तान का राज्यपाल नियुक्त किया। फीरोजशाह के शासनावधि का अस्वस्थ विकास इक्ताओं का वंशानुगत सिद्धांत था यह वह

सिद्धांत था जिसने श्रेष्ठतम परिवारों को कुछ क्षेत्रों में स्थिति मजबूत करने में मदद किया तथा अंत में स्वतंत्र राजवंशों के उत्थान के लिए मार्ग निर्मित किया। फीरोजशाह तुगलुक की मृत्यु के पश्चात् अराजकता की शक्तियाँ गतिमान हो गयीं और सरदारों ने राजनीतिक शक्ति के लिए दौड़ लगाना प्रारंभ कर दिया राजधानी से लेकर इक्ताओं तक सम्पूर्ण उत्तर भारत राजनीतिक कशमकश और चालबाजी में फंस गया। 1395-96 में खिज़्र खाँ ने मल्लू इकबाल खाँ के भाई सारंग खाँ से जो लाहौर और दीपालपुर का राज्यपाल था झगड़ा कर लिया। परिणामतः उसने मुल्तान के राज्यपाल का पद खो दिया जो दिल्ली शासन द्वारा सुपुर्द किया गया था। खिज़्र खाँ ने अपने को अत्यंत कठिन स्थित में पाया और मेवात के मुक्ताबहादुर नाहर के पास शरण ली किन्तु तैमूर के भारत आक्रमण के साथ उसके अच्छे दिन आये तथा उसे सत्ता प्राप्ति का अवसर मिला। जिस समय तैमूर ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया तो खिज़्र खाँ बहादुर नाहर, मुबारक खाँ और जीरक खाँ को मेवात से उस विजेता के प्रति सम्मान अर्पित करने के लिये बुलाया गया जिसके भारतीय राजनीतिक जीवन पर चक्रवर्ती प्रभाव ने राजनैतिक सट्टेबाजों के लिये एक सुअवसर प्रस्तुत किया था। **याहिया सरहिन्दी के अनुसार तैमूर ने खिज़्र खाँ के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया और दिल्ली का राज्य उसे प्रदान किया बाद में वह जब भारतवर्ष से जाने लगा तो तैमूर ने सुल्तान और दीपालपुर उसे दिये यह स्पष्ट नहीं है कि मुल्तान और दीपालपुर का शासन दिल्ली के अतिरिक्त था या उसके बदले में दिया गया था।** किन्तु उसने उत्तर भारत में खिज़्र खाँ की स्थित भली भाँति उन्नत की और राजनीतिक सर्वोच्चता के अन्य सभी प्रतियोगियों के ऊपर उसे निश्चित श्रेष्ठता प्रदान की। फिर भी उसका राजनीतिक मार्ग बाधारहित नहीं था। अनेक तुगलुक मलिक और अमीर खिज़्र खाँ के उत्थान से समझौता नहीं कर सके और वे अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उत्सुक थे। दिल्ली के सिंहासन के लिए अपना मार्ग बनाने के लिए खिज़्र खाँ को कठिन संघर्ष करना पड़ा।

तैमूर के भारत आक्रमण के समय उसके द्वारा पार किए गए दिल्ली तथा सभी क्षेत्र अकाल और महामारी से उजड़ गये थे। सुल्तान नुसरतशाह ने कुछ समय के लिए दिल्ली पर अधिकार किया किन्तु बरन से मल्लू इकबाल खाँ ने तुरंत आकर उसे मार भगाया। मल्लू ने सीरी पर अधिकार कर लिया और निकटवर्ती **इक्ताओं** पर अपनी सत्ता विस्तृत कर ली। उसने दिल्ली पुनः बसाने का भी प्रयत्न किया इस प्रकार जब खिज़्र खाँ मुल्तान की विलायत और दीपालपुर की **शिक** तथा ऊपरी सिंध के क्षेत्रों में अपनी स्थिति दृढ़ बना रहा था, मल्लू इकबाल ने दिल्ली और दोआब के क्षेत्रों में अपनी स्थिति सुदृढ़ करनी चाही। 1405-1406 ई. में मल्लू इकबाल ने, जो शत्रु **मुक्ताओं** की शक्ति का दमन करना चाहता था, खिज़्र खाँ के विरुद्ध प्रस्थान किया। खिज़्र खाँ ने उसे अजोधन के निकट ललकारा और धंदा के तट पर हुए युद्ध में इकबाल बुरी तरह पराजित हुआ। उसका घायल घोड़ा कीचड़ में फंस गया और लड़ाई के मैदान से बच निकलने के उसके सभी प्रयत्न असफल हुए। शीघ्र ही उसका सर काट डाला गया। इस प्रकार एक शक्तिशाली विरोधी खिज़्र खाँ के मार्ग से हटा दिया गया।

मल्लू इकबाल की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली के सरदारों ने सुल्तान महमूद तुगलुक को कन्नौज से आमंत्रित किया। यद्यपि वह दुर्बल और भोग विलास में लिप्त रहता था तथापि महमूद ने किसी प्रकार 1412 में अपनी मृत्यु तक दिल्ली और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों पर शासन करने की व्यवस्था की इसी अवधि में खिज़्र

खाँ ने अपनी स्थिति दृढ़ की और दीपालपुर से आगे अपनी सत्ता का विस्तार किया। फिर भी दिल्ली पर अधिकार करने की उसकी इच्छा पूरी होने में कुछ समय लग गया। 1408 ई. में खिज़्र खाँ ने दिल्ली पर आक्रमण किया और सुल्तान महमूद को सीरी के दुर्ग में घेर लिया परंतु वह दिल्ली पर अधिकार नहीं कर सका। और वह फतेहपुर लौट गया। तत्पश्चात् उसने पहले पंजाब में अपनी स्थिति दृढ़ करने और फिर दिल्ली पर आक्रमण करने का फैसला किया। 1409–10 ई. में खिज़्र खाँ ने सरहिंद में बैरम खाँ तुर्क बच्चा के विरुद्ध कूच किया। बैरम खाँ ने अपना परिवार पहाड़ियों पर भेज दिया और अपनी सेना सहित महमूद तुगलुक के एक अधिकारी दौलत खाँ से मिल जाने के लिए आगे बढ़ा। खिज़्र खाँ ने दौलत को पराजित कर दिया और बैरम खाँ को आत्मसमर्पण के लिए विवश किया। 1410–11 ई. में खिज़्र खाँ रोहतक की ओर चला और मलिक इदरीस को घेर लिया जिसने अंत में समर्पण कर दिया और अपना पुत्र बंधक के रूप में खिज़्र खाँ के पास भेज दिया। खिज़्र खाँ मेवात की ओर चला और तिजारा, सरहब, खरोल तथा अन्य अनेक क्षेत्र लूटे। लौटते समय उसने सीरी घेर लिया। इख्तियार खाँ जो सुल्तान महमूद की ओर से फीरोजाबाद का अधिकारी था, खिज़्र खाँ की ओर मिल गया, किंतु सुल्तान महमूद ने डट कर सामना किया और खिज़्र खाँ को घेरा उठाना पड़ा। फिर भी उसने दिल्ली के निकट और दोआब में कुछ क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया और दिल्ली के चारों ओर अपनी शक्ति के विस्तार का प्रयत्न करता रहा।

1412 ई. में सुल्तान महमूद की मृत्यु पर अमीरों और मलिकों ने दौलत खाँ के प्रति निष्ठा अर्पित की। कुछ मलिक जैसे मुबारिज खाँ तथा मलिक इदरीस खिज़्र खाँ का साथ छोड़ कर दौलत खाँ से मिल गये। कुछ समय तक खिज़्र खाँ ने शांतिपूर्वक स्थिति के विकास का अवलोकन किया किंतु 1413 ई. में उसने दिल्ली के विरुद्ध कूच किया और प्रवेश द्वार के सामने अपने शिविर लगाए। चार माह तक घेरा चलता रहा। दौलत खाँ ने अपनी शोचनीय स्थिति पर विचार कर दया और क्षमा की याचना की। खिज़्र खाँ उसे क्षमा करने में नहीं हिचकिचाया किंतु उसे हिसार फिरोजा में कवाम खाँ की देखरेख में रखा। अब दिल्ली खिज़्र खाँ के अधिकार में आ गई थी।

खिज़्र खाँ का दिल्ली में प्रवेश — 1414 ई. में खिज़्र खाँ ने सीरी में अपनी सेना सहित प्रवेश किया और सुल्तान महमूद के महल में निवास ग्रहण किया। दिल्ली के नागरिकों की, जिन्हें अराजकता और अस्तव्यस्तता के समय में अत्यधिक कष्ट भोगने पड़े थे, सद्भावनायें और सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया। भारी मात्रा में इनाम और वृत्तियाँ उन्हें दी गईं। **याहिया सरहिंदी के अनुसार इन से जनता समृद्ध और संपन्न हो गई।** मुख्य समर्थकों और सरदारों ने उपाधियाँ और पद प्राप्त किये। कलिकुशर्क मलिक तुहफा जिसे ताजुलमुल्क की उपाधि प्राप्त हुई, वजीर नियुक्त किया गया। सय्यद सलीम को सहारनपुर की **इक्ता** और **शिक** दी गई वह सुल्तान का प्रमुख परामर्शदाता बना और याहिया के अनुसार समस्त कार्य उसकी सम्मति से संपादित किये जाने लगे। मलिक अब्दुल रहीम ने जो मलिक सुलैमान का दत्तक पुत्र था, अलाउलमुल्क की उपाधि और सुल्तान तथा फतेहपुर की **इक्ता** और **शिक** प्राप्त की। मलिक सरूप को **शहनाए शहर** और नायबे गीबत नियुक्त किया गया। मलिक कालू **शलनाए पील** बना। मलिक खैरुद्दीन खानी अर्जे ममालिक

तथामलिक दाऊद दबीर नियुक्त किये गये। इख्तियार खाँ ने एक शिक प्राप्त की। भूतपूर्व सुल्तान महमूद तुगलुक के दासों की उनकी इक्ताओं और गांवों में पुष्टि कर दी गयी।

नये शासकवर्ग के संगठन और स्वरूप के बारे में जिसकी रचना सय्यद करना चाहते थे, कुछ भी निश्चित रूप से कहना कठिन है क्योंकि अमीरों के विस्तृत पूर्वचरित उपलब्ध नहीं हैं। किंतु इतना स्पष्ट है कि उन्हें विभिन्न राजनैतिक और सांस्कृतिक वर्गों से लिया गया था और उनमें वह एकरूपता नहीं थी जो मध्यकालीन युग में शासन की स्थिरता की एकमात्र गारंटी ले सकती थी। सम्भवतः सय्यद ने अपनी राजनीतिक व्यवस्था की इस मौलिक दुर्बलता का निराकरण कल्पित वंशावली की सहायता से करना चाहा जिन्हें कम से कम इस्लाम के पैगंबर से संसर्ग होने के कारण धार्मिक श्रेष्ठता सुनिश्चित की।

खिज़्र खाँ के अभियान – खिज़्र खाँ ने सात वर्ष उद्दण्ड तत्वों से निपटने और विद्रोह कुचलने में व्यतीत किया जिन्होंने अपने सर प्रसिद्ध मगरमच्छ के दांतों के समान उसके राज्य के लगभग प्रत्येक भाग में उठाए थे। कटेहर, बदायूँ, इटावा, पटियाली, ग्वालियर, बयाना, कम्पिल, चंदवार, नागौर और मेवात अत्यंत अशांत क्षेत्र थे। अर्धस्वतंत्र स्थानीय सरदारों अर्थात् 'इक्तादारों' या जमींदारों के एक नए वर्ग ने, जो इस क्षेत्र में उभर आया था, भौगोलिक स्थिति का पूर्ण लाभ उठाया और अपनी दुराग्रही क्रियाओं द्वारा केंद्रीय सत्ता दूर रखी। पूर्व में सैनिक कार्यवाइयों के अधिकारी ताजुलमुल्क और पश्चिमी क्षेत्र में जीरक खाँ को उत्तरदायी बना कर खिज़्र खाँ ने स्थिति से जितनी भली प्रकार निपट सकता था, निपटने का प्रयत्न किया।

1414-15 ई. में सीरी में प्रवेश के तुरंत पश्चात् अपने वजीर मलिकुशर्क ताजुलमुल्क की अधीनता में खिज़्र खाँ को एक सेना कटेहर भेजनी पड़ी राय हर सिंह, आंवला की तंग घाटी से भाग गया किंतु जब उस पर अधिक दबाव डाला गया तो उसने नकद, खराज और उपहार देना स्वीकार कर लिया बदायूँ के अमीर महावत खाँ ने भी वजीर को समर्पण कर दिया। तत्पश्चात् ताजुलमुल्क ने खोर और कम्पिल के सरदारों को दंड दिया और फिर ग्वालियर, सिओर तथा चंदवार के सरदारों से खराज वसूल करने चला तो उसने चंदवार के राजपूत सरदारों से जलेसर छीन लिया और वहाँ अपना गुमाश्ता नियुक्त किया। तत्पश्चात् इटावा के हिंदू सरदारों को दंड देने के पश्चात् वह दिल्ली लौटा।

शहजादा मुबारक के अधीन पश्चिमी प्रांत – बैरम खाँ की मृत्यु के पश्चात् खिज़्र खाँ ने सभी पश्चिमी प्रांत अर्थात् फीरोजपुर, सरहिंद इत्यादि अपने पुत्र राजकुमार मुबारक के नियंत्रण में रखे। मलिक साधू नादिरा उसका नायब बनाया गया। राजकुमार ने सीमावर्ती क्षेत्रों के मामले व्यवस्थित किए और अपने नायब तथा कुछ अमीरों और मलिकों सहित, जिनमें सामाना का अमीर जीरक खाँ भी था, राजधानी लौटा। मलिक साधू नादिरा सरहिंद में राजकुमार का प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। 1416 ई. में बैरम खाँ के परिवार के कुछ तुर्क बच्चों ने विद्रोह कर दिया। उन्होंने मलिक साधू नादिरा का वध कर दिया और सिंध पर अधिकार कर लिया। धूर्तों से निपटने के लिए खिज़्र खाँ ने मलिक दाउद और जीरक खाँ को भेजा। तुर्क बच्चों ने दिल्ली की सेना से सीधा युद्ध करना उचित न समझा और पहाड़ियों में शरण ली। उनका दो मास तक पीछा किया गया किंतु अंत में दिल्ली सेना को उनका पीछा छोड़ना पड़ा।

1416–17 ई. में खिज़्र खाँ ने ताजुलमुल्क को बयाना और ग्वालियर भेजा। मलिक करीमुद्दीन जो शम्स खाँ औहदी का भाई था बयाना में उससे भेंट करने आया और दिल्ली के प्रति निष्ठा व्यक्त की। तत्पश्चात् वजीर ग्वालियर की ओर बढ़ा, नगर लूटा और राय तथा अन्य सरदारों से धन वसूल किया। बाद में वह कम्पिल और पटियाली की ओर मुड़ा और फिर कटेहर गया। कटेहर के राय हर सिंह द्वारा स्वामिभक्ति की प्रतिज्ञा करने के पश्चात् वह दिल्ली लौटा।

चूँकि कटेहर में स्थिति नियंत्रण से बाहर थी इसलिए खिज़्र खाँ ने राय के विरुद्ध स्वयं कूच करने का निश्चय किया। उसने कोयल के विद्रोही सरदारों और रहित तथा सम्मल के जंगलों के सरदारों को दंड दिया और इसके बाद बदायूँ की ओर बढ़ा और 1418 (नवंबर–दिसम्बर) में उसे घेर लिया। महाबत खाँ लगभग 6 मास तक डटा रहा। विजय लगभग होने ही वाली थी कि कुछ अमीरों द्वारा षड्यंत्र की सूचना सुनकर वह घेरा उठाने और दिल्ली लौटने के लिए विवश हो गया।

षड्यंत्र में जो अमीर सम्मिलित थे उनमें कवाम खाँ, इख्तियार खाँ और सुल्तान महमूद के कुछ दास भी सम्मिलित थे। खिज़्र खाँ ने उन्हें गंगा के तट पर 20 जमादीउल अब्बल 822 हि. 14 जून, 1419 को एक समारोह में आमंत्रित किया और उन सबकी हत्या कर दी।

तत्पश्चात् बजवारा से समाचार आया कि एक ढोंगी ने, जो सारंग खाँ होने का दावा करता था, विद्रोह कर दिया है। सुल्तान ने सरहिंद मलिक सुल्तान शाह लोदी को प्रदान किया और उसे विद्रोही से निपटने का आदेश दिया। मलिक सुल्तान ने ढोंगी सारंग खाँ को पराजित कर दिया जो लाहौरी नामक सरहिंद के एक अधीनस्थ क्षेत्र चला गया। जब मलिक पीछा करते हुए आगे बढ़ा तो वह अरुबार (रोपर) भाग गया और बाद में पहाड़ियों में शरण ली। मलिक सुल्तान की सेना शक्तिशाली बनाने के लिए मलिक खैरुद्दीन खाँनी भेजा गया किंतु पहाड़ी क्षेत्र पर अधिकार करना कठिन था और दिल्ली सेना को कोई सफलता प्राप्त किए बिना अभियान छोड़ना पड़ा। मलिक खैरुद्दीन खाँनी दिल्ली लौटा। जीरक खाँ सामाना गया और मलिक सुल्तान शाह रापर में रहा। किंतु उसकी सेना जो उपलब्ध नहीं कर सकी, उसे खिज़्र खाँ के दो शत्रुओं की एक क्षणिक संधि ने संभव कर दिया। 1420 ई. के आरंभ में यह सारंग खाँ दिल्ली के सुल्तान के विरुद्ध तुगान खाँ के युद्ध में सम्मिलित हो गया। किंतु यह संधि अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। **फरिश्ता के अनुसार तब तुगान ने देखा कि सारंग खाँ के पास अत्याधिक संख्या में रत्न हैं तो उसने उसकी हत्या करवा दी।** इस प्रकार खिज़्र खाँ का एक कर्मठ विरोधी मंच से हटा दिया गया।

संदर्भ—

■ अफीक, शम्स सिराज	तारीखे फीरोज शाही (कलकत्ता 1890 ई.)
■ अबुल फजल	अकबर नामा (कलकत्ता 1873–87 ई.) आईने अकबरी (नवल किशोर प्रेस 1892 ई.)
■ अब्दुल वाकी निहाबन्दी	मआसिरे रहीमी (कलकत्ता 1910–31 ई.)
■ अब्दुल हक मुहदिदस	अख्बारुल अखियार (देहली 1332 ई.)

देहलवी	तारीखे हक्की (अलीगढ़ हस्तलिपि)
■ अब्दुल्लाह	तारीखे दाऊदी (अलीगढ़ 1954 ई.)
■ अब्बास खां सरवानी	तोहफये अकबरशाही अथवा तारीखे शेरशाही (अलीगढ़, इलाहाबाद, डॉ. परमात्मा शरण एवं बाडलियन की हस्तलिपियाँ)
■ अमीन अहमद राजी	हफ्त इकलीम (अलीगढ़ हस्तलिपि)
■ अमीर खुर्द सैयिद मुहम्मद मुबारक अलवी	सियरुल औलिया (देहली 1884 ई.)
■ अमीर खुसरो	वस्तुल हयात (अलीगढ़), खजायनुल फुतह (अलीगढ़) केरानुस्सार्दन (अलीगढ़) दिवलरानी तथा खिज्र खां (अलीगढ़ 1917 ई.) मिफताहुल फुतूह (अलीगढ़ 1927 ई.) नुह सिपेहर (इस्लामिक सिसर्च एसोसिएशन) तुगलुक नामा (हैदराबाद 1933 ई.)

मण्डला जिले में सड़क यातायात का भौगोलिक अध्ययन

डॉ. झामलाल रसिया

परिचय—

किसी राष्ट्र के जीवन में सड़कों का वही महत्व है जो मनुष्य शरीर में धमनियों और शिराओं का होता है। जैसे धमनियाँ एवं शिराएँ रक्त परिभ्रमण की क्रिया द्वारा शरीर को स्वस्थ एवं सक्षम रखती हैं, वैसे ही सड़कें जीवन के आवश्यक उपकरणों, मनुष्यों एवं माल को देश के कोने-कोने पहुँचाकर अर्थव्यवस्था को समृद्ध एवं सम्पन्न बनाने में सहायक होती हैं। उत्पादन, विनिमय और वितरण के सम्पूर्ण घटना चक्र का सुचारु एवं सफल संचालन समुचित सड़क जाल पर निर्भर है, क्योंकि वही देश के कोने-कोने को अन्य परिवहन के साधनों से जोड़ती हैं खेत और खलिहान को, कार्यालय और कारखानों को एक दूसरे से मिलाती हैं। दुलाई के प्रारम्भिक साधन होने के नाते सम्पूर्ण दुलाई व्यवस्था का आदि और अन्त सड़कें हैं। सड़कों के बिना परिवहन का अन्य कोई साधन कदापि नहीं पनप सकता, क्योंकि सड़कें उनके परितोषक पथ हैं।

सड़कें सार्वजनिक मार्ग हैं जिनका बहुमुखी प्रयोग होता है। पैदल यात्री, भार वाहक, पशु वाहन, यांत्रिक वाहन इत्यादि सभी के लिए सड़कें खुली रहती हैं। सड़क परिवहन से आशय उन सभी वाहनों एवं वाहकों से है जो सड़कों का उपयोग करते हैं। सड़कें विविध यातायात और विविध वाहनों के मिश्रण का एक अद्भुत उदाहरण उपस्थित करती हैं।

मानव की मौलिक आवश्यकतायें रोटी, कपड़ा और मकान हैं। प्राचीन काल में मानव जीवन सरल था। अधिकांशतः समाज आत्मनिर्भर होते थे, अतः मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर लेता था। क्रमशः मनुष्य समूहों में बसने लगा, जनसंख्या में वृद्धि होती रही तथा आवश्यकतायें बढ़ती रहीं, जिसके फलस्वरूप आत्मनिर्भरता समाप्त हो गई, साथ ही साथ मानवीय आर्थिक क्रियाओं में वैशिष्ट्य भी आता गया। इसलिए मानव का एक स्थान से दूसरे स्थान का आना-जाना भी अनिवार्य हो गया। अतः परिवहन के मार्गों की आवश्यकता पड़ने लगी। सर्वप्रथम मानव, बाद में पशु परिवहन के साधन बने तथा थल मार्गों का विकास हुआ। थल पर सड़कों (पगडंडियों) के साथ नदियों का प्रयोग भी होता था। सभ्यता के विकास के साथ-साथ आवश्यकताएँ भी बढ़ती गयीं। यांत्रिक परिवहन साधनों की अनिवार्यता अनुभव की जाने लगी और सड़क, रेल, नदी, महासागर तथा वायु परिवहन का उपयोग एवं विकास होने लगा।

वर्तमान युग में परिवहन के साधन आर्थिक विकास की आधारशिला है। जीवन में गति का जो स्थान है, किसी देश के आर्थिक-सामाजिक विकास में वही स्थान परिवहन का है। यही कारण है कि मानव सभ्यता के विकास के इतिहास से ही परिवहन का इतिहास जुड़ा है। सम्पूर्ण मानव जाति की प्रगति परिवहन के साधनों के विकास के साथ-साथ अनुक्रमिक रूप से हुई है। परिवहन के साधन किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक माने जाते हैं। देश की कृषि व्यापार, औद्योगिक विकास, वाणिज्यिक प्रगति के लिए परिवहन के साधन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यही कारण है कि दुनिया के जिन राष्ट्रों में परिवहन के साधनों का अधिक विकास हुआ है, आज वही राष्ट्र विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में हैं और जिन राष्ट्रों में परिवहन के साधनों

का आभाव है वे राष्ट्र पिछड़े एवं अविकसित हैं। भारत जैसे विकासोन्मुख देश के त्वरित आर्थिक विकास के मार्ग में अपर्याप्त परिवहन सेवायें अवरोधक हैं। भारत में परिवहन के विभिन्न साधनों की कुल लम्बाई 98.4 प्रतिशत सड़कें, 6.4 प्रतिशत रेलमार्ग, 1 प्रतिशत नदियाँ एवं नहरें, 4 प्रतिशत वायुमार्ग एवं 0.2 प्रतिशत जलमार्ग हैं। परिवहन के ये आँकड़े सड़क परिवहन की उपयोगिता को स्पष्ट करते हैं। सड़क परिवहन अन्य परिवहन के साधनों का पूरक साधन है क्योंकि रेल, जल तथा वायु मार्ग आदि समस्त परिवहन साधनों की सफलता सड़क सड़क परिवहन की कुशलता एवं पर्याप्तता पर निर्भर है।

विकसित, सामाजिक संगठन तथा चुस्त प्रशासन के प्रादुर्भाव एवं विकास का सीधा सम्बन्ध सड़क परिवहन से है। इसलिए सड़कों को सभ्यता का प्राचीन वाहक कहते हैं। यह कथन सत्य ही है कि “सड़कें मानव जाति का श्रेष्ठ एवं मौलिक संस्थाओं में से एक है तथा इनका इतिहास लिखित इतिहास के पूर्वकाल में आरम्भ होता है। किसी भी प्रभावशाली एवं वैभवशाली सम्राज्य के उत्थान एवं पतन में सड़कों की उन्नति एवं अवनति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्राचीन अवशेषों जैसे मोहनजोदड़ों हड़प्पा आदि के विकास का इतिहास सड़कों का उत्थान, सभ्यता एवं सड़कों के सह-सम्बन्ध को व्यक्त करता है। यद्यपि मोटर परिवहन के विकास के साथ ही आधुनिक सड़कों का विकास प्रारम्भ हुआ है किन्तु रथ, इक्के तथा अन्य प्रकार की घोड़ा गाड़ियों के संचालन में सड़कें मनुष्य की आवश्यकताओं को आदिकाल से पूरा करती आयी हैं। नालंदा क्षेत्र में प्राचीनकाल से रथों के लिए चौड़ी सड़कों का निर्माण नितांत आवश्यक था। संक्षेप में सड़क परिवहन सभ्यता के आदिकाल से परिवहन सेवायें देता रहा है।

सड़क यातायात का आर्थिक विकास में महत्व—

सड़क प्रगति व विकास की मंजिल तक पहुँचने का जरूरी रास्ता है। स्वतंत्रता के लगभग 71 वर्ष बीत जाने के बाद भी दो-तिहाई गाँव आज भी पक्की बारहमासी सड़कों से सम्बद्ध नहीं हो सके हैं। निश्चय ही यह स्थिति अच्छी नहीं है। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि गाँवों के आर्थिक पिछड़ेपन का एक महत्वपूर्ण कारण अच्छी सड़कों का आभाव है। एक अध्ययन द्वारा यह पाया गया है कि सड़क सुविधा के आभाव के कारण प्रतिवर्ष लगभग 300 गर्भवती महिलाओं की मृत्यु हो जाती है क्योंकि उन्हें समय पर उचित अस्पताल सुविधा नहीं मिल पाती है।¹¹ सड़कों की उपयोगिता को देखते हुए वर्तमान सरकार निश्चय ही इस बात के लिए साधुवाद की पात्र है कि उसने बुनियादी ढाँचों में सुधार के अपने कार्यक्रम में सड़कों के निर्माण और सुधार कार्यक्रम को प्राथमिकता दी है।

सड़क यातायात का सामाजिक विकास में महत्व—

आधारभूत संरचनायें किसी क्षेत्र या प्रदेश के विकास की कुंजी होती हैं। किसी क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक विकास की आधार स्थापना में सड़कों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में नाड़ियों द्वारा रक्त का प्रवाह होता है और उसको स्वस्थ बनाता है उसी प्रकार किसी क्षेत्र की समृद्धि के लिए सड़कें नाड़ियों का कार्य करती हैं। जिनसे होकर प्रत्येक सुधार प्रक्रिया प्रवाहित होती है। क्षेत्र की आर्थिक, औद्योगिक, सामाजिक, व्यापारिक एवं राजनैतिक प्रगति अच्छी सड़कों पर निर्भर करती हैं। इसीलिए सड़कें राष्ट्रीय समृद्धि की विशाल इमारत का आधार स्तम्भ होती हैं। वास्तव में सड़कों को किसी राष्ट्र की आर्थिक

प्रगति और सभ्यता का मापदण्ड माना जा सकता है। सड़कें समाज की गतिशीलता का परिचायक हैं। सम्पूर्ण प्रकार की सृजन क्रियायें यथा प्रशासन, औद्योगिक विकास सामाजिक मान्यताएँ एवं राजनैतिक प्रक्रिया सड़कों से प्रभावित होती हैं। अतः यदि देश या क्षेत्र के विपुल स्रोतों एवं असीमित जन शक्ति का उपयोग साधारण मनुष्य के लिए करना है तो सड़कों का विकास नितान्त आवश्यक है। सड़कें राष्ट्रीय जीवन के उपकरणों मनुष्यों, वस्तुओं, सेवाओं एवं विचारों को देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचाने का कार्य करती है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा जो सड़कों से प्रभावित न हो, समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सस्ते और सुगम परिवहन में रूचि रहती है और इसमें सड़क परिवहन सबसे सुलभ साधन है।

मण्डला जिला एक जनजातीय एवं कृषि प्रधान जिला है। जिले की 85 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में आबाद है। इस तरह भारतीय परिवेश की भाँति अध्ययन क्षेत्र भी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था का द्योतक है। देश एवं अध्ययन क्षेत्र की दयनीय आर्थिक दशा को सुधारने के लिए कृषि उत्पादन में वृद्धि आवश्यक है। इस हेतु कृषि के गुणात्मक एवं मात्रात्मक विकास की आवश्यकता है। अतः कृषि विकास नीति को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए सड़कों का सराहनीय योगदान रहता है, क्योंकि कृषि का विकास सड़कों से सीधा सम्बन्धित होता है। सड़कें एक ऐसी सुदृढ़ धुरी के समान हैं जिसके चारों ओर कृषि और कृषक तथा सारा ग्रामीण जीवन घूमता है। कृषि क्षेत्र एवं उत्पादन में वृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक सड़कों के निर्माण पर निर्भर करती हैं। अध्ययन क्षेत्र में बहुत सी ऐसी भूमि है जहाँ मार्गों के अभाव के कारण कृषि करना सम्भव नहीं है क्योंकि वहाँ पहुँचना और कृषि उपकरणों को ले जाना एक दुष्कर कार्य है। भारतीय सड़क एवं परिवहन विकास संस्था के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में अपेक्षित सड़क निर्माण से कृषि में 25 प्रतिशत तक की वृद्धि की जा सकती है। उस में संसाधनों का समुचित विदोहन सड़क विकास पर ही निर्भर है। अच्छी सड़क अभिगम्यता से उत्पादन वृद्धि सहज और सुलभ हो जाती हैं, क्योंकि रासायनिक उर्वरक, अच्छे बीज, नवीनतम औजार आदि आवश्यकतानुरूप स्थानों पर सस्ते मूल्य पर पहुँचाये जा सकते हैं। सड़कों की न्यूनधिकता से कृषि उत्पादकता एवं गहनता प्रभावित होती है और अन्त में एक ऐसा स्थान आ जाता है जहाँ पर कृषि लागत बढ़ जाती है क्योंकि उपज को बाजार तक ले जाने में असुविधा रहती है। नीदरलैण्ड में सड़क और नहर निर्माण से अद्भुत परिणाम प्राप्त हुए हैं। यहाँ हजारों एकड़ भूमि को कृषि योग्य बना लिया, जिस पर सैकड़ों लोग अपना जीविकोपार्जन कर सकते हैं। अध्ययन क्षेत्र में भी हजारों एकड़ भूमि कृषि योग्य बनायी जा सकती है, बशर्ते कि यहाँ सड़कों का विकास सही ढंग से किया जाये।

मण्डला जिले में सड़कों के विकास के द्वारा कृषि प्रतिरूप में परिवर्तन किया जा सकता है। निर्वाहक कृषि एवं खाद्यान्न फसलों के स्थान पर व्यापारिक एवं मुद्रादायिनी फसलें उत्पन्न की जा सकती हैं। कुछ विशिष्ट प्रकार की फसलें पैदा करने के लिए अच्छे अवसर प्राप्त किए जा सकते हैं। फसलोत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करके उनका निर्यात बढ़ाया जा सकता है। पोषक पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। सड़कों के विकास से शीघ्र नष्ट होने वाले स्वास्थ्य संरक्षक खाद्य पदार्थों, अण्डों, फलों, सब्जियों, दुग्ध एवं दुग्ध निर्मित वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन मिलता है। अभी तक ग्रामीण क्षेत्रों में कृषक उन वस्तुओं के उत्पादन करने में संकोच करते हैं जिन्हें नगरों तक पहुँचाने के लिए अच्छे आवागमन के साधनों की

सुविधा नहीं हैं अध्ययन क्षेत्र में शीघ्र नष्ट होने वाली उपजों का आधा भाग इसलिए बर्बाद हो जाता है कि परिवहन की कमी के कारण उसके बाजार पहुँचने में देरी होती है। सुधरी हुई अच्छी सड़कें जिसका अर्थ होता है कि सुगम परिवहन सुविधाएँ विशेष कर मोटर गाड़ियों का उपयोग करके यह बर्बादी सम्पत्ति में बदल सकती है।

सड़कों का कृषि उपज की बिक्री पर भी प्रभाव पड़ता है। परिवहन व्यय का कुल विक्रय में लगभग 25 प्रतिशत भाग होता है। अध्ययन क्षेत्र में अधिकतर सड़कें कच्ची हैं, गर्मियों में रेत और वर्षा ऋतु में कीचड़ की अधिकता रहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवहन का प्रमुख साधन बैलगाड़ियाँ हैं जिनके आवागमन कठिन कार्य हो जाता है। अभी भी लगभग 30 प्रतिशत सड़कें साफ मौसम में ही खुली रहती हैं। ऐसा निष्कर्ष निकाला गया है कि “यदि कच्ची सड़कों के स्थान पर पक्की सड़कें हो और उस पर बैलगाड़ी के स्थान पर मोटर गाड़ी का प्रयोग किया जा सके तो कहवा के परिवहन व्यय में 12.5 प्रतिशत से 62.5 प्रतिशत, अंगूर के परिवहन व्यय में 6 प्रतिशत से 53 प्रतिशत, गेहूँ के परिवहन व्यय में 1 प्रतिशत से 4 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है।” परम्परागत घोड़े-गधे और खच्चरों द्वारा माल ले जाने से 110 रुपये प्रति क्विंटल परिवहन व्यय होता है और उतना ही माल पक्की सड़क पर मोटर ट्रक द्वारा ले जाने से व्यय रुपये 30.50 प्रति क्विंटल पड़ता है। परम्परागत साधनों से 4 दिन और आधुनिक साधनों से एक दिन का समय लगता है।

मण्डला जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में अच्छी सड़कों की कमी के कारण किसान विवश होकर कम दामों पर महाजनों को फसल बेच देते हैं। यदि उस उपज को उन स्थानों तथा बाजारों में भेजा जाता है जहाँ मूल्य अधिक होता है तो उत्पादक को अधिक आर्थिक लाभ होगा। **पार्कर** के अनुसार “गोदावरी जैसी नदियाँ सैकड़ों मील उपजाऊ भूमि से होकर प्रवाहित होती हैं, सड़क सुविधा की कमी के कारण जिनकी उपज उन मण्डियों तक नहीं पहुँचाती जहाँ इनकी आवश्यकता है।” अच्छी सड़कें अप्रत्यक्ष रूप से खेती में सहायक हैं। हर गाँव को एकान्त से दूर करती हैं।

संदर्भ—

- प्रमीला कुमार (1977) : मध्यप्रदेश का भौगोलिक अध्ययन, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
- रजक, एस.आर. एवं पी.एस. गौतम (1989) : बुन्देलखण्ड क्षेत्र (म.प्र.) में परिवहन जाल का स्थानीक वितरण एवं नियोजन, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, गोरखपुर, अंक 25।
- राजपूत बी.एस. (1980) दक्षिणी बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भूमि उपयोग, (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) अवधेश प्रताप सिंह वि.वि. सीवा
- सिंह दीनानाथ (1970) : उत्तरी बिहार में यातायात का क्षेत्रीयकरण, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 6, संख्या 1, गोरखपुर
- तिवारी बी.के. जनसंख्या भूगोल भाग 1 एवं 2, हिमालया पब्लिशिंग नई दिल्ली
- मामोरिया चतुर्भुज (1973) : भारत का भूगोल, साहित्य भवन, आगरा-3
- जिला सांख्यिकीय पुस्तिका जिला मण्डला, वर्ष 1901-2011

ग्रामीण समाज की हिन्दू महिलाओं में वैचारिक बदलाव—एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. शालिनी शर्मा

अतिथि विद्वान

शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा

भारत एक परम्परागत समाज है। भारत में प्राचीन समय से कई रीति-रिवाज प्रचलित हैं। अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों से भारतीय जनता ग्रसित रहती है। प्राचीन काल में जो मान्यताएँ बनीं, व्यक्ति उन्हीं के पालन को अपना धर्म समझता रहा। समाज की उसम समय ही यह विशेषता मानी जा सकती है कि उसने प्रत्येक नियम एवं बन्धनों को धर्म का सहारा लेकर प्रस्तुत किया ताकि व्यक्ति इसे नकार ही न सके। आज वे सभी रीति-रिवाज, मान्यताएँ वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों से मेल नहीं खाती हैं। ये सब कुरीतियों के रूप में देखी जाने लगी हैं। वस्तुतः इन्हें दूर करने के लिए एवं सम्यक् परिचालन के लिए उपयोगी एवं सार्थक रीतियों को वैज्ञानिक संरक्षण प्रदान करने के लिए अनेक सामाजिक कानूनों का निर्माण किया गया। परन्तु सिर्फ कानूनों का निर्माण कर देना ही पर्याप्त नहीं है। इसके साथ-साथ आवश्यक यह भी है कि समाज के सदस्यों के विचारों में परिवर्तन भी लाया जाये। इन सभी धार्मिक कुरीतियों को हिन्दू धर्म का प्रश्रय एवं संरक्षण प्राप्त था, भले ही हमारे धर्मशास्त्रों ने हमारे विशाल हिन्दू धर्म ने इनको उचित नहीं भी बताया हो, हमारे पुरुष-प्रधान समाज में धार्मिक मान्यताओं के नाम पर महिलाओं को सदा विभिन्न धार्मिक बन्धनों में जकड़कर रखा गया। आज भी भारतीय समाज इन मान्यताओं को पूर्णतः नकार नहीं सका है। आज यह जानना भी आवश्यक है, अनिवार्य भी है कि स्वयं महिला, जिसे मान्यताओं के फल सबसे अधिक भोगने पड़े थे और उसे ही इन सामाजिक विधानों ने सर्वाधिक सुरक्षा एवं अधिकार देने की बात कही थी, इन सभी मान्यताओं के प्रति क्या दृष्टिकोण रखती है? प्रायः यह देखने में आया है कि आज भी स्वयं महिलाएँ प्राचीन सामाजिक मान्यताओं और विश्वासों में अभी भी जकड़ी हुई हैं। न जाने क्यों संस्कारवश या अन्य किन्हीं कारणों से वे परिवर्तन को स्वीकार नहीं कर पाती।

शिक्षा, वर्तमान शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण संस्थागत प्रक्रिया है जो व्यक्ति एवं समाज के जीवन को विभिन्न रूपों में प्रभावित करती है। वैदिक युग में स्त्री शिक्षा को पर्याप्त महत्व प्राप्त था। उसके बाद के समय में स्त्री शिक्षा का क्रमिक लोप हो गया। फिर एक समय ऐसा आया जब स्त्री को शिक्षा प्राप्त करने का कोई अधिकार ही नहीं रह गया। समाज, स्त्री-शिक्षा का विरोधी हो गया। समाज का जब इसके दुष्परिणामों की ओर ध्यान गया तो धीरे-धीरे पुनः स्त्री-शिक्षा की ओर समाज-सुधारक आकर्षित हुए। नारी के उत्थान संबंधी प्रयत्नों से भारतीय नारी में महात्वाकांक्षा का उदय हुआ। साथ ही उसमें स्वतंत्र स्वतंत्र रूप से सोचने-विचारने की शक्ति का विकास हुआ। शिक्षा ने भारतीय महिला में नव-चेतना जाग्रत की। फलतः उसके जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ।

शिक्षा का प्रभाव भारतीय नारी-जीवन पर पड़ा, वहीं दूसरी ओर धर्म और धार्मिक गतिविधियों पर भी पड़ा। कालान्तर में हिन्दू धर्म में कतिपय कर्मकाण्डों और विभिन्न-निषेधों का बोलबाला हो गया था। धर्म के नाम पर विभिन्न विकृत एवं समाज के लिए हानिकारक रीतियाँ चल पड़ी थीं। नारी उनका अन्धानुकरण करने को विवश बना दी गई थी। अब उनमें द्वास आया। अब शिक्षा प्राप्त करने कारण नारी इन सभी क्रियाओं एवं विभिन्न निषेधों को तर्क के आधार पर देखने लगी है। उसके मन में इनकी उपयोगिता आदि बातें उठने लगी हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो नारी के विचारों में परिवर्तन आ रहा है।

हिन्दू धर्म और शिक्षा दोनों ही महिला के जीवन में जागृति पैदा करते हैं। आज की शिक्षित महिला धर्म की उपस्थिति को नकार नहीं रही है। भले ही वह किसी भी क्षेत्र में पुरुषों के समकक्ष कठोर परिश्रम-पूर्ण कार्य कर रही हो और सफलताओं के नये आयाम स्थापित कर पा रही हो। आज भी वह धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत है। धार्मिक-क्रियाओं का महत्व अभी भी नारी के मन में विद्यमान है। इतना अवश्य है कि अब उसका स्वरूप बदल गया है। जीवन के विभिन्न अवसरों पर शुभ-कार्यों को प्रारम्भ करते समय, विभिन्न त्यौहारों, उत्सवों, भ्रमणार्थ जाते समय, विवाहादि के अवसरों पर तथा परिवार एवं स्वयं के सुख-दुःख के समय नारी धर्म के प्रति बराबर आस्थावान बनी रहती है।

अध्ययन क्षेत्र का सामान्य परिचय –

रीवा एक प्राचीन स्थल है, जो स्वयं में एक पूर्ण सांस्कृतिक और सामाजिक इकाई है। इसकी अपनी पहचान है, विशेषताएँ और उपलब्धियाँ हैं। सफेद शेरों के लिए विश्व विख्यात रीवा बघेलखण्ड रियासत की राजधानी रहा है। मुगल सम्राट अकबर के नवरत्नों में से एक, तानसेन भी इसी धरती की देन थे। स्वतंत्रता प्राप्ति तक यहाँ उत्तरोत्तर बघेल शासकों ने राज्य किया। स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर नवीन मध्यप्रदेश के निर्माण तक इसे विन्ध्य प्रदेश की राजधानी बनने का गौरव प्राप्त हुआ। 01 नवम्बर 1956 को जब वर्तमान मध्यप्रदेश का गठन हुआ तक रीवा संभागीय मुख्यालय बना। मध्यप्रदेश के पूर्वोत्तर में स्थित रीवा जिले का स्थिति विस्तार $24^{\circ}.18'$ से $25^{\circ}.12'$ उत्तरी अक्षांश तथा $81^{\circ}.02'$ से $82^{\circ}.20'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य है। इसका भौगोलिक क्षेत्रफल 6,28,745 हेक्टेयर है जो मध्यप्रदेश के क्षेत्रफल का 2.05 प्रतिशत है।

अध्ययन का उद्देश्य—

समकालीन भारतीय समाज में महिलाओं की सामाजिक स्थिति तथा धार्मिक सांस्कृतिक जीवन में उनकी सहभागिता अध्ययन का एक प्रमुख क्षेत्र है। सामान्यतः अधिकतर अध्ययन महिलाओं की परिवर्तनशील आर्थिक स्थिति, विकास कार्यक्रमों में उनकी सहभागिता तथा उनके पारिवारिक तथा वैवाहिक समस्याओं से सम्बन्धित रहे हैं। ऐसे अध्ययनों की अपेक्षा कमी रही है, जिनमें महिलाओं के वैचारिक बदलाव को केन्द्र बिन्दु मानकर परम्परा और परिवर्तन का अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से ग्रामीण हिन्दू महिलाओं के वैचारिक बदलाव लगभग एक अस्पृश्य विषय रहा है। ग्रामीण महिलाओं की स्थिति का समग्र अध्ययन करने के लिए नितान्त आवश्यक है कि उनके वैचारिक बदलाव का वैज्ञानिक रूप से विश्लेषण किया जाये।

हमारे देश में लम्बी अवधि तक अनेक सामाजिक बन्धनों एवं धार्मिक मान्यताओं ने व्यक्ति को विशेषतया नारी को जकड़े रखा था। नारी ने उसे धर्म की आज्ञा मानकर स्वीकार किया था। धर्म ने जीवन-यापन की

एक पद्धति के रूप में हर तरह की परिस्थिति में भिन्न-भिन्न ढंग से व्यक्ति को कार्य करने को कहा परन्तु आज स्थिति बदली है। अतः उन सामाजिक मान्यताओं के प्रति नारी अब क्या सोचती है? आज भी क्या वे उचित मानती हैं। वर्तमान अध्ययन में इन सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये जाने का प्रयास किया जायेगा।

मेरे अध्ययन की आधारभूत मान्यता यह है कि समकालीन भारतीय समाज में परिवर्तन की नवीन शक्तियों एवं कारकों ने ग्रामीण समुदाय को भी प्रभावित किया है तथा ग्रामीण महिलाओं के जीवन में परम्परा एवं आधुनिकता का द्वन्द्व उत्पन्न हो गया है। इस पूर्व मान्यता को ध्यान में रखते हुए वर्तमान अध्ययन में यह ज्ञात करने का प्रयास किया जायेगा कि परिवर्तित परिवेश में ग्रामीण महिलाओं के विचार में क्या परिवर्तन हो रहे हैं, आवश्यकता, परिस्थिति एवं पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव ग्रामीण हिन्दू महिलाओं की मानसिकता, विश्वास तथा क्रियाकलापों पर कितना प्रभाव पड़ सका है तथा उसमें क्या बदलाव आया है? इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए यह अनुसंधान कार्य किया जायेगा।

संदर्भ सूची-

- कैटिल्लीय अर्थशास्त्र सम्पादक और हिन्दी अनुवाद उदयवीर शास्त्री दरियागंज दिल्ली 1969-70
- दाय भाग-सम्पादक जीवानंद विद्यासागर भट्टाचार्य, कलकत्ता 1876
- मनु स्मृति-मेघा तिथि भाष्य संहिता, सम्पादक गंगानाम का कलकत्ता 1967-71
- अल्तेकर-"दि पोजीसन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, हिन्दू विश्वविद्यालय, कल्चर प्रकाशन बनारस 1938
- अल्तेकर-"एजुकेशन इन एशिएन्ट इण्डिया बनारस 1934
- आपटे, यू.एम.-"सोशल एण्ड रिलीजन लाइफ इन द गृह सूत्र बाम्बे 1954
- आनंद मुल्कराज (राम मोहन राय)-"सती" आर.वी.पब्लिशिंग कारपोरेशन दिल्ली 1980
- अंसारी एम.ए.-"नारी चेतना और अपराध, पंचशील प्रकाशन जयपुर 1990
- अम्बेडकर भीम राव-"दी राइज एण्ड फॉल ऑफ हिन्दू वोमेन भीम पत्रिका पब्लिकेशन पंजाब, 1970
- भास्कर कुमार-"भूमण्डलीयकरण और स्त्री" संजय प्रकाशन दिल्ली 2008
- महिमा सुदर्शन-"नारी कर्तव्य एवं अधिकार वैटम धुमा पंचकुली दिल्ली 2007
- भारद्वाज निधि "महिला सशक्तिकरण प्रकाशक, सागर पब्लिशर्स 2012
- वेदांलकर हरिदत्त-"हिन्दू परिवार का संक्षिप्त इतिहास, लखनऊ 1970
- वेदांलकर हरिदत्त-"परिवार मीमांशा सरस्वती सदन, दिल्ली 1973
- व्होरा आशारानी-"भारतीय नारी दशा दिशा नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 1983

अनुक्रमिका

01	नहीं हूँ किसी का भी प्रिय कवि मैं / डॉ. महेश दवंगे	01-08
02	हिन्दू परिवारों की महिलाओं में सामाजिक गतिशीलता (सतना जिले के विशेष संदर्भ में) / अनुराधा पाण्डेय	09-12
03	कथक गुरु बाबूलाल पाटनी का संगीतिक योगदान / डॉ. अंजलिका शर्मा एवं प्रिया गुप्ता	13-16
04	आदिवासी समाज : अन्याय का शिकार / राजकुमार अहिरवार	17-22
05	संस्कृत साहित्य में कर्तव्य बोध / डॉ. राजू प्रसाद अहरवाल	23-27
06	कार्यक्षेत्रों में महिलाओं के प्रति लैंगिक असमानता / श्रीमती रेनु सिंह	28-31
07	विश्व की प्राकृतिक भाषा : संगीत / डॉ. प्रभा बजाज	32-33
08	मुक्तक काव्य परम्पराएक सिंहावलोकन/ डॉ विमलेश शर्मा एवं डॉ के. आर. महिया	34-43
09	महाविद्यालय ग्रंथालय में विस्तार सेवाएं / रेखराज साहू एवं श्रवण यादव	44-48
10	"प्राचीन बौद्ध साहित्यों में नारी का अंकन" (गणिकाओं, दासियों, सेविकाओं के संदर्भ में)/डॉ. (श्रीमती) उषा तिवारी	49-53
11	बघेली कहानी : वस्तुविन्यास और जीवन दर्शन/डॉ. राघवेन्द्र तिवारी एवं कमलेश तिवारी	54-61
12	किराना घराने के एक स्तम्भ: पं० सवाई गंधर्व/कविता पंडित	62-66
13	अजमेर में ब्रिटिश पुलिस प्रशासन/अभिमन्यु कुमावत एवं श्री पोरस कुमार	67-74
14	साम्यवादी विचारधारा के अंतर्द्वंद्व की परख : 'बीच में' विनय:- स्वयं प्रकाश/ कविता शर्मा	75-78
15	भारत में न्यायिक व्यवस्था में सुधार : कॉलेजियम बनाम राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग/ शम्भुलाल सालवी	79-84
16	जनजातियों के मानवाधिकार एवं समस्याएं/हेमन्त कुमार	85-89
17	चाकसू तहसील में परती भूमि की समस्या एवं प्रबन्धन/ डॉ. राजेश शर्मा	90-99
18	डॉ. रागेय राघव : कथा साहित्य में मुखरित नारी चेतना के स्वर/डॉ. दीपाली शर्मा	100-103
19	जोधपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों द्वारा पढ़ी जाने वाली पत्रिकाओं का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव/नवीन कुमार एवं शाह गोवर्द्धन लाल काबरा,	104-106
20	उदयपुर संभाग के प्रमुख मंदिरों का पर्यटन एवं आर्थिक विकास में योगदान/योगेश कुमार भाटी	107-109
21	उदयपुर संभाग के प्रमुख मंदिर एवं उनका सांस्कृतिक महत्व/योगेश कुमार भाटी एवं डॉ. एम. एल. शर्मा	110-114
22	वंशकार समुदाय के सामाजिक मूल्य व प्रतिमान/ऋचा सेनगुप्ता	115-120
23	संभ्रांत परिवेश की लेखिका : डॉ. श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री/ज्योति शर्मा	121-124
24	भारतीय किसान और उनकी मूलभूत समस्याएं/डॉ कल्पना वर्मा	125-127
25	अलङ्कारों का इतिवृत्त/डॉ० अपिता चन्द्रा	128-130
26	राजस्थान के जनजाति क्षेत्र में नगरों की उत्पत्ति एवं विकास में भौगोलिक स्थिति कि दशा एवं दिशा/डॉ. हितेश पाटीदार एवं दीनबन्धु बी.ठाकोर	131-141
27	दक्षिण राजस्थान के राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालय के छात्राओं में आत्मक्षमता एवं स्वायत्त अधिगम के प्रभाव का अध्ययन/डॉ. दीपक पण्ड्या	142-145
28	चित्रा मुद्गल की कहानियों में नारी जीवन संघर्ष/गुणमाला पाटीदार	146-149
29	चित्रा मुद्गल की कहानियों में आधुनिकीकरण का प्रभाव/गुणमाला पाटीदार	150-153
30	Goods and Service Tax: Challenges and Impacts on Indian Economy/Dr.Nisha Bansal	154-159
31	Novel Findings for differently Annealed Non-stoichiometric Cadmium Oxides /Krishan Chandra Verma	160-163
32	Water Management: Law and Policy in India / Hemant Kumar	164-174
33	Health Awareness role of Newspaper among elderly population of Durg City/ Rajshree Chandrakar and Dr. A. R. Joglekar	175-178
34	Study of suitability of school uniform for adolescent girl students of Durg, Bhilai City/ Mrs. Sarita Nitin Joshi and Dr. Shipra Banerjee	179-182
35	Impact of Brand on Consumer Buying Decision /Dr. KalpanaVerma	183-187
36	Women Entrepreneurs in India: Challenges and Issues / Dr. Rekha chouhan	188-198
37	Fluoride Contamination in groundwater of Alwar, district Rajasthan /Manju Meena	199-204
38	Economic Development and Poverty reduction in Rajasthan:(An Economic analysis)/Dr.Paras Jain	205-214
39	भारत में बढ़ता भ्रष्टाचार : एक समस्या / कृ. चौदनी नायक	215-220
40	Smart City Udaipur: Concept, Challenges and Digitalization/ Dr. Yuvraj Singh Rathore	221-228
41	Right to Privacy in India-An Outlook /Anju	229-240
42	महिला शिक्षा में ही निहित है महिला सशक्तिकरण/डॉ. (श्रीमती) मोहना सुशांत पंडित	241-244
43	डूंगरपुर जिले की जनसंख्या वृद्धि प्रतिरूप का सामाजिक-आर्थिक विकास पर प्रभाव डॉ. पंकज रावल	245-253
44	कथकाचार्य पं. लक्ष्मीनारायण जी महाराज का जयपुर घराने में सांगीतिक योगदान/सुरभि कुमावत एवं डॉ. आरतह भट्ट तैलंग	254-258
45	अहिंसा का प्राच्यकालीन स्वरूप और आधुनिक समाज : एक पर्यालोचन (जैन साहित्य के विशेष संदर्भ में) डॉ० आशुतोष पारीक	259-262
46	राजस्थानी कहावतों में कृषि सम्बन्धी नक्षत्र विज्ञान सुरेश कुमार सादू	263-268
47	Inculcation of Values Through Education / Yogendra Kumar	269-275
48	नगरीय समस्या "बिभावृत्ति" का समाजशास्त्रीय अध्ययन/ चेतन लाल रेगर	276-279
49	खिज़्र खॉं (1414 ई.-1421 ई.) के शासन काल का समीक्षात्मक अध्ययन/डॉ. जानकी शरण शुक्ल	280-285
50	मण्डला जिले में सड़क यातायात का भौगोलिक अध्ययन/डॉ. झामलाल रसिया	286-289
51	ग्रामीण समाज की हिन्दू महिलाओं में वैचारिक बदलाव-एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में) डॉ. शालिनी शर्मा	290-292